बोलीके बड़ी तादादमें पैदावार होनेसे मुफ्तको अपढ़ ग्रन्थ लिखने लगे। पहले हमारा श्रम था जो मनमें न समा सके उसे करते-करते वाणी तक ले जाना और जो वाणीपर आकर मन-प्राणके हृदय और मस्तकपर अकाम लगे उस कुकर्मके आगे आँसुओंकी ईमानदारीके साथ भोजपत्रों शिलाओं ताम्रपत्रों या कागजोंपर रख देना। हम अब लिखते ही हैं बोलते प्रायः नहीं हैं। अच्छा अब हम उस कानून भरते हैं जिसके मानी जिनके मान जिनके तक जिनके अभिनय जिसकी अनुभूतिका हम कागजपर उतारा नहीं देख सकते। इसीलिए हमारी बोल यानी वाणी स्वास्थ्य मन-बहलावका खोखला हमारी जरूरत पूरी करनेकी एक इन्द्रिय मात्र रह गयी है। हमारी वाणकी खोज है — हमारे कागज। बिजलीके तार बिजली पहुँचाते हैं नल पानी पहुँचाते हैं और हमारी मार्गे हमारी स्मृतियाँ कागजके बण्डलोंमें हमारी बोलीका बोझ-माल पहुँचानेका काम करती हैं। हम कहते हैं कि यह हमने मंचपर पढ़कर किया है। शायद हमारा बस चलता तो हम संसदमें पढ़कर अपने देशके मुक्त प्राण लेन आत्मिक स्वार्थोंको भी बदल देते। खैर जब-जब 'चाह' तैयारी विश्वमें होती है और जरूरतसे ज्यादा माल तैयार हो जाता है तब-तब महायुद्ध-जैसे विश्व-विग्रह होते हैं। भौतिक मालकी तैयारीके विग्रह दस-बीस वर्षोंमें होते हों किन्तु बोलीके मालकी तैयारीके विग्रह लगातार चलते रहते हैं। भूल न जब वे मन्द मस्तकोंके ग्रन्थ हुए कि उनके प्रचार की जरूरत हुई। सूरज और चाँदको कभी भी प्रकाशका विज्ञापन नहीं देना पड़ता वाणीकी धाराओंको प्यास बुझानेको नदीके लिए गुमाश्ते नहीं रखने पड़ते वायुको खिड़कियों और दरोंको उनके अन्दर आनेके लिए इजाजत नहीं लेनी पड़ती किन्तु वाणी आज इतनी सूखी इतनी फीकी हुई इतनी सस्ती होनेपर भी उसका पथ अवरुद्ध हो गया है। पहले अन्तरमें प्रकाश भर वाणी-द्वारा आये शब्द बुद्धिकी जड़ता दूर करते थे, अब हम जड़ताके आवरणके लिए वाणीका

कौशलपूर्वक उपयोग करना सीख गये हैं। पहले हम मानव-रागोंसे उत्पन्न मलिनताको अपने निश्चयोंपर नहीं चढ़ने देते थे अब निश्चय की मलिनताकी उज्ज्वलता कहनेकी प्रतिभापूर्ण कलाबाजीमें हमारी सरस्वती – हमारी वाणीका समाज-शृंगार काम आने लगा है। पहले हम भूमिसे आकाश तक बसते थे अब हम अपने मस्तकमें रखकर बिम्ब बनाये हुए हैं और एक बिम्बसे दूसरे बिम्बको दूर मानते हैं। हम कहते हैं कि यह हमारा विस्तार है। वृत्तिकी संकुचितताकी विषमता विस्तार कहना हमारी मनमानीपर अवचेतनका आवरण डालनेकी भूमिका ही मात्र है। पहले हमारी वाणीमें हमारी प्रेरणा उतरकर आती थी – तपसे छनकर युगकी आवश्यकतासे प्रतिध्वनित होकर, और हृदयके समर्पणका युग-युगोंको अब सकनेवाला स्वर बनकर। अब हम प्रेरणाके अभावको औरोंकी प्रेरणाएँ उधार लेकर निर्माण करके भी अब अपने अस्तित्वका ढोल बजानेमें बुद्धिका उपयोग नहीं कर पाते तब हम अपनी प्रेरणा-हीनता ही को अपनी पहुँच कहने लगते हैं। जो बुद्धिजीवी हैं वे इस प्रेरणा-हीनताको – कलाके साथ घोर विश्वासघात करके भी – कला कहते हैं। जो शक्तिजीवी हैं जिनकी शक्तिसे बुद्धिका कोई सम्बन्ध नहीं वे उसे 'शास्त्र' कहते हैं। और इन दो पाटोंके बीचमें साहित्य नामक चकोर रोकर यह कहता है –

चलती चक्की देखि के दिया कबीरा रोय
दुइ पाटन के बीच में साबित बचा न कोय।

युगों-युगोंसे विकासका रथ-चक्र अग्रसर करनेवाली हमारी प्रेम भावनाने समय-समयपर युगकी मधुरिमा वाणीके साथ ऐसा ही व्यवहार किया है। युगकी भक्तिका युगके क्रम-व-क्रम वचन ही को विकास कहते हैं। और विकासके पथके लगातार साथ ही को साहित्य कहते हैं। गाँवके मौलिकताके पथके पालक हम कभी-कभी आकाशकी तरह ऊँचे विचारोंको व्यक्त करते हैं – हम बुरा नहीं करते। किन्तु उस समय

बातें भी आसमानकी तरह पहुँचकर आदरका बोधन करती हैं। नहीं आसमानके-से विचार हों परन्तु हम जमीनपर हैं यह न भूलें। हमें जो सोचना होगा जमीनकी भाषामें सोचना होगा। व जमीनपर रहते हैं जिसमें हम बसते हैं। हम जमीनपर पैदा हुए हैं और जमीनके उतार-चढ़ावके सम्बन्धवाहक होकर ही हमें रहना है। अतः आसमानकी बातें भी हम जमीनकी बोलीमें बोलें।

ऐसा न हो कि हमारा किसी विषयमें कोई मत ही न हो और हर विषयपर, हमारे मनमें उस क्षणके विचारों या विकारों-मात्रको ही हम अपनी सूझ मान बैठें। कभी कल्पना, कभी वस्तु और कभी वक्तव्यकी रगड़ खाकर जो कुछ हमारे मनमें रंग उदय करता है, वह सबका सब 'हमारा मत' नहीं है। हमारे मनपर आनेवाले इन अनेकों विचारोंमें हम जिसपर अपने निश्चयकी उँगली रख दें वही हमारा मत होगा। प्रत्येक उस विषयपर, जिसे हम मेजसे कलेजेपर उतारें जिस तकसे हृदय तक पहुँचायें हमारा मत होना चाहिए। बिना मत हुए लिखना समझमें न आनेवाली बात है।

व्यक्ति, समाज, साहित्य, राष्ट्र — इन समस्त अंगोंमें मत-निश्चय, मत-प्रकाशन, मत-संचय और मतानुकूल आचरणका काम जो लोग किया करते थे उन्हें हम कहते थे एक युगमें ऋषि, दूसरे युगमें सन्त। जिस तरह सूरज और चाँदका प्रकाश स्वदेशी और विदेशी नहीं होता उसी तरह इस शक्तिके काम स्वदेशी और विदेशी नहीं हुआ करते। हम ध्यान नहीं देते, कोई शक्ति हमारे द्वारा काम लेती है। और वह शक्ति सूक्ष्मकी परिचालिका वह शाश्वत विवेक काल-कालमें एक-सी काम कर रही है।

उसी ताकतको साहित्यिक कहते हैं। और जो विचार्य आपकी संस्थाएँ निर्माण हो रही हैं या देशकी संस्थाओंमें निर्माण हो रहे हैं उनमें कुछ वे हों जो विश्व-संचालक महान् साहित्यिक अपने बीच आने की तैयारी करें और कुछ वे हों जिनमें-से किसीमें वह व्यक्ति या

व्यक्तित्व पैदा हो सके जिसे हम विश्वका महान् साहित्यिक कह सकें। आपके प्रासादोंमें जगमगाती बिजलीकी टिमटिमाती दुनिया और मजदूरोंके सड़े-गले झोंपड़ोंमें मिट्टीके तेलकी टिमटिमाती ढिबरियाँ प्रकाशके पथमें कुछ अपने ही में अपना सम्पूर्ण अर्थ रखनेवाली सिद्धियाँ नहीं हैं। वे तो उस बातकी संकेतवाहिका हैं कि सूर्यके आगमें सहस्र किरण लेकर आने तक वे अन्धकारसे विरमनेवाली सहायिका' मात्र रहें। ज्यों ही भानु आया त्यों ही वे जलेंगी तो उसकी आरती बनकर नहीं तो जिस कालके कुचक्रको करनेको सूरज साकार हुआ था उसी कालके हाथों वे भी अपनका अंत देखीं। वे छोटे प्रकाश प्रकाशके पथकी ओर जाते समयकी सीढ़ियोंपर कम पथके चिह्न मात्र हैं।

अमीरीका कुछ ऐसा बोझ जीवनपर आ गया है कि ईमान बेचकर बाजारमें खड़ी हुई कलम अस्तित्व बेचनेसे इनकार करनेवाली कलमके खिलाफ बगावत करती चली आ रही है। इस विषमतान जीवनका एक ऐसा चित्र खींच दिया है कि सिर अपने तरीकेसे सोचने लगा और धड़ अपने तरीकेसे चलने लगा। फलित-ज्योतिषकी भाषामें सोचें तो मानव-विकासके ये राहु और केतु, कुग्रहकी तरह विग्रहशील होकर गृह-कलहकी ज्वाला — मानो विचारों आदर्शों परिस्थितियों और जीवनोंके शमन चलाये हुए हैं। ऐसा महामानव चाहिए जो इस धड़ और सिरको मिलाकर खण्डित-मानवमें एक अखण्ड-जीवनके महा-राष्ट्रका निर्माण कर सके। ज्योतिषकी भाषामें ही थोड़ा और सोचें तो हमारी धारणा देखिए कि हमारे भाग्यके और जीवन-व्यापारके संचालनमें हमपर नक्षत्रोंके सितारोंका असर पड़ता है। किन्तु हमारे ही पड़ोसमें लटकते हुए हमारे जीवन-सितारोंका असर हमपर नहीं पड़ता। जिन जीवनदानीके प्रकाशसे अन्धकारमें हमारा पथ-दर्शन होता है उनका यही अपराध है कि एक तो वह पैसेमें दो मिलती है दूसरे वह हमारी ही फूँकसे बुझ जाती है, तीसरे वह हमारी जेबमें रह लेती है, और चौथे वह ज्वालामयी होकर भी

१

इतना लगता है कि हमारी सफलताके बिना कभी जय नहीं पड़ती। साथ इसीलिए, हम उसके द्वारा होनेवाले पथ-प्रदर्शनका एहसानका नहीं मानते। हमारे भाग्यका निर्माण और हमारे जीवनका पथ-प्रदर्शन हम स्वयं हैं कि भाग्यमार्गके सितारे करते हैं। जीवनके समस्त सेवा और सम्बन्धके प्रति हमारी यह कृपणता जिसमें सम्मानके नाममात्र परिचित हैं। ना जहाँ प्रकार मूर्तिकी किरणोंमें बल आत्मभावमें काम करते हैं वहाँ एक मानवकी प्रकार नहीं जान दिया जाता। क्या इतिहासका यह गौरव हम कभी अनुभव करेंगे?

मूर्तिका यह आडम्बर नहीं लगता कि वह अमीर होकर रहे। न उसका यही आशा हो सकता है कि वह अपने ही पैरोंमें मौलिक रह ले। चाहे कभी जीवनमें आगे रहे, कभी पीछे किन्तु मूर्ति तो जीवनकी आशा ही है। वह जीवनकी एक उपमेयमयी माया ही है। अतः हम जीवनको देखें कि जब वह पथ भूलता है अथवा वह पथगामी राही होता है तब वह न जाने कितनोंकी इसकी कर्मोंपर पैर रखता अपने अभीष्ट स्थानपर पहुँचा करता है, और जब जीवन शून्य बनकर कारागारमें जन्म लेता है, ध्रुव बनकर राजमहलको तिलांजलि देता हुआ फकीरी करता है। सुन्दर बनकर अपने ही द्वारा निर्मित समाजके लोगोंसे तिरस्कारका उपहार या अपने स्थानसे भागनेका बाध्य होता है। ईसाके रूपमें अपने पूजकवर्गोंके द्वारा शूलीपर लटकाया जाता है तब मूर्तिका स्वरूप और पवित्रताका मात्र प्रतिमाके पुजारीमें क्यों हो?

पहुँचका दूसरा नाम विषय है। चाहे वह सफलताके द्वारा हो चाहे रुकावटों और चाहे बाधाओंसे। विषय साहित्यका पथ-प्रदर्शन जीवनका दिशा-दर्शन और मूर्तिका सत्य-दर्शन है — प्रगतिशीलता मूर्ति-सुन्दरताकी वह समुदाय है जहाँ जन्मी या धीर उस पहुँचना ही होता है। विषयकी तरह ही भाषा भी जीवन और मूर्ति दोनोंकी आधारी है। इन दोनोंको जाने स्पष्ट करनेका दूसरा साधन ही नहीं है। मैं भाषाको विचारका

वाहन-मात्र नहीं मानता। कोई वाहनहीन विचारको पैदा या करके तो दिखाये। हाँ भाषा तो विचारके प्राणका शरीर है। एक टेक जरूर है। शब्दकोशम जिसे शब्दके समुद्रमें कोई नहीं डूबता। और न कोषके सहारेसे कोई तैरता भी है। भाषाका हर वाक्य विचार लेकर नहीं चलता किन्तु अर्थ लेकर तो चलता है। परन्तु विचार तो बिना भाषाके बाहर निकलता ही नहीं स्वरूप ही धारण नहीं करता। उसे व्यक्त होनेके लिए कुछ संकेत कुछ चिह्न अवश्य चाहिए। विचार-जगतके इस क्षेत्रमें हमने लंका-काण्ड खड़ा कर रखा है। 'यही मेरी भाषा है और तेरी भाषा है' बोलने तक सीमा माननेका हिन्दीका दायरा इसलिए बढ़ा कि वह राष्ट्रकी वाणी होनेकी क्षमता रखती है। किन्तु यहाँ हिन्दुस्तानीका झगड़ा खड़ा हो गया। यह झगड़ा कृत्रिम है। जब दोनों भाषाओंके क्रियापद एक हैं तब उनको कितनी शताब्दियाँ दूर रखा जायगा? क्या विश्वमें कोई ऐसा उदाहरण है जहाँ दो भाषाओंके क्रिया पद एक हों और फिर भी वे अलग रह सकी हों? हाँ बोली तो पढ़ने वालोंकी नहीं होती बोलनेवालोंकी होती है। और यदि विचारोंको बोलने वालोंके पास पहुँचना है, तो उत्तर भारतमें घूमती राष्ट्रवाणीसे उर्दू शब्दोंका तिरस्कार न हो सकेगा और दक्षिण भारतमें प्रवेश करती राष्ट्र वाणीसे संस्कृत शब्दोंको देश निकाला नहीं दिया जा सकेगा। क्या आपके मनमें यह सन्देह है कि उत्तरकी वाणी दक्षिण और दक्षिणकी वाणी उत्तर कैसे समझेगा? मेरा निवेदन है कि भारतमें एक जाति रही है जो एक भाषाको तीर्थयात्रियोंके द्वारा दक्षिणसे उत्तर और उत्तरसे दक्षिण तक पहुँचाती रही है। यह जाति अपने प्रभुके सम्मान अपनको समस्त पापोंसे मुक्त मानकर प्रार्थना करती हुई यात्रीलोगोंकी जाति रही। उन्हें संत कहते थे। वे चलते तो भाषा लेकर रहते तो भाषा सँभालकर और गाते तो भाषा बनाकर। राजघरानेसे निकली मीरा हो पारिवारिक विग्रहसे निकले तुलसी हों या आसाम प्रान्तमें भाषाके शोभाधर स्वरूप गोरखसे गुरु हों नानक

›,
}

ये सब मन्द ही। इन व्यापारिक कार्योंको आजकल हम 'प्रचारक' कहने लगे हैं। हमारे नामकरणमें सत्य छिपा रहता है। जो-मौसम हमारे हृदयमें उठने वाले विचारोंको जो मूलतः नवीन आविष्कार लेकर आये हमने कला कह दिया। बड़ी कृपा की जो हमने आत्मको रोजगार नहीं कह दिया। निर्माताका अपमान करनेवाले हम माताका भी अपमान कर सकते थे। हमारी इसी भावनाने सन्तको 'प्रचारक' कहा है। स्वयं स्वीकृत कष्ट-सहनपर, केवल भोजन-भर लेकर काम करते वालोंको यदि हम प्रचारक कहते हैं तो जो अपने इरादोंके उनके लिए खींच-खींचकर दुनियाको अपनी रुचि या अरुचिकी उँगलियोंपर चलनेके लिए बाध्य करते हैं उन्हें हम कौन-सा नाम देंगे?

अबतक सन्त थे वे लोकवाणी बोलते थे लोकवाणी लिखते थे लोकवाणी गाते थे और लोकहृदयमें वाणीको पहुँचाते थे। जब व्युत्पत्ति और सन्तत्व गया तब हम महाराष्ट्री बहाना सिखाने लगे। वह जिसपर घोड़े-से गिर कुल लें वह जिसमें भिन्न-भिन्न विचारोंके मनोभाव प्रतिबिम्बित हो सकें। कन्याओंमें रसोइया साहित्य देखनेकी हमारी चाह प्रकट करती है कि मानो हम आत्मघातका काम करते हैं। निर्माताका माताके प्रजनन-क्षेत्रमें यदि कोई रिश्ता हो तो एककी बेटी होकर दूसरेकी पत्नी बनकर और तीसरेकी माता होकर तीनोंपर अपना अंगम समस्त प्यार कर सकनेवाली भाषावाणीका जननीको हम केवल चलती बाजारी बिकाऊ-सी बनानेका काम क्यों सोच रहे हैं? रसोई साहित्यकी हमारी दृष्टिपर प्रशंसक-समूहकी मनोभावनाकी सच्चियाँ जब मिलकर नाचती हैं तब उस मिलनकी मधुमक्खी-मारीपर हम अपने प्रशंसकोंकी ताकत फूलते हैं। यह हमारा कैसा मोह है? जब हम रसोईघरमें होते हैं तब क्या हम यह अनुभव नहीं करते कि हलवाईकी दूकानपर हमने जो माल बनाया है उसका असर हमारे हृदय और मस्तकका भाग्यशाली, जो माल बनता है कितना दुर्गन्धित होगा? फिर यह राष्ट्र-निर्माण सम्प

चिन्तन, मत, निश्चय, साहित्य-साधना और समर्पण, यह सब कुछ क्या है? केवल बयान! और इनको छोड़ देनेके बाद बाकी क्या बचेगा?

हम एक खतरा और न भूलें। एक वेदान्तीको देखिए। हम कहते हैं कि यह बड़ा अन्धविश्वासी है, अपनी धारणाओंका ग़ुलाम। फिर एक शहरातीको देखिए। सभ्यताके नामपर उसकी भी कुछ कठोर धारणाएँ हैं जिन्हें वह छोड़ नहीं सकता। और यह कहना सर्वथा कठिन है, कि इन दो अनुदारोंमें कौन-सा अनुदार अपनी धारणाओंसे चिपके रहनेमें अधिक असमाहरणीय और अधिक हानिकर है। इसके बीच यदि हमने रूसीके साहित्यिक-शहरकी सौगात बाँटी तो रूसोंकी जानकारीसे अपरिचित ग्रामीण उस शहरसे भले बच लें किन्तु शहराती मध्यवित्तकी बचत तो कुशल हरगिज न होगी। जब रूसकी धारणाओंसे चिपकनेवाली एक पीढ़ी हम निर्माण कर चुकेंगे तब जिस तरह समुद्रका ज्वार समुद्र ही के बे-काबू हो जाता है उसी तरह यह पीढ़ी रूसीके कलाकारोंसे भी बे-काबू हो जायगी और एक बागी सेनाकी तरह जब कलाकार जीवनकी ओर लौटना चाहेगा तब रूसीपनको रिसतेपर जीनेवाली यह पीढ़ी कलाकारके साथ लौटनेसे इनकार कर देगी। क्या हम यह खतरेका व्यापार बन्द न करेंगे?

कलाकार ईमान और कुरसियाँ बेचकर विश्वका निर्माण नहीं करता। वह तो रोटियाँ बेचकर तेल खरीदता है और प्रचण्ड रात्रि-जागरणको भावनाका मन्द-जागरण बनाकर जीवनको गति देनेवाले अपन सपन लिखा करता है। भिखारीको रोटी न मिलनेसे समाजके द्वारा अपमानका अनुभव होता है, कलाकारको अपने गूढ़ न छपनेके दुर्दिनमें उससे कम वेदना और अपमानका अनुभव नहीं होता।

विश्वकी रचनामें आपने एक बात देखी होगी। भूमिका नाम है विश्वम्भरा। भूमिने जो उपजाया है या भूमिकी उपजपर जो प्राणी जीते हैं उन्हें खाकर ही विश्वका पालन होता है। किन्तु 'सभ्यता नामक

धँगलियामें अमरत्व बोल रहा है। उपन्यासकारके छुरेसे रक्तकी लाल बूँदें टपकाकर चकित क्षोभ मत करें किन्तु कलाकारकी कलमसे अन्तर्वासी हृदयके खूनकी संकेतवाहिका काली बूँदें मानवके भाग्य और प्रश्नोंको जाको प्रदान करती हैं। यह काम मध्यवित्त लोगों-द्वारा विकारोंकी खैरात बाँटनेसे न होगा। केवल अवलोक सिसकते बे-इख्तियार लोगोंको लिखना ही उचित न होगा। हमें लोक-जीवन लिखना होगा। हम शहराती साहित्य क्यों लिखते हैं? क्या हम हार मान चुके हैं कि लोक-जीवन नहीं लिख सकते? हम यह गर्व न करें कि हमारी रचनाओंने हमें सुखसे जीवन बिताना सुलभ कर दिया। सुविधाकी यह प्राप्ति कलाकृतिका आगमन नहीं। शराब और अफ़ीम बेचनेवालोंने भी तो अपनी सम्पत्तिसे महल खड़े कर लिये हैं। विवाहों त्योहारों और चक्कियों आदि अवसरोंपर गाये जाने-वाले गीत ही तो आज हमारा 'लोकसाहित्य' है और हम उससे काफ़ी दूर हैं। हाँ 'तुलसीदास आस रघुबीर की', 'सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन को' 'मीरा के प्रभु गिरधर नागर' और 'कहत कबीर सुनो भाई साधो' के रूपमें एक साहित्य लोक-जीवन तक पहुँचा था। शताब्दियाँ हुईं कि अब हम उससे अधिक कुछ नहीं पहुँचा पाते और अब हम देखते हैं कि गुलाब की डालपर पत्तोंकी चोटी कम कली ही गयी है उसकी कली आज गिर गयी है और आज धूल बनकर अपने जन्मेपकी लोचकका भुसती मिट्टी और तमाम मस्तक उठाती तथा काँटोंकी टहनीपर गुस्ताख़पनमें विद्रोह करती हुई वायुसे सिर पटककर, घूमकर आज लम्बी यात्रा समाप्त कर लँगुड़ी-लँगुड़े होकर धूलमें मिल जानेको बाध्य है तब भी हम यह अनुभव क्या नहीं करते कि लोकजीवनके पास साहित्य पहुँचानेमें शताब्दियाँ तो दूर अब विलम्बमें दिन भी नहीं गुज़रने दिये जा सकते। प्राचीन साहित्य हृदयका सन्तोष बनकर भले रह ले पर आज जीवनकी आम समस्याओंका नहीं सुलझा सकता।

क्या हम निश्चित उपायोंके बागी हैं? क्या हमने सचमुच रूढ़िके

विमलकी आभारी

बन्धन तोड़े हैं ? किस शक्तिके ? शक्ति वह जिससे समय आगे न बढ़ पाये। पिछड़कर समय समाजके लिए नहीं और फिर लाचार अनुगामी बना जिसके पीछे चला जाये। प्रतिगामिताका नाम बगावत नहीं है। प्रवाहपर बैठकर लोकजीवनकी धाराको उलटकर उद्गमकी ओर घुमा देना अच्छी बगावत है। निर्माणके हुए कोल-काँटेको उखाड़ फेंकना बगावत नहीं है। जिस निर्माणपर मानव-पतन मानव-दैन्य मानव-व्यभिचार, मानवकी कमज़ोरी और मानवके निरंकुश अत्याचारोंका आधार बना है उसकी ईंटसे ईंट बजानेकी प्रेरणा देनेवाली हुंकार करना सच्चा विद्रोह है।

विद्रोही और विद्रोही लेखक इन दोमें बहुत बड़ा अन्तर है, यह हम न भूलें। विद्रोही कार्यकर्ता अपने संगठनके गिने-चुने पहरेदार रखकर परदेके ओट छिपा रह सकता है। वह अपनी प्रातिविधिक डोरोंको कविके मनकी हिलोरोंकी तरह प्रलयंकर होते हुए भी दृष्टि-ओझल रख सकता है। वह अपना मिशन पूरा करनेमें जन-समूहको भले बरसों समय काम देकर मज़दूरी बाँटनेवाले संगठनकर्ताकी तरह, जिल्दबन्दीसे अपने प्रचारको छिपाकर चला ले जा सकता है। किन्तु एक क्रान्तिशील लेखकके भाग्यमें इसके भी कठोर कठिनाइयाँ होती हैं। वह प्रसिद्धि और पहचानके समस्त खतरोंका शिकार होनेके लिए बाध्य है। समाजमें उथल-पुथल करनेपर उसे अपवाद सहना ही होगा। उसमें दाह करनेवाले व्यक्तियों-द्वारा प्रतारणा भोगनी ही होगी। निर्भीक मत व्यक्त करनेपर शासन-द्वारा दण्डनीय होकर लोक-जीवनमें प्रवेश करनेकी प्राण-प्रतिष्ठा पानी ही होगी। कलम और ईमान बेचनेसे इनकार करनेपर शासन धर्मी-द्वारा उसे भूखा मार डालनेके गुप्त षड्यन्त्रका सामना करना ही होगा। और महज वहमका वेतन मगज समझनेवाले अपने ही लोक-जीवनके लोगोंकी बेरुखाईका बेरहमीसे शिकार होना ही होगा। प्रसिद्धि और पहचानके खतरोंसे पीछे हटना ऐसे कलाकारका पतन है। उस राष्ट्रीय होकर भी राजनैतिक प्रचारकों-द्वारा बलोंके पट्टे गलेमें न पहनने

या पहने हुए पट्टे बधेसे उतारनेपर मिलनेवाले भयंकर आक्रमणों और अपार आशंकाके बीच रवीन्द्रकी वाणीमें यह सोचनेके लिए लाचार होना ही होगा कि — 'अकेला चल अकेला चल अकेला चल।

इन उपरोक्त कारण ही क्या आजका लेखक आज-जीवन और उसकी समस्याओंसे आँख मूँदनेके लिए बाध्य हो गया है ? क्या इसीलिए वह अपनी पहुँचको स्वता मानकर गुफोंमें उसके आस-पास चक्कर काट रहा है ? और इसे वह अपनी गति कह रहा है ? अपनी पहुँचको मीलका पत्थर मानकर पीछे छोड़ता हुआ आज-जीवनमें प्रवेश करनेकी नयी मंजिल नहीं पा रहा ? गतिका यह गुमान क्या प्रगतिका परम ईश्वर नहीं हो सकता ? इसका विकल्प कौन ? खतरा चुकी संकट कि इनसे भी मीठी कोई वस्तुएँ ? यह सोचते-सोचते थकनेवाला जन्तु धीरे-धीरे थकावट क्यों नहीं अनुभव करता ?

विस्मय महापुरुष हो रहा है। भूतकालका वैभव वह भूल आ रहा है। और सीमाएँ किसी छायोंके उजाले हुए भूतकी तरह अपना रूप खोये हुए रो रही हैं। जनमानस यह आशंका जमी हुई है और यह देखा विश्वका चिन्तक वह सोचनेके लिए बाध्य है कि कलका जमाना कैसा बनेगा। देशोंकी सीमाएँ कहाँ होंगी ? भारतीय महामानव क्या तुमसे भी कोई पूछेगा ? क्या तब भी कोई नाम, कोई मजहब कोई जगह है ? जो देश कर विलोका दारिद्र्य दूर नहीं कर सका वह बीसकर हिमालयी महा प्रलय किसके उजागर करेगा ? रूसी भाषाको हिन्दी या भारतीय भाषाएँ क्या दिया है या अमरीकी सीमा निश्चित करते समय उससे पूछा जायेगा ? या हिमालय चोटोंबीच हिमवीरोंकी धरतीपर अकर्मण्यताकी आराधना और तत्त्वचिन्तन करता रहा और हिमवानकी हिमालयी अपनी कलात्मक कायरतामें बलवान् सिद्ध किए रहा यह विश्वके भाग्य-निर्माणपर अपने निर्णय देगा ?

आजकी समस्याका इस तत्कालिक समय देनेके लिए मेरे पास क्या

है ? हिन्दी साथियोंसे यदि मैं कहूँ या समस्त भारतीय साहित्यिक बन्धुओं-से न कहूँ तो प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसादको भी मैं आपको सौंपता हूँ। मैंने सुना कि वे अपना इलाज नहीं करा सके। यह भी शरमकी बात है कि बंगले-भी मंगलाप्रसाद पारितोषिक नहीं पा सके। न हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापतित्वका गौरव उन्हें दिया गया। क्योंकि विषय का बहुमत पक्ष निराला नवीन महादेवी प्रसाद और प्रेमचन्दको हिन्दी के योग्य ही नहीं समझ सका। और हिन्दी बोलनेवाले देशवासियोंसे कहूँ तो यह कि वे देशमें ज्ञान और कलाको जब वह संकटमें होवे मरनेसे बचावें और राष्ट्रकी वाणीको बन्धनयुक्त-पथ बन्धन मुक्त करनेमें सहायक हों।

दूसरी चीज जो मैं आपको दूँ, वह वह जमीन जिसकी एक तहको यदि आप उखाड़ दें तो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र दूसरी तह उखाड़ दें तो राणा प्रताप भूषण शिवाजी छत्रसाल तुलसी सूर कबीर और मीरा आदि, इस जमीनमें-से उठकर आपसे बोलने लगेंगे। यह जमीन आज मेरी और आपकी नहीं। अतः इसके आँसू इसके बन्धन इसकी छातीपर जमा पाला इसके जीवनपर लगा पहरा; और इसके अपमान और प्रायश्चित्त होते हुए भी इसकी ये मूक-स्मृतियाँ भी आज मैं आपको दीक्षादानमें देता हूँ कि कभी आपका साहित्य इन्हें मिटाने योग्य भी हो सके।

तीसरी चीज आपका मन है। जमीनसे आसमान तक मनकी पहुँच है। परन्तु पराधीन देशमें आप जो कुछ देखें उसपर आप नहीं सकते। आप वह सीमोंमें जो आपका पालक चाहता है। आपके इस बन्धनोंमें आपके दायभार हैं आपके व्यापार हैं आपकी जिम्मेवारियाँ हैं और एक उतारा लेनेपर आप अनेक संकटोंमें पड़ सकते हैं क्योंकि व्यवस्थाकी दक्षिण इधर-उधर आपकी प्रतिमाके पदनिक्षेपकी नूपुर-ध्वनिसे आपका आरामसे रहन देनेवाले भुलावनक नाराज हो जायेंगे प्रतिमाके पंखोंकी आवाज फड़फड़ाहटसे प्रतिमाके अभ्यासके साथ उठनेका अन्देशा है। अतः इस

भाग्यहीन मुरझाके साथ-साथ भाग्यवान् प्रतिभाके पंखोंकी फड़फड़ाहट मैं वीणामें आपको देना चाहता हूँ।

मैं चाहता हूँ आप प्रचारकको सन्तसे अलग कर लें। जीवनमें कम हो चाहे-भरको आप यह न समझें कि आप लोक-जीवनमें प्रविष्ट हो गये। लोक-जीवनकी सांसों और सत्कारों सम्भावा और वीभत्साओं बेचैनियों और घबराहटके रहस्योंके उद्घाटनका यह खजाना यदि आप सँभाल सकें तो मैं आपको आदरसे देता हूँ।

और एक चीज सम्मानपूर्वक कहना चाहूँगा।

वह एक 'वाणी' है जो लोक-जीवनके हृदयको सोच-खाकर चिल्ला रही है और चिल्ला-चिल्लाकर खाय रही है। एक गूँजा है जो उसकी आत्मा उठ रही है जिसको भुजाएँ उठ नहीं पाती और उसका भाग्य लिख रही है जिन्हें सामान्य लिखना-पढ़ना नहीं सीखने दिया।

एक वाणी है जो झोंपड़ियोंकी कराहको राजमहलोंमें ले जाकर टकराती है और राजमहलोंके अपमानोंको झोंपड़ियोंके दैवाचमें लिये प्रभु के प्रसादकी तरह पहुँच करती है।

एक वाणी है जो गलियोंमें कूचोंमें झोंपड़ियोंमें महलोंमें पहाड़ोंमें गुफाओंमें बीहड़में एकान्तोंमें दिशाओंमें विजय-पथकी पराजयोंमें बड़े बड़ों का स्वर लिये बराबर सुनाई पड़ती चली जा रही है।

एक वाणी है कि समस्त धर्मोंके देव-मन्दिरोंमें जिसका रम गतिशील जिसका पथ उन्मुक्त है – किन्तु कौनसे सिंहासनोंका आडम्बर है कि इस वाणीका मैं न सुनें।

एक वाणी है जो कि जहाँतक भारतका नरमुण्ड है वहाँतक सन्देशवाहिनी बनकर, वह प्रचण्ड है और जहाँतक विश्व-हृदय है वहाँ तक विश्वविभुकी प्रार्थनाके गौरवसे भीनी या बालाकी है।

एक वाणी है जो संकटोंकी भावनाकी कड़ियाँ बनाकर चीखती है और विनाशकी चमकियोंमें विभुकी मुसकानकी आशाके दर्शन करती है।

कहेगा है कि वह लोक-जीवनका रचित कर्मवीर बना उठनेकी चाह बनकर खड़ा है। सुंदर है कि युग-हास्यमें विश्व-परिवर्तनके लोक महायज्ञकी ज्वाला बनकर आ रहे हैं। सुनाएँ हैं कि कष्ट-यातनाके गायक द्वार हैं अथवा शक्तिके निर्देशकी झंकार है अथवा दम तुरके लिए दलित होनेका चुना स्वीकार है। वह लोक-जीवनके लिए प्रताड़ना सहता है। लोक-जीवनकी भी प्रताड़ना सहता है, और उसका जीवन प्रतिलोम्मुख लोक-जीवनकी रक्षाके लिए स्वयं प्रताड़ना बन जाता है, क्योंकि वह लोक-जीवनको प्यार करता है। लोक-जीवनकी वाणी बनकर उसकी मैत्री बनकर उसकी शक्ति बनकर, उसकी चेतना बनकर और उसका मस्तक बनकर स्थिर रहता है। संघर्षभूमिमें कारागारमें और वधभूमिमें वह मुक्तिकी एक ही वाणी बोलता है। वंचित मुसाफिरोंका वह प्रभु-स्वप्न पता देता है। देवमन्दिरों और विश्रामागारोंमें वह उनमें निवास करनेवाले प्रभुका ईश्वर बताता है। मिट्टीकी सहिष्णुता उठाता है। फूलोंकी कोमलता बताता है और पथ-संगीतों वह अपना कर्मेश्वर-स्व पथ-दान करता है।

लोक जीवनके व्याख्याता अविस्मृत वह लिखता है। किन्तु विश्वकी पुस्तियाँ सुलझाकर स्वतन्त्र नहीं बनना चाहता।

वह कवि है। लोक जीवनके आँसुओंसे गीला लोक-जीवनकी आहोंसे दर्पिता और इन सबोंसे दूर कि वह कवि हो और इन बातोंको बिना जाने कि वह कवि है।

वह न सम्राट् है, न सरदार। न धर्माचार्य है न व्यवस्था देनेवाला। वह एक वाणी है जिसके आगे विश्व लाचार है कि उसे सुन। उसमें प्यार है जिसमें कोटि-कोटि दुखियोंकी आत्मा निहित रही है। उसमें गर्जन है जो धाराओंको असभ्यताको लज्जित कर रहा है। उसमें विराम है जो बलि-पन्थियों और कमजोरी स्वीकार करनेवालोंका भरता हृदयको पल-पलके साथ रक्षण कर रहा है।

वह वाणी है जो राजाज्ञा नहीं है किन्तु कोटि-कोटि आदमी कोटि-कोटि मानव जिससे बँधे हुए हैं, अजस्र सेना नहीं है किन्तु उसके एक विश्वासपर कोटि-कोटि व्यक्ति ठहरे हुए हैं।

वह वाणी है जो स्वयं देनेमें अपनेको भी क्षमा नहीं करती, जो गुनाहगारोंका अपने सिरपर लेती है और अन्यायियोंको प्रभुके चरणोंपर चढ़ाती जाती है।

वह वाणी हर देशमें है, हर जातिमें है, हर धर्ममें है। ईसाका अनुसार करके उस वाणीका नाम अमेरिकामें रूजवेल्ट, इंग्लैण्डमें चर्चिल, रूसमें लेनिन, जर्मनीमें हिटलर, इटलीमें मुसोलिनी, टर्कीमें मुस्तफा कमाल, चीनमें च्यांग काई शेक और मिस्रमें न जाने कहाँ-कहाँ क्या क्या कहा गया। किन्तु गुरुदेव रवीन्द्रकी बोलीमें भारतकी वह कविता, वह सूत्र, वह साहित्य, वह पुण्याय कहाँ है? उस वाणीके स्वप्नोंका आचरण सेवाग्रामकी झोंपड़ीमें निवास करता है। उधार लिया हुआ यह वचन भी मैं आपको सौंपता हूँ।

और मैं मानता हूँ युग यहीं नहीं खड़ा रहेगा। समयका स्वभाव ही खड़ा रहना नहीं है। हमारा आत्म-सम्मान जब पूजाका भूतकाल बनेगा तब मैं उस युगको देखना चाहूँगा जहाँ एक या अनेक मूर्तियाँ प्रकाश फैलाती और फिर विश्वका निर्माण करती दीख पड़ें। सेवाग्राम उसी युगका प्रतीक क्यों न कहा जाय!

आपने मुझे यह अवसर दिया, मैं आपको पुनः धन्यवाद देता हूँ।

बम्बई हिन्दी विद्यापीठ
दीक्षान्त समारोह
१९४१



साहित्य और कविता

एक समय वह होता है जब हम अपने सामने अधिक समुदाय नहीं पाते हैं तो दुःख होता है। पर एक समय वह भी होता है जब हम अधिक समुदाय पाते हैं तो दुःख होता है। जब हम विचारोंका प्रकटीकरण कर उन्हें दूर तक पहुँचानेका यत्न करते हैं तब समूहका त्याग नहीं किया जा सकता। किन्तु जब हम विचारोंका कोष निर्माण करते हैं तब हमें तपस्वीके एकान्तकी आवश्यकता होती है। एकान्त उस समय हमारे अस्तित्वकी आराधना आत्माकी पूजा और आत्मदेवकी अभ्यर्थना होती है।

हमें एक बुरी आदत है। हम व्यक्ति नहीं पढ़ते पुस्तकें पढ़ते हैं। जिस साहित्यमें व्यक्तिको पढ़नेका यत्न नहीं किया जाता जिसमें व्यक्ति उसके मस्तिष्ककी तह तक पहुँचनेकी कोशिश नहीं की जाती वहाँ व्यक्तित्वका उत्पन्न होना और पनपनेकी कल्पना-मात्र पागलपन है।

हम बात नहीं विषय सुनते हैं और जीवन दर्शन या जमानेका सूतके माफिक फिट बैठानेका यत्न करते हैं। ऐसी स्थितिमें नदियोंकी तरह बहने वर्षाकी तरह बरसने पुष्पोंकी तरह बिखरने और अनकणोंकी तरह उफनवाली आत्म-वेदना हमारे पास खुलकर क्यों आयगी ?

व्यक्ति दो प्रकारके होते हैं। एक तो वे जो विश्वमें फैले हुए ज्ञानके तन्तु चुन लेते हैं और फिर अपने ही तन्तु-संग्रहसे चकित हो उठते हैं और उन्हें विश्वके सामने रख देते हैं। दूसरे वे जो उस चातुरीसे यत्नशील मकड़ीकी तरह जो रूई और अस्फुट स्वरोंमें मधुर और कोमल संगीत बनाता-सा नजर आता है दुनियाके विचारोंसे एक विचार-समूहका निर्माण करते हैं। उनके विचारोंकी सम्पत्ति किसी प्रत्यक्ष व्यक्ति घटना या

दुःखसे या कल्पनाकी उड़ानोंसे जाग्रत होती है और उसे कमालको छाप देनेमें वे अपना ईमानदार कर्तव्य अनुभव करते हैं।

साहित्यिक रसके निर्माणमें लगा रहता है। रस ही काव्यकी आत्मा है। रसोंपर शल्यक्रिया करके रसों तक पहुँचनेकी चेष्टा व्यर्थ है। रस इतनी सुकोमल वस्तु है कि उसपर क्रिया होनेके बाद छीना-झपटी या रगड़-झगड़ होनेपर वह मसले हुए फूलोंकी तरह अपनी सुगन्ध खो देती है अपनी कटुताके आँसू रो देती है।

आजका युग ऐसा है कि मस्तक अलग काम करता है वक्ष अलग काम करता है। साहित्यकी दुनियाके ये दोनों राहु और केतु हैं। इन दोनों अंशोंको जोड़ें तो मनुष्य प्राणी बन सकता है। हृदय और मस्तिष्क-का विच्छेद करनेमें एक अजीब-सी बात हो गया है। एक तरफ मस्तकपर बोझा लादा जा रहा है और दूसरी ओर पैरोंपर चन्दन चढ़ाया जा रहा है।

हमारा प्रयत्न रहे कि हम अपनी अन्तरात्माके प्रति व्यक्तित्वके प्रति सच्चे रहें ईमानदार रहें। मुझे उस लकड़हारेके लड़केकी कहानी याद आती है जो भाग्यवश राजा बन गया था। राजवस्त्र राजदरबार और शाही ठाठ-बाटमें भी वह अपने निजी अस्तित्वको भूला नहीं था। उसने अपने पुराने चिथड़े और लकड़ीके गट्ठर एक आलमारीमें बन्द कर रखा था। दिनमें एक बार वह नहा-धोकर एकान्तमें सारा राजसी लिबास उतार देता था और अपनी लकड़हारेकी पोशाक पहनकर एक बड़े शीशेके सामने खड़ा होकर अत्यन्त दीनताके साथ अपने प्रभुसे यह कहता कि मैं यह हूँ वह नहीं हूँ। इसी तरह एक सच्चे साहित्यकारका भी यही कर्तव्य है कि वह अपनी ईमानदार बादिमाग अपने सत्यके निकट अपने प्रभुके सम्मुख खड़ा होकर ऐसा ही कहे कि मैं यह हूँ वह नहीं हूँ।

व्यक्तित्वके निर्माणके लिए हृदयकी जरूरत है। यह रास्ता ग्रन्थों या पन्थोंसे नहीं मिलता। उसका अपना रास्ता होता है। लेखक जिस समय

छिपने लगता है, उस समय पाठकों-प्रशंसकोंका मजमा अपने-आप जम जाता है।

जबतक साहित्यिक बाहरकी दुनिया देखनेके लिए बाध्य किया जाता है तबतक स्वयंको नहीं देख पाता। जब वह स्वयंको ही नहीं देख पाता तो वह कुछ भी नहीं देख पाता। जिसतक दुनियाका पहुँचना है और स्वतःका पहुँचना है। पर आश्चर्य नहीं है। साहित्यिकका जीवन द्वैतमें अद्वैत और अद्वैतमें द्वैतकी अनुभूति होता है। जब वह अपने अनन्त विस्तारमें उतरा होता है तब वह कला-पिताके जोबन-भर सन्कामन आभूषित और कला-माताके प्राणमय जीवन जोमोका होता है। किन्तु जब उसका चिन्तन उसको क्रमसपर उतार लाता है तब वह अपना ही कल्पना-पुत्र होकर जिसतक अन्तरतरकी सुकोमल गाथायें बीनता रहता है। साहित्य इसी त्रिगुणात्मक स्वरूपमें व्यक्तित्वको प्रकट करता है।

आत्मप्रकटीकरणकी प्रेरणा कभी-कभी मरण-वेदनासे भी कठोर होती है — जिसकी इस बेकसीका दुनियाका कभी बाजार अनुभव नहीं करता। मजमा जोड़नेवाले पर्वोंके लिए मृत्यु है। एकान्त उनका जीवन है। आत्मप्रकटीकरणकी भूख जिन्हें होती है, उनका एकान्त व्यक्तियोंकी बस्ती होता है। उस समय मैं जरा-सा भी आक्रमण बरदाश्त नहीं कर सकता। जन्म वेदनाके आँसू जिस तरह बे-अवसरकी और बे-हद पूछताछ बन जाते हैं और दूसरेके बोझ बनकर चाबुक-सा कर देते हैं उसी तरह जब मैं अपने-आपको सम्पूर्ण कलम या स्वरपर उतार रहा होऊँ तब मेरे स्वरपर चाबुक लेकर दौड़नेवाले हाथको देखकर मेरा सम्पूर्ण अपनापन मेरे स्वरपर उतरते समय रुक जाता है। हाँ, उसके बाहर उतर चुकनेके पश्चात् मनमानी गजक्रिया हो, मुझे चिन्ता नहीं। जब मैं देखता हूँ कि भार फलोंको छील या तराश कर ही खाते हैं तब मैं अपनेपर की जाने वाली तराशसे विचलित क्यों होऊँ? किन्तु यह तराश उस समय नहीं सोहती जब वृक्षोंकी टहनियोंपर प्रकृतिकी अप्रत्यक्ष उँगलियोंसे फल

बनते चले आ रहे हैं। फूलोंके खिलते समय आप उनपर चाकू और कैंची लिए न दौड़ें। जब वह पूरी तरह खिल चुकें, फिर आप उन्हें लेकर पैरों तले रौंदें, तोड़ें-मरोड़ें या उनकी पूजा करें। आप स्वतन्त्र हैं।

यदि गान्धी-युगका उदाहरण छोड़ दें, तो राजनैतिक व्यक्तित्वमें एक खराबी है। वह अपने जमानेके लोगोंके अज्ञान और उनकी कायरतापर फूलता-फलता है। अतः जनता जितनी गूँगी अज्ञान होगी, उतना ही अधिक प्रभाव राजनैतिक नेता रख ले जा सकेगा। जनताका जागरण राजनैतिक मनुष्यका शत्रु बिन्दु है। किन्तु साहित्यमें यह बात नहीं। यहाँ तो जीवन भावनाके इस प्राण-मन-मय पथपर जीवनका हम ज्यों-ज्यों ढाँचा बनाते जाते, त्यों-त्यों बड़े-बड़े रहस्य हमारी आँखोंके सामने आते हैं और उन रहस्योंको हम ज्यों-ज्यों जनताके सम्मुख रखते जाते हैं, हृदय पाठककी नित नयी माँग हमारे सामने आती है। इस जीवनमें जब अधिक लोग आ जाते हैं, तब अनुगामीका बोझ गिरनेके बजाय बढ़ने लगता है। साहित्यिक फूल-मालाओंसे घबराता है। उसका सबसे बड़ा बल, सबसे बड़ा पुरस्कार निर्मल हृदय है, जो प्रभुकी देन है। उस पुरस्कारकी सबसे अच्छी थैली उसका मस्तिष्क है, जिसे प्रभुने अपने हाथों बनाया है। अपने प्रभुके लिए सम्पूर्ण आत्म-समर्पण ही उसकी शक्ति है। सच्चा साहित्यिक ऐसी रेखाएँ खींचता है जिन्हें समय मिटा नहीं पाता।

राष्ट्रीय कविता क्या है? राष्ट्रीय कविता केवल खून खौलाती हुंकारती बैरियोंकी कविता ही नहीं है। राष्ट्रकी प्रत्येक चीज पवित्र है, गौरवकी वस्तु है। राष्ट्रको मैं महान् विराट् मानता हूँ। उसे मैं समस्त भूतकालसे लेकर भविष्य-कालके गर्भमें पालता हूँ। ऐसे ही सनातन राष्ट्रकी वाणी सच्ची राष्ट्र-वाणी है। राष्ट्रीय कविता युद्धका बोझ लेकर भी मनोरंजन नहीं करती या मधुर आभास मात्रका पालन ही नहीं करती, किन्तु वह पुरुष प्रभावकारक संस्कारोंका मौलिक रूप भी धारण कर लेती और नैतिकता बलिदानपर आमन्त्रित करती है। गान्धी और

हिमालय दोनों ही पूरे राष्ट्रीय हैं। क्या वह हिन्द ही राष्ट्रीय नहीं है जिसके मुकुटपर हिमालय है, गलेमें गंगा-यमुनाका हार है, करधनीमें नर्मदा-ताप्तीकी लड़ियाँ हैं, जिसकी छातीकी किनारी कावेरी कृष्णाके सुनहरे जलसे चमक उठती है, और जिसके चरणोंको हिन्द महासागर धोता है।

व्यक्त करनेके लिए केवल व्यक्तिकी ही जरूरत नहीं है। न यही आवश्यक है कि जिसे व्यक्त किया जाता है वह प्रत्यक्ष जमीनकी चीज ही हो। साहित्यिकके लिए सबसे बड़ी जमीन हृदय है। कल्पनाकी जमीनपर उत्पन्न होनेवाली घटनाएँ भी महाप्रलय कर सकती हैं। कल्पना और हृदयका विषय ही किसी साहित्यिककी परीक्षाका योग्य माप है।

मैं आपसे दो बातें और कहूँ। यदि अच्छा साहित्य दीख पड़े तो निगल न जाइए और फिर उसे अपना कहकर उगल न दीजिए। वह तो पराई चीज हुई। दूसरेके विचार हुए। जिन्हें साहित्य-निर्माणकी नहीं केवल साहित्य परोसनेकी आदत है वे महापुरुष हो सकते हैं किन्तु साहित्यिक नहीं। साहित्यकी प्रसव-वेदना उन्होंने सही ही नहीं। अपने विचारोंके लिए कोख-पीड़ा उन्हें सहनी ही नहीं पड़ी। उन्होंने तो तैयार विचार चख लिये। वे तो अपने साहित्यपर प्राण देनेवाले साहित्यिक नहीं हो सके। हमें इस विषयमें सतर्क रहना चाहिए।

दूसरी बात कविताके विषयकी है। कोई कहते हैं कविताका विषय सत्य है। कोई कहते हैं कविताका आधार कल्पना है। वास्तवमें कविता विधाताके वस्तुकी कमीकी पूर्ति है। प्रभुकी दुनियामें हम देखते हैं कि कई बार पापी मौज उड़ाते हैं और पुण्यात्मा कष्ट सहन करते हैं लेकिन कविकी दुनियामें पापी सुखी नहीं रह सकता और पुण्यात्मा दुःखी नहीं हो सकता। कविता कल्पकताका सत्य नहीं सत्यकी सुकोमल कल्पकता है। कविताका विषय असीम है विस्तृत है। जैसा वास्तवमें पैदा हो

सकते हैं कृष्ण कारागारमें — तब फिर क्या हमारे गीत पैदा करनेके लिए हमें नन्दन-कानन चाहिए? ये जन-संकटों और अनरवके बीच जन्म नहीं ले सकते?

पुरातन कविता ऊँचे दर्जेकी है। प्रेम और शृंगारकी कवितामें हम सूरदास और कबीरसे आगे बढ़ नहीं हैं। हम पर कर्तव्य है कि हम उनका अध्ययन करें। जनयुग उत्थान और पतनमें हमारी जिम्मेदारियाँ गुरुतर हैं। हम उनका भार-वहन करनेके लिए योग्य बननेका प्रयत्न निरन्तर करते रहें।

उत्तम साहित्य फैलानेकी चीज नहीं होता पकड़कर फेंकनेकी चीज भी नहीं होता वह रसको बिन्दु-बिन्दुपर उतारनेकी चीज होता है। नदियाँ अपना विज्ञापन छपवाये बिना ही प्यासोंको अपनी ओर खींचती हैं और उनकी प्यास बुझाती हैं। प्यासा यह नहीं देखता कि नदी टेढ़ी-बाँकी है या ऊँची-नीची है वह केवल उसका स्वाद ही देखता है। उसी तरह हमें देखना चाहिए कि कहीं कविताका स्वाद तो नहीं बिगड़ गया है फिर उसका छन्द या व्याकरण कैसा भी हो स्वादपूर्ण कविता तो बरबस लोगोंको अपनी ओर आकर्षित करेगी। जिस तरह सूर्य बिना तेल भरे किराया लिए और बिना सुविधा असुविधाका खयाल किये सब लोगोंमें प्रकाश बाँट जाता है उसी तरह उत्तम साहित्य अपना प्रचार आप-ही-आप कर ले जाता है। पचासम तो प्रचार भाषाका होता है साहित्य तो सज्जन अपने आप ही ढूँढ लिया करते हैं। मेरी इच्छा है कि राष्ट्र भारती हिन्दी का साहित्य दिन दिन उन्नततर होता जाय और सूर तथा तुलसीकी यह पवित्र धारा जनताकी भावनाओंसे सहज हो।

चम्पा साहित्य परिषद्
१९५५



रचना शीर्षक ढूँढ़ती है

सज्जनगण

मैं कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझे इस समारोहका अध्यक्ष चुना। देशकी अन्य भाषाओंकी तरह हमारी भाषामें कवियोंकी भी एक पीढ़ी ढलती चली जा रही है और पता नहीं कि 'ज्या रहीम मुख मौसम' बदन दमि कुछ बाद बालकी उक्तिकी तरह इसपर कुछ कहा भी जा सकता है या नहीं।

क्रियाशीलतामें कवि ज्यों-ज्यों बढ़ता है, त्यों-त्यों उसे मनस्ता और औरोंका पतन निमन्त्रित करनेवाली आतिथ्य वर्जित रहकर आत्माओंके बीच उसका परिचय कराया जाता है। कलाकार इस व्यापारको चुनौती मानता है और किन्तु बहुत बड़े परिश्रमोंका उत्तरदायित्व लेकर यह साबित करनेके लिए बाध्य है कि वह उत्थानका मन्त्र-वाहक है पतनका पृष्ठपोषक नहीं।

इस बार भारतवर्षने एक बहुत बड़ा दृष्टा एक बहुत बड़ा महर्षि एक बहुत बड़ा योद्धा एक बहुत बड़ा कवि खो दिया। जो चिन्तनकी चट्टानों-को जब हिमालयसे तोलता था तब वाणीमें बाँधता था। जिसके जीवनकी कल्याण कोटि-कोटि स्वर पुण्यार्थक गवित बनकर जिसकी वाणीमें फूट पड़ते और जिसकी क्रियामें टूट पड़ते थे। जिसने एक बड़ौदा काव्य इसने खो दिया। उसका जन्म जब उठता भाषाका सुहाग और दक्षता माल्य गिनती थी। देशकी शक्ति पीढ़ियाँ उसका अन्तःकरणमें पुकार उठती थीं। ऐसा न होते हुए भी जिसकी बात गायत्रीकी तरह पालन की जाती रही न होते हुए भी जिसकी बात धर्माज्ञाकी तरह मस्तक झुकाकर

स्वीकार की जाती, स्वर-माधुर्य न होते भी जिसकी बातपर सहस्र-सहस्र मस्तक डोल उठते, धनिक न होते हुए भी जिसकी बात सुनकर सहस्र-सहस्र प्राणियों और शत-शत संस्थाओंकी रक्षाके लिए धन बरस पड़ता और प्रियतम और प्रियतमाका पागलपन न होते हुए भी जिसका ईमान और बलिदान जिसकी कीर्ति और मूर्ति पीढ़ियोंमें दुहरायी जाती — उसे हमने खो दिया। जिसके मर्मोंमें दुनियाकी चीत्कार भर जाती, जिसकी उच्छ्वासमें करुणतमभावोंकी झंकार सुनाई पड़ती, जिसकी मुस्कान जिसके परिहासकी मनुहार होती और जिसके स्वरमें साम्राज्योंको कम्पित करने की हुंकार होती उसी महान् मानव-काव्य अथवा काव्य-मानवको हमारे देशका भूमिल खो दिया।

विरहमें तो नन्हीं क्षणका बच्चा अच्छा मालूम पड़ता है, किन्तु हमारे दिवंगत युग-निर्माताकी मरण-तिथि अभी आठ महीने कुछ दिनकी है और जन्मतिथि अस्सी बरस तरह दिनकी, किन्तु कौन उन अस्सी बरसोंको प्यार नहीं करता और जिन्हें ये आठ महीने प्यार हैं? सच तो यह है कि हमने अपने देशका बचपन और राष्ट्रकी आशाओंका सर्वस्व खो दिया। साहित्य यदि प्रतिबिम्ब है तो हमने अपनी वाणीमें प्रतिबिम्बित होनेवाला महान् बिम्ब खो दिया। हमने महात्मा गान्धीको खो दिया और महात्मा गान्धीको खोकर इस प्राच्य विद्या परिषद्का उत्तरदायित्व भी देशके सामने अधिक बढ़ गया।

इस पुण्य स्मरणके बाद मुझे एक ही बात कहनी है। जिस तरह जब हम मृदंगके स्वरमें एक गीतकी पंक्तिको ऋषभमें न उतारकर गान्धारमें, मध्यममें, पंचममें उतार देते हैं तब हमारे संगीतका निर्देशक स्वर अनुनय, आनन्द और समर्पणका स्वर बन जाता है, उसी तरह जब हम दुःखों और अनुतापके स्वरोंको जीवनकी भूली-भरी रम देकर धीमस-म धीमम प्रस्तारमें गद्गद होकर गुंजार उठते हैं तो काव्य स्वरके मीठे-पनसे मानवीयता अवलम्ब छोड़कर चढ़ाकर हृदय-प्रदेशमें सीधा प्रवेश पा

जाता है। उस समय तानसेनकी प्रशंसामें सूर-द्वारा कही गयी किंवदन्तीकी तरह कोई कह-सा उठता है कि

> विधना यह जिय जानि कै सेसहिं दिये न कान।
> धरा मेरु सब डोलिहैं, तानसेन की तान॥

कवि बेचारा अपनी लाचारी क्या कहे। अपने ही रससे पहले वह खुद गीला होता है और फिर अपने उसी वैभवको लोकरसिक सम्मुख रख देता है केवल यह लाचारी प्रकट करते हुए कि — विधाताने मुझे वाणी तो दी है किन्तु उसमें तार नहीं दिये।

काव्य केवल एक ही जीवधारीसे बना — मनुष्यसे। सूर और पुण्यात्मा जब मिथिलाकी जनकदुलारी और अयोध्याके अवधविहारी बनकर कविके अन्तरमें उतरे उन भावोंकी जिस भूमिपर कवि बैठा था उसमें प्रेमका भूकम्प क्यों न आ जाता। उस समय उसकी अन्तर्लीन शक्तियाँ मानसका निर्माण करें या साकेतका उसके भावुक रथके पथको रोकनेवाला कौन है?

गद्य ही स्थलपर आकर काव्य दो धाराओंमें बँट गया। एक वह धारा थी जिसमें वाल्मीकिसे लेकर तुलसी मैथिलीशरण और कृष्णायनके रचयिता आ गये। ये अपने भगवानको अपने आराध्यके चित्रणको अपने काव्यके पावनको इतना ऊँचा उठाते कि उस बन्धनमें अपनी कला अपना व्यक्तित्व अपना अस्तित्व सब कुछ भूल जाते। उनके संकल्पोंको शाश्वत समाधिमें-से उनके आराध्यकी सुगन्धि आती है। दूसरी ओर वे कवि हैं जिन्हें अतिशय स्मरण है कि भूल ही जिनकी लाचारी भूल ही जिनका वैभव भूल ही जिनका व्यक्तित्व है। कालिदाससे लेकर बाण बिहारी प्रसाद निराला पन्त महादेवी दिनकर नवीन और अपनी भूलोंका अनन्त वैभव अपनी कालो मूर्तिके उपमा बनाकर लिखनेवाले ये समस्त मन्न जो बनाकर मैदानमें कलम पकड़नेकी साथ लेकर चल रहे आये हैं और आज भी आ रहे हैं। गान और संगीतके धर्मग्रन्थकी तरह इन्हीं का

धारायोंपर काव्यका वैसाह वैभव ठहरा हुआ है।

कलम, कूँची, छेनी या रस-भरे आत्मनियन्त्रण अथवा कौशलको लेकर कलाकारने अपने अंगोंके टुकड़ोंसे तोड़-तोड़कर कलाका स्वर, स्वरूप और साज युगमें बिखेरना प्रारम्भ किया। जब-जब उसकी कलाइयाँ घूम उठीं और उसकी भृकुटि भूम उठी, जब-जब उसने अपनेको पत्थरपर, दीवारपर, कागजपर, कपड़ेपर, जमीनपर और अपने ही अंगोंपर उतरता हुआ देखा तब-तब अपने रचना-कौशलकी ऊँचाईकी चोटीपर चढ़कर उसने अनुभव किया कि वस्तुको छोटा माननेका धुएँका दर्द मानो वह हार चुका है। वह तो स्वयं अपने ही व्यक्तित्वको मापते, अपने ही तरंगाय मान भावोंका लेखा-जोखा पेश करनेमें उद्योगी सिद्ध हुआ है। उसकी रचना समष्टिके मानसका साधन बनकर भी युगके पथमें व्यष्टिकी साधनाका ईमानदार स्वीकृतिपत्र-मात्र है।

मानव आया, मानवकी कथा साथ आयी। बहुएँ और बेटियाँ उठीं, उन्होंने गेरूका रंग बनाया और दीवारपर श्वेत पृष्ठभूमि बनाकर दरवाजोंके आस-पास शीशोंपर कलियाँ रचे, अपने सामने माँ-बापको बैठाये, आशा करते हुए, तरह-तरहके चित्र बना दिये, घी लेकर मुँहपर लगाकर कुलवधुओंने जिनके भवनकी पूजा कर दी। कलाकारके उस विचारको जिसमें वह नारीकी शृंगारिता करता है, नारीका यह बनाव कितना स्पष्ट है — क्या नारीसे केवल अपरिपक्व तरुण भावनाओंकी प्रेरणा मिलती है? हम अपनी कुण्ठित मनोवृत्तिका विषकी जननीपर यह आरोप क्यों करते हैं कि वह प्रियतमके समक्ष केवल विषय-भुक्त रहती है। अल्पने कलाहीन चित्र बनकर बेटियाँ, बहनों और बहुओंकी भी आयें अल्पना बनकर दीवारपर उतरती हैं और पूजित होती हैं, उनमें जननीका उत्तर दायित्व अधिक पूजित होता है। वे चित्रके निर्माणका वरदान माँगती हैं, कामना अभिशाप नहीं।

चित्रों और मूर्तियोंकी कला विश्वकी ऐसी भाषा है जिसे अनुवादका

अभिव्यक्त होकर अलंकृत नहीं कर पाता। यह इतनी सक्षम भाषा भी है कि जिसे समझनेके लिए शब्दकोषोंकी आवश्यकता नहीं हुआ करती। वह ऐसी मौनी कला है जो घटनाओंकी उलझनका पता दिये बिना हमारे अन्तरंगपर रमणीयता और उसकी वेदनाओंको बिलकुल नंगा खड़ा कर देती है। मानो यह हमारे अन्तःकरणकी खिड़की है जिसमें आनन्दमय, उल्लासमय करुणामय अथवा क्षमाशीलके रूपमें हमारा मन कुछ क्षणोंको दीख रहा हो। कलाकी नन्हीं-नन्हीं उंगली और मुट्ठी हमारे अतीतसे वर्तमान तक जीवनके बोधकी स्मरण-यात्राके संकेत चिह्न हैं। कलाकी भाषा मानबोध अनुभवकी मधुरतर कठोरतम और कटु मार्गोंकी सीमा है। मानों पार्थकों और घटनाओंका मोह लांघते हुए, कलाका स्वर गूंजाकर करुण-ध्वनि है। मानव विकारोंसे निर्मित स्वभाव युगों-युगोंसे कलाकी रचनाके रूपमें शाश्वत हैं और उन्हें लिये हुए नाम तथा उन्हें पहनाये हुए कथाके आवरण अथवा आकस्मिक दीख पड़ते हैं। भारतीय कायक कहिए और पाश्चात्य भाषोंके भिन्न-भिन्न भाषाके लोगोंको पृथ्वी-भरमें समझाते कहिए, किन्तु कोयलका चित्र दीजिए या जीमें कूक उठनाको उसकी कूकका परिचय कराइए और जन-जनके मन तक सरलतासे पहुंचा दीजिए कि आप क्या कह रहे हैं। जहां ज्ञान आन्तकारक बोझसे थक उठा हो और सूक्ष्म विचारकता उसकी बीमारी बन चुकी हो वहीं उस थके हुए मानवका रक्षाके लिए कलाको पुकार कीजिए। वह आराधनाशीला ज्ञानकी रक्षा कर ले आयगी। जो ग्रन्थ केवल शब्दके द्वारा मानवकी समझमें क्यों नहीं आ पाये सूक्ष्म भर 'स्पन्दन'ने उन्हें क्षण भरमें समझा दिया।

हां कला लहर है किन्तु लहर-भाव नहीं। कला जीवनके स्वभाव स्वरूप और कौतूहलका अंश है ठीक है किन्तु आत्मजनकी उंगलियों अपन अभिव्यक्तिका मोह भरे या विद्रोह भर रंगना क्योंकर एवं उतार सकें इसके लिए हमारी एक लहरकी अपेक्षा लहरोंकी निरन्तर मात्राकी

मानो साधनामय अभ्यासकी आवश्यकता है। हमारा अटूट धैर्य अजेय साहस और अपरिमित आग्रह कलाका तारतम्य मात्र है। कलाका रूपदान और प्राणदान तो हमारा चिरन्तन स्नेहमय अभ्यास ही है। अभ्यासके साथ स्नेहदानके इस परमयोगमें भी जितने ही दोष छिपे जायेंगे अज्ञानके स्तर कलामें-से उतने ही ऊँचे उठकर बोलने लगेंगे। चित्र काव्य नृत्य गीत मूर्ति कोई भी इसका अपवाद नहीं।

विचार आया राग जागा अनुराग आन्दोलित हुआ आवर्त घुमड़ाया और लोक-जीवनपर उतरनेके लिए, मानो जीवित रहनेके लिए यह सबके सब चल पड़े कलाका माध्यम ढूँढने। चल पड़े वे किसीकी कलम काष्ठ या कूँचीके मोहताज होकर। मूल कलाका बल है। माध्यम और अभ्यास उसके पंख हैं जिनके बिना वह उड़ नहीं सकती। आत्माकी द्युति तक और अपरिपक्व आवेगोंसे ईश्वरीय सबसे आनन्दके संकेतों तक कलाके जो डोरे खिंच रहे हैं और उनपर रस भीना किन्तु पथ खोजता मानव जिज्ञासु बैठ-बैठकर चढ़ता और उठ-उठकर बैठता-सा जो दिखाई दे रहा है यहीं कलाका जो अपार इतिहास बन रहा है। दोषके सुकोमल क्षमा उसने हजार-हजार बारकी त्रुटियोंके अभ्यासके बाद ही कलाको उस कौशलमय जीवित रहनेका वरदान दिया है। स्वाध्याय और श्रम जीवनकी तरह ही कलाके अस्तित्वको चिरन्तन रखनेके आकर्षण-बिन्दु हैं।

कलाकी यह मूढ़ता नहीं सोचती कि वह केवल अपनेमें व्यस्त हो अपनी ही अभ्यस्त हो। आप दत्तक तो न लें दूसरेके पुत्रको अपना न कहें दूसरेकी वस्तुको कलापूर्वक पराक्रमके रसोपयोगको भी आप अपनी मौलिकता न कहें किन्तु कलाका ही नहीं किसी भी उत्तरदायित्वके निर्माण-हेतुका पथिक औरोंकी रचनाके प्रति उपेक्षा और उदासीनता रखकर निर्माता नहीं रह सकता। शताब्दियोंके संचयमें उधार लिये बगैर धारणाएँ और मूर्तें अज्ञान रह जायेंगी और अभावकी उद्दामता प्रकाशमें पीढ़ियोंकी किसी भी मूल्यपर स्वीकृत न हो सकेगी। जिस

तरह सीढ़ीमें अपना घर ढूँढ़नेवाला व्यक्ति अनेकोंके घरों और दरवाजोंके सामनेकी ज़मीन नापता हुआ अपने घर पहुँच पाता है, अथवा जिस तरह अपने अन्त तक पहुँचनेवाला तूफान अनेकोंके खेतों और बगीचोंको पार करके ही अपने छोर तक पहुँच पाता है, उसी तरह रचनाओंको अनेक रचनाओंसे प्रेरित होकर ही शिल्पको अपनी मौलिक कृतिमें अपनी मौलिक कल्पनाएँ देना होती है। प्रगतिकी साधना यानी गति पथपर उदासीन कैसे रह सकता है।

विद्रोह? हाँ आजका कलाकार विद्रोहकी आवश्यकता अनुभव करता है। किन्तु जिस तरह कल उसके बोध आजका साहित्य कहला रहा है उसी तरह आजका विद्रोह कलको रूढ़ि कहलाने लगेगा। विद्रोह और रूढ़ि — ये दोनों आजके शत्रु और कलके पुराने भाई-बहन कहलाते आये हैं। समय सापेक्ष है। यद्यपि हम उसके खण्ड टुकड़े करके अपना सन्तोष कर लेते हैं। जिस तरह चित्रकार निस्सीम पृष्ठभूमिपर छोटी-छोटी सीमाएँ बनाकर वस्तुओंके भाव और अस्तित्वका ज्ञान कराया करता है उसी तरह हम समयके टुकड़े करके खुदको अपनी जड़ता और स्थिरताका परिचय कराया करते हैं। जिसे हम भूतकाल कहते हैं वह अनन्त पोथी पत्रों और कृतियोंके इतिहाससे भरा पड़ा है। जिसे हम भविष्य काल कहते हैं वह हमारी सुखद-कल्पना अटल विश्वास है जिसे हम भूतकालकी संचित निधिसे पाता है। किन्तु जिसे हम वर्तमान कहते हैं वह हमारी आँखोंके-ही इस तरह खिसक रहा है मानो वह अभी अभी और अभी ही शायद निकल जायगा। वर्तमान हमें आकारमें किसी बड़ी पत्थरकी चट्टानकी तरह मिला जिसपर अपने हथौड़ोंकी पच्चीकारी बनानेके लिए हमने अपनी रचना लिखी और देखते-देखते वह चट्टान रचना और रचनाकार दोनोंको पानीमें मिलाकर न जाने कहाँ विलीन हो गयी आजकलोंके बाद हम आत्म-संकीर्णताके अभावमें इसी वर्तमानसे पराजित हैं बड़ेकी चट्टानकी अंगभरभरको चट्टान समझकर हम बैठ गये हैं। न हम

उसे भूतकालके हर्षोन्मेषसे परखा न भविष्यके सूर्यकी किरणोंसे उसकी आँख की। हमें अवकाश कहाँ था। पानीकी चट्टानपर अपने सपनोंके चित्र बनाने बैठ गये हैं। अतः वर्तमान कालकी पृष्ठभूमि चुननेमें भूल करता है उसके चित्र धुँधले हों उसके गीत धुँधले हों उसके स्वर अर्थहीन हों और उसकी रचनाएँ लोकरुचि तक पहुँचनेमें असमर्थ हों तो इसमें आश्चर्य क्यों होना चाहिए? युग वधूकी अमर नूपुर ध्वनि बजनेके लिए चरण रखनेकी जमीन दृढ़ तो चाहिए। इसीलिए भूतकाल यानी इतिहास ऐसे निर्माणोंको अपने पास संचित रखनेसे इनकार कर देता है और वर्तमान काल यानी लोकरुचि उसे युगमें बहरी हो जाया करती है। यही कारण है कि आजके लेखकको युगके विद्रोहके लिए आमन्त्रित किया है।

ध्वन्यालोक लोचनमें अभिनवगुप्तने प्रतिभाके विषयमें लिखा है—'प्रतिभा अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा प्रज्ञा।' आजका कलाकार इस कथनको उलटकर नहीं इस कथनको सम्पूर्णतः मानकर विद्रोहके लिए उपस्थित है। इसलिए कि पोथे युगके कलाकारोंने और पाठकोंने कलाका स्वरूप नहीं विस्मरण माना। कला मानो जगत्के दर्शोंको भुला देनेमें एक मोहक कोमल सुन्दर भुलावा रही है। आजका कलाकार कलामें कष्टोंका इतिवृत्त लिखनेकी क्षमता चाहता है। वह वस्तुस्थितिका विस्मरण नहीं चित्रण चाहता है। भक्तिकालका वैराग्य कलकी हृदयहीनता और जड़ता और कलाकी विस्मरण-शीलताका काव्यशास्त्र विचार—आजके कलाकारके ये सब मानो एक ही थैलीके चट्टे-बट्टे हैं। वह साहित्यको दोनों सिरोंसे जलती आगवाली मोमबत्तीका एक टोटा नहीं मानता जिसका प्रकाशके पूर्व मानो न हो और जिसका अस्तित्व क्षण-भरमें नष्ट किया जा सके। इसीलिए आजका कलाकार कालिदासका कला-वैभव तजकर तुलसीदासके चरणोंमें बैठानेको बाध्य है। वहींकी भुलावा बनकर चाहे घराबमें जाये चाहे बनाये अवतक राम-रावणमें रमकर अभिमन्युकी आँखों और उँगलियोंपर उतारनेकी क्षमता उन बेड़ियोंमें न हो आजका कलाकार उसे विवशता

स्थिरवस्तु मानसके लिए तैयार नहीं है। आजके चिन्तकके लिए कला अयथार्थका ऐसा आवरण नहीं है जो यथार्थके कष्टोंसे बचा ले जानेके लिए दूर खींचा जा सके और पीढ़ीको भी धोखा खानेके लिए सजग कर सके। वह यह भी नहीं मानता कि प्राचीन कौशलको थोड़ा-सा बदल देनेसे नवीन कलाका निर्माण हो जायेगा। वह मानव धारणाकी समूची पृष्ठभूमिमें ही परिवर्तन चाहता है। भूखोंके जिस युग वैभवसे भरा कला ऐसी भूख हीन कैसे होगी जो वर्तमान युगका सामना न कर सके? किसी युगके कलाकारका विष्णु लक्ष्मीको गोदमें बैठे हुए अप्सरीसे पैर दबवाते हुए क्षीरसागरमें निवास करता था। वर्तमान युगका शक्तिशाली कलाकार साधु भगत भक्त बनकर आया और उसने क्षीरसागरसे खींचकर अपने प्रभुसे नामदेवकी कुटिया बनवायी। भिन्न-भिन्न समाज भगवान अपने मालिक-से कौन-कौन-सी मजदूरियाँ नहीं कीं। यदि आजका कलाकार अपने भक्त कृषकोंकी इन स्नेह-भरी भूखोंसे सबक लेता है तो उसे अपराधी कैसे माना जाये? जो धारणाएं बहुत बूढ़ी हो गयी हैं जिनमें जिन्दगीमें चलने-फिरनेकी क्षमता नहीं रह गयी है, वे समाधि क्यों न ले लें? यदि वे निश्चित होनेसे पहले समाधि ले लेंगी तो इतिहासमें उल्लेखके लिए जगह पा लेंगी नहीं तो वे खोल लेकर जीनेवाला मुरदा बनकर जियें अब ही वायुयानकी गतिमें दौड़ते हुए विश्वके द्वारा उनके नाममें गन्द और दुर्गन्धित इतना ही किया है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि धार्मिक धारणा राष्ट्रीय आवश्यकता नैतिक आचार और व्यक्तिकेन्द्रित धर्म और चाकरी ये अपनी जगहपर ठीक हैं किन्तु ये अपने बन्धनोंमें जकड़कर कलाकारसे सब कुछ माँगें उससे भूख हीनता और स्नेहहीनताकी माँग न करें। ये उसे रूप न दें किन्तु उसका मार्ग न छीनें ये प्रेरणाकी पवित्रताका अभिमान अपनेमें रखें अनुकरण-की अनुदारताकी माँग न करें। कवियोंने अनुदारता माँगी थी और कबीर तुलसी और मीराने विद्रोह किया था। परम्पराके वैभवके रथोंको त्याग कर

३

आजका कलाकार अपने ही पैरों यात्रा करनेके लिए बाध्य हो गया है। वह जान गया है कि परम्पराके विशाल वटवृक्षकी अपेक्षा मूलक दो नन्हें नन्हें पत्तोंपर उसके पृथक अस्तित्वकी पहचान सुरक्षित है। जिस नवीनता से हम घबराते हैं उस नवीनताकी प्रेरणा तो हम अप्राप्य भविष्यसे नहीं प्राप्त इतिहाससे ही थी है। नव्य दृष्टि कविको शिरपर आरूढ़ करती है और तत्व पुष्टि जनकी यथार्थताको कसका आश्चर्य बनाती है और परम्परके अभ्यासका रूप देकर आगे जिनके आविष्कारोंका निर्माण कर युगके वैभवके रूपमें उन्हें प्रस्तुत कर देती है। आविष्कार निश्चयकी स्पष्ट छाया है। कला और साहित्य दोनों हम निश्चय इस नियमसे घबराये हुए नहीं सोचते। निर्णय तो मूलको समुदाय है। यदि उसे गुमराह होना पड़ता है तो निश्चय तक पहुँचकर ही।

जॉन मार्लेने अपने 'ऑन कॉम्प्रोमाइज' ग्रन्थमें एक जगह कहा है कि यदि समाज कुछ हानिकर मतों और प्रथाओंमें जकड़ा हुआ हो और नवीन विचारोंका द्वार बंद हो तो कभी-कभी अपने विद्रोहको हमें रोककर रखना होगा। किन्तु सत्यकी स्वीकार और झूठका इनकार करनेका मध्यबिन्दु कलाको तस्वीरमें नहीं बसा है। उसका रस शाश्वत अमरत्व है और विश्वास पढ़कर निश्चय तक वह जाता उसका सुकोमल पथ है। यह सम्भव नहीं कि अपने रक्तमें बसी हुई आत्मप्रत्यभिज्ञाको मूलतः वह अपमान कर सके। पूजाकी पवित्रता या आगेके आगे मूर्तोंको समर्पण खोजना अपनी नहीं अपने अभिमतकी वस्तु हो जाया करती है। यदि ऐसा कलाको कलाकार रोके तो साधु विनोबा उसपर यह अपराध लगाये बिना नहीं छोड़ते कि कलाकार अपने साधुत्व भरे पुरुषार्थका अथवा पुरुषार्थ भरे साधुत्वका आत्मविकासी हो गया है स्वयं उपयोग करने लगा है। वे कहते हैं कि सदाने मूर्खोंके आसमानसे पानी बरसाया किन्तु कठिन हिमालयपर वह पत्थर जमकर बैठ गया। नीचे जन-जीवनमें प्यासा हाथ प्रवाहमयी धाराके हम स्वभावसे बढ़ चला उठा। इसीलिए साम्यतात्त्व

बिनायेन कालो गच्छति धीमताम्' की बात हम सुनते आये हैं। कलाकारको स्वीकार नहीं है। वह तो इसके आनन्दमें मग्न होकर भी जीवनको कीमत चुकानेसे इनकार नहीं कर सकता। वह लोक-जीवनकी उपेक्षामें पुण्यात्मका अनुभव नहीं करता। वह जीवनकी पूरी कीमत चुकाना चाहता है और उसपर झूमकर मिट जानेमें रसका अनुभव करता है। यह सच है कि कलाका ग्रहणपक्ष न नहीं छू सकता जो सम्पन्नता न उत्पन्न कर सके। जिन्होंने मस्त बनाना ही नहीं सीखा है व मस्त बनकर यदि ईश्वरता-की याचना करते भी तो क्या करते। सच तो यह है कि कलाकी क्षणमें वर्तमानके तरह समाजके भौतिक पक्ष और भविष्यके मंगलमार्गका ध्यान होना चाहिए। कहते हैं कला जीवनका प्रतिबिम्ब है। यह प्रतिबिम्ब ऐसा हो जिसकी कमियाँ न चुभा सके।

जीवन तो मानवकी शक्तिको ठण्डेबासी स्वभावोंमें जकड़ते हुए उनका नाश करने और अनुकूलतामें गड़नेवाले काँटोंको उखाड़ फेंकने और सुमनकी पुष्पक पर्यंक उत्तरदायित्वकी गोद भरी उँगलियोंसे दबाता बालमें ही असली परिभाषा देखता है। कला हम जीवनसे दूर रहकर कहाँ रहेगी? क्या जीवन जलता रहेगा और कला बाँसुरी बजाती रहेगी क्या वह इतनी क्रूर इतनी निष्ठुर हो सकती? जिस तरह समुद्रकी लहरें बीसों मील जाकर और पीछे आकर भी गम्भीर जलमें शाश्वत समताका निर्माण किए रहती है उसी तरह कलाको इतिव मधुर शीतल प्राणमय रहते हुए भी उसमें जीवनकी मैत्रीपनकी भावना सबलता होनी चाहिए।

महान् सुन्दर कवि मानावलापन एक बार लिखा था कि पूर्व और पश्चिम पुण्योंका तराजूके य दोनों पलड़े हैं और भारतवर्ष इन दोनों पलड़ोंके बीचकी डंडी है। मानावलाके जो उत्तरदायित्व भारतीय कलाका सौंपना चाहते हैं मनु कहें हममें क्षमता ही कि हम उसे स्वीकार कर सकें।

अपने देशके मस्तीपर कला अपना कार्य सिद्ध नहीं चाहती। जिसके

मांगती है प्रतिबिम्बित। और उत्तरदायित्वके भारसे अपना मुँह चुराकर प्रतिबिम्बित कैसा? मोहक मञ्च मोटे दाम उथला ज्ञान सलोनी आकृति सुन्दर स्वरूप इन सबके एकत्रित कॉफीहाउसका साहित्य कैसे बन सकेंगे? जीवित समाजके प्रतिबिम्ब तो स्वयं जीवित होंगे। एक दूसरेसे बोलते हुए, एक दूसरेसे होड़ लिये हुए। देशकी स्वतन्त्रताके बीस महीनोंपर बैठकर आजका लेखा-जोखा लेनेवाले हम लोग अपना लेखा जोखा लेना न भूलें। संघर्ष क्षोभ खतरे, परिवर्तन क्रियाशीलता और पुरुषार्थ इन सबके बीच हमारी प्राणवान् कलाका स्वर प्रतिबिम्बित होना चाहिए। हमारी कला देशकी उबासियों-जैसी अल्पप्राण न हो। वह श्वासों-जैसी महाप्राण होनी चाहिए। अनेक तरह शताब्दियोंके पश्चात् भारतीय स्वतन्त्रताकी टूटी कड़ियाँ फिर जुड़ीं। इन कड़ियोंके जुड़नेका स्वर हमारी कलामें प्रतिबिम्बित होना चाहिए। मुझे तो एक ही बात कहनी थी और फिर एक ही बात कही कि प्रभु करें यह मस्तक और यह मस्तकस्थीत उस देशकी आराधिका राधिकाके स्वरके सिरताज बन सकें जिसके आकर्षणसे प्रभावित मुरलीधर गिरिधर और कृष्ण मुरारी कहला सकें। जीवन हमारा कृष्ण हो कला हमारी राधिका हो और हम एक तीर्थयात्री हों जो अपने देवतापर अपना समस्त चढ़ा सकें अपना सब-कुछ समर्पित कर सकें। तथास्तु।

ओरिएण्टल कॉन्फ्रेंस पटना
१९४८

■

विजयी होवे यह भाषा – यह राज

मैं सम्मेलनका कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझे इस संस्थाके उद्घाटनकी सेवा सौंपी। यद्यपि अब आपका यह समारोह अधिक सक्षम हाथोंमें सौंपना चाहिए थी। यदि गुरुजनको हा आप छोड़ें तो यह सेवा तो इस प्रान्तके महान् मनीषी पण्डित लोचनप्रसादजी पाण्डेयको अधिक शोभती। मैं तो उनके चरणोंके निकट बैठकर भी बहुत सुख पाता।

यद्यपि इस संस्थाका जन्म १९१६ में हुआ है किन्तु ३६ वर्षोंमें इसके केवल १६ अधिवेशन हो सके हैं। सन् १९३१ तक हमारी यह संस्था प्रान्तकी राजनैतिक परिषद्के साथ चलती रही। सन् १९३५ के बादकी अधिवेशनके पश्चात् इसके अधिवेशन स्वतन्त्र होने लगे। इस बात पर बहुत चिन्ता व्यक्त की जाती रही है और आज भी की जा रही है कि प्रान्तके हिन्दीभाषियों और हिन्दीप्रेमियोंका रुख इस प्रान्तीय साहित्य सम्मेलनकी ओर उदासीनताका है। मेरे विचारमें प्रान्तका रुख इस संस्थाकी ओर मौजूदा आपको तब मिलेगी जब इस संस्थाको आप स्वयं स्वतन्त्र संस्थाके रूपमें देखना चाहेंगे। उसका यह है कि एक तो आप इस संस्थाको सरकारी आश्रयसे एक परम्परागत प्रतिष्ठान बननेसे रोकें। और सरकारी सामन्तोंका इस सम्मेलन-द्वारा स्वागत करें। उनके सिवा आप स्थायी समितिके विशेष अधिवेशन भी कर लें। किन्तु इस संस्थामें-से यदि सरकारी प्रभुताकी गन्ध आयेगी तो हमारी सरकार हो जानेके पश्चात् भी जनताकी विमुखता, दरिद्रता और अज्ञानतामें महानताका निर्माण करनेवाली स्वतन्त्रचेता शक्तियाँ और जन जीवनकी सहज-सरल निर्मल रुचियाँ इस संस्थाकी ओर आकर्षित न हो

पायेंगी। हम तो इस संस्थाको तो आप सीमा-वासियोंके वरद बृहस्पतिके तप करने और तपोवनपर विश्व-निर्माण करनेका स्थान बनाइए। राजमन्दिरोंपर भारतीयोंके मुकुट और महल भोगोंपर बिकते देखे जा रहे हैं। किन्तु बृहस्पतिकी विद्याको चुनौती देनेकी शक्ति किसी युगमें नहीं थी किसी युगमें न हो सकेगी। इसी तरह धन-वैभवकर नहीं। इस मन्दिरमें धन और प्रभुता पूजा पाने नहीं मस्तक झुकाने ही आयें। ऐसा लगाइए कि आप और हम इन वर्षोंको इतनी पूजनीया बना सकें। दूसरे इस देशकी महान् संस्थाओंके प्रयत्न भी इस सीमा तक विफल हैं जब तक वे प्रभुता नेतृत्व प्रयत्न और संगठन ऊपरसे जनतापर लादे जाते रहे हैं। अतः अब संस्थाओंने नीचेसे साधारणतामें-से बल पानेका आयोजन किया है इसलिए कि देश-सेवाको ये संस्थाएं जीवित रह सकें। साहित्य सम्मेलनको भी उसी पथको अपनाना होगा। अब सम्मेलनका प्रान्तीय कार्यालय स्थान और पत्रका पूरा उत्तरदायित्व अपने सिर पर लेकर इन संस्थाकी रक्षा करनेमें सफल नहीं हो सकता। हो भी कैसे सकता है? हमारा यह दावा कि हमारी भाषा देशकी भाषा और हमारे विचार उस भाषाके बोलनेवालोंके विचार हैं कैसी विडम्बना है। हम शहरोंमें रहते हैं। शहरके कुछ लोगोंको लेकर विचार करते हैं और पन्द्रह फी सदीकी आबादी और २ फी सदीके शिक्षितोंको लेकर साहित्यिक व्यवस्था देते हैं और कहते हैं कि यह समस्त देशका विचार है। इस व्यवस्थाको बदलना होगा। हमारा यह अर्थ मुख्य है कि गांवमें साहित्य नहीं रहता या साहित्य नहीं समझा जाता। तुलसीदास सूरदास कबीर इनमें-से कोई भी न राजगृह-जन्मा कवि है और न शहरजीवनका दायित्व। इसपर मजेकी बात यह है कि गांवका ग्रामीण समाचारपत्रोंकी सारी दौड़-धूपके पश्चात् भी ग्रामीण कवियोंके प्रति अपनी श्रद्धा रखता नहीं है और जनमानस कविता जिनमनरंजनको ओर समझता नहीं है। इसलिए हमारे जनपदोंके प्रयत्नोंको भाषाकी ओर मिलाइए। पुस्तकालय और

बिहारमें इस दिशामें कुछ प्रयत्न हो रहे हैं। वहाँ जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन और जनपद हिन्दी साहित्य सम्मेलन होने लगे हैं। मध्यप्रदेश मध्यभारत राजस्थान दिल्ली प्रान्त विन्ध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेशके पहाड़ी जिलोंमें जनपद हिन्दी साहित्य सम्मेलनोंके प्रारम्भ करनेकी नितान्त आवश्यकता है। यदि आप गाँवमें साहित्य लेकर जायेंगे और गाँवोंकी प्रतिभाओंको जिले-जिले और तहसील-तहसील आमन्त्रित करेंगे तो हमारे दिमाग बनकर मूर्छित रहनेवाले लोगोंकी मूर्छा छूटेगी और गाँवोंका संस्पर्श और सम्पर्क पाकर भाषा और साहित्य निहाल हो उठेंगे। हम शहरोंमें पनपने और आनन्दित रहनेका यह भावावेश-सा स्वभाव छोड़ना होगा। मुझे पूर्ण विश्वास है यदि इस प्रान्तमें जिले-जिलेमें हिन्दी सम्मेलन होने लगे तो इस प्रान्तकी अन्य संस्थाएं भी अस्तित्ववान् हो उठेंगी। और यह हिन्दी साहित्य सम्मेलन तो खूब फूलने-फलने लगेगा ही।

तीसरी बात यह कि गाँवकी भाषा और मूककी बोलीसे कृपापूर्वक साहित्यकी रक्षा करें। शहरके लोग शासनके व्यक्ति और धनिक प्रभुताएँ इस संस्थापर अपना वरदान अवश्य बरसायें किन्तु पिछले छत्तीस वर्षोंसे क्या आप कुछ सीखना चाहते हैं? धन और प्रभुतावान आज तक इस सम्मेलनके लिए कितने भवन बनवा दिये। कितने पुस्तकालय खड़े करके इस सम्मेलनकी ज्योतिको अमर किया? अपनी पाण्डुलिपि पाठीसे बनाये रखनेवाले लेखकोंकी भूख और कठिनाइयोंका कितना ख्याल रखा? आपमें-से हर एककी दो हथेलियाँ हैं। आपमें-से हर एक अपनी मजदूरीकी गाढ़ी कमाईमें-से बेटे-बेटियोंका ब्याह करता है। वही धन शासनको कर भी देते हैं। जीवनमें आप देखते क्यों नहीं कि पैरोंके ऊपर पेट भले हो किन्तु पेटके ऊपर हृदय है, हृदयके ऊपर कण्ठ है और कण्ठपर मस्तिष्क है। क्या हृदय कण्ठ और मस्तिष्कके बिना भी कोई जीवित रह सकता है। अतः आप अपने पेटकी गाढ़ी कमाईमें-से इस संस्थाका कोष

निर्माण कीजिए। बादल पृथ्वीके जलाशयोंसे ही बनते हैं और फिर जलाशयोंपर ही बरसनेके लिए लौट पड़ते हैं। आप प्रबल प्रतिष्ठा प्राण और पीढ़ीके ज्ञानका निर्माण साहित्यसे लेकर करें किन्तु जो कुछ पावें उसका अंश लेकर लौटकर साहित्यपर क्या न बरस पड़ें। क्या करोड़ पतियोंके द्वारपर ईमान रेहन रखकर भीख माँगती हुई आपकी मातृभाषा-की दशाओर आपको भली मालूम होती है। यदि आप अपनी श्रद्धाम्रताके कण-कण लेकर उपस्थित हों तो इस महान् कोषमें हृदयस्थान् सम्पत्ति अपना अंश दिखाये बिना न रहेंगे। किन्तु हमें पहले अपने जीवन और साहित्यकी कृत्रिम परिभाषाएँ बदलनी होंगी। विद्या तो वह जो मुक्त करे और विद्वान् वह जो भीख माँगे – कैसी विडम्बना है। अब पीढ़ी उठे पीढ़ियाँ उठें पीढ़ियोंके प्राण उठें पीढ़ियोंके मस्तक उठें और अपना एक कोष निर्माण करें और उसे एक ट्रस्ट बनाकर किसी बैंकमें रखवा दें। यदि भूमिकरकी तरह साहित्यका कर भी हिन्दीभाषियों और हिन्दी प्रेमियोंकी अनिवार्य आवश्यकता हो जाये तो शासन और धनवान् दोनोंके इस विश्राम किये हुए प्रबल विधायक रुपये काममें आने लगेंगे। नहीं तो जिस तरह रुपया धनिकों और शासनका होगा उसी तरह संस्थाएँ भी उन्हींकी दासी और काम भी उन्हींकी मरजीसे होंगे या न होंगे। जबतक जनताका धन साहित्य सम्मेलनका कोष न बनायेगा तब तक साधारणसे साधारण साहित्य भी विधायक प्रवृत्तियोंके अनुकूल साहित्य सम्मेलनके निर्माण-कार्यमें कुछ अधिक न कर सकता।

जबसे हिन्दी राष्ट्रभाषा घोषित हुई है तबसे लोग कहते हैं कि हमारा उत्तरदायित्व दुगुना हो गया है। यदि आपको याद हो तो अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनने अपने जन्म (१९१० काशी) के दूसरे वर्ष (१९११ प्रयाग) के अधिवेशनमें हिन्दीको राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया था और सन् १९१८ (इन्दौरके आठवें अधिवेशन) में महात्मा गान्धीने हिन्दीके विस्तारक व्रतको अपने विधायक कार्यक्रममें राष्ट्रभाषाका

प्रश्न बनाकर ले लिया और उसके लिए बड़े पैमानेपर देशव्यापी प्रयत्न किए तब वह समस्या समस्त देशके व्यापक हितकी समस्या बन गयी और हिन्दीको विविध रूपोंमें सबल सम्पन्न और यथोचित बनानेकी ओर किए जानेवाले अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्रयत्नोंमें भिन्न प्रान्तोंके तथा भिन्न भाषा भाषी भाई भी सहयोग देने लगे। किन्तु जब हिन्दी और हिन्दुस्तानीका प्रश्न उपस्थित हुआ तब समस्त देश हिन्दी साहित्य सम्मेलनके झण्डेके साथ खड़ा होकर पूज्य पुरुषोत्तमदासजी टण्डनके अधिनायकत्वमें अधिकाधिक बलपूर्वक राष्ट्रभाषा हिन्दीके राष्ट्रभाषा स्वीकार किए जानेके पक्षमें प्रयत्न करने लगा। मैंने गुजरा प्रान्तमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अध्यक्षके नाते स्वयं देखा कि पोरबन्द गुर्जर भौगोलिकके उपासक अखिल भारतमें हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनाये जान पक्षमें अपनी सम्मति रखते हैं। हम जिस उत्तरदायित्वकी बात करते हैं उसमें यह परम आवश्यक है कि हम जानें कि इस देशकी राष्ट्रभाष अपनी प्रान्तीय भाषाओंके साथ मिलकर ही पोसती है। उससे भिन्न गत होकर नहीं। यदि हमारे देशके भिन्न-भिन्न प्रान्त समूचे महान् देश आवश्यक घटक हैं तो हमारे प्रान्तोंकी भिन्न-भिन्न भाषाएँ हमारी राष्ट्र भाषाकी महान् घटक क्यों न होंगी और उनका बल अस्तित्व औ गौरव परस्परावलम्बी क्यों न होगा। यदि उपरोक्त पहलू हम इस बात को न समझ सके हों तो हम देशके लोगोंको इतना प्रतिभाशील तो होना चाहिए कि वे समय उपस्थित होनेपर भी हम परम आवश्यकता आकलन न कर सकें। मध्य प्रदेश ही वह अकेला प्रान्त है जहाँ हम मि कर सकते हैं कि राष्ट्रभाषाका व्यवहार अपने प्रान्तीय अंगों अर्थात् अ भाषाओंके साथ कैसा हो। हमारा प्रान्त द्विभाषी प्रान्त है जहाँ हिन्दी औ मराठी भाषा बोली जाती है। यदि यहाँके हिन्दी लेखक मराठा बालकवि अथवा माडगोलकर और देशपाण्डे अथवा वामनराव जो और अन्य मराठी लेखकोंको नहीं पढ़ सकते तो इसे हम गौरवकी

अध्ययनका विषय मानता हूँ। ज्ञानपर आधारित भाषा न राष्ट्रका निर्माण करती है और न राष्ट्रभाषाका। अनेक हृदयमें अनेकोंकी पहुँच और भाषाओंके बन्धनोंको तोड़कर जन-जनके जीवनके पास पहुँचनेवाली हमारी कलाकृतियाँ जिस मनोभूमिका निर्माण करती हैं उसीसे राष्ट्र बलवान् रहता है। राष्ट्रभाषी यह भी अनुभव करें कि उसके कलाकार अन्य भाषाओंके पर कर्जकी तरह उधार लिये जानेकी वस्तु नहीं। प्रान्तीय भाषाओंमें हिन्दी भाषाकी तरह ही और कुछमें तो हिन्दी भाषासे कहीं अधिक कलायुक्तता विद्यमान है। हिन्दी भाषा तो राष्ट्रभाषा इसलिए बन सकी है कि राष्ट्रके हृदयोंको एक हृदयमें जोड़े रखनेके लिए जब एक भारतीय भाषाकी आवश्यकता हुई तब हिन्दी ही सबसे अधिक देशके लोगोंकी समझमें आनेवाली योग्य भाषा सिद्ध हुई। कला क्षेत्रकी दृष्टिसे तो हम समस्त भाषाओंकी कला रचनाका अपने आदान-प्रदानके द्वारा एक बनायें और इस तरह देशमें निर्माण होनेवाली समस्त कलाओंको भारतीय राष्ट्रका मौलिक कला सर्जन मानें। यदि हम अपने घरके अन्दर कुछ काम करें तो हम देशके बुद्ध और वैष्णव मुनियोंके तीर्थ-यात्रियोंकी तरह आज भी हम भारतीय राष्ट्र भारतीय संस्कृति भारतीय प्रतिभा तथा भारतवर्षका निर्मल सन्देश लेकर पश्चिममें कुस्तुन्तुनियाँ और पूरबमें जापान तक हमारी नम्र प्रतिभाकी अनन्त सेवाएँ एशियाके भिन्न-भिन्न राष्ट्रोंमें पहुँचाती हैं और वहाँकी जाग्रत प्रतिभाके उज्ज्वल प्रकाशोंसे अपने राष्ट्र और अपनी राष्ट्रभाषामें दीपावलियाँ सजाती हैं। इसलिए भाषाका गृह-कलह अब बन्द होना चाहिए।

इसी प्रसंगपर मुझे इस भाषाके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है जो कुछ सरकारी और कुछ गैर सरकारी हलकोंमें चली आ रही है। मैं जिन हिन्दीवालोंको संस्कृत लदी अव्यावहारिक मानते हुए भी हिन्दीका हिन्दी रहना असह्य समझने लगे हैं। हिन्दी अपनेमें चार सौ वर्षोंसे भाषाके नाते जन-जीवनकी और भारतीय जन-जीवनके अभिप्रायकी

सोत बनकर रही है। किन्तु अब हर शब्द बदलकर कठिन बनाया जा रहा है जिन्हें उर्दू-फ़ारसीकी कठिनताकी शिकायत थी उन्हींके द्वारा संस्कृत शब्दोंकी कठिनता हिन्दीमें अनिवार्य माना जाने लगी है। कठिनाई तो यह है कि हिन्दी भाषाके नक्शवाले हमारे कुछ विद्वान्, संस्कृतके शब्दोंका भी क्योंके त्यों नहीं पढ़ते हैं। यदि बोल-चालका शब्द भाषामें रहता है तो जन जीवन उसे समझ लेता है। यदि शब्दोंका त्यों संस्कृत शब्द आता है तो वह भी देशके भिन्न-भिन्न भाषाओंमें उसकी मूल धातु द्वारा पकड़ा जा सकता है। किन्तु मनमाने हिन्दीकरण किये हुए शब्द और उनका कृत्रिम निर्माण जन-जीवनकी समझके सारे दरवाजेपर पहरेदार बनकर खड़े हो जाते हैं और जन-जीवनकी समझको आगे नहीं बढ़ने देते। एक दूसरी कठिनाई भी है। क्या आप हिन्दी भाषामें इतने नये कठिन शब्द डाल देना चाहते हैं कि पन्द्रह वर्षके पश्चात् जब भाषापर पुनर्विचार करनेका समय आये तब लोग यह कह सकें कि हिन्दी नामकी तो कोई भाषा भी है ही नहीं। उसे तो मात्र पन्द्रह वर्षोंमें डॉक्टर रघुवीर और उनके साथियोंने गढ़कर खड़ा कर दिया है। मेरी समझमें नहीं आता कि भिन्न-भिन्न भाषाओंके पहले भी जो शब्द मराठी गुजराती मलयालम तमिल तेलुगु उड़िया कन्नड़ और बंगला भाषाओंमें चल सकते हैं कौन कहना चाहता है कि व हिन्दीमें नहीं चल सकते। यह तो आवश्यक है कि शब्दोंकी धातुओंकी शुद्ध रक्षाके लिए हम अपना आवश्यकताके शब्द संस्कृतसे लें। जब मलाया तिब्बत सिंहल ब्रह्मदेश और इण्डोनेशियामें संस्कृत शब्दोंने भाषा दी है जब पश्तो और फ़ारसीके शब्दोंके मूलाधार संस्कृत शब्द हैं तब भारतीय भाषाओंकी पृष्ठभूमि संस्कृतरहित हो यह नितान्त अस्वाभाविक है। किन्तु हर संस्कृत रहित शब्दका बहिष्कार करके भाषामें नियामकका प्रयोग राष्ट्रभाषाका निर्माण कदापि नहीं कहला सकेगा। अतः इस दिशामें हम अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्रयत्नोंसे कुछ प्रान्तीय शासनों और

कुछ विद्वानोंको समझको अधिक महत्त्व न दें। यही हमारे लिए भाषाके क्षेत्रमें उचित मार्ग है और मेरा निवेदन है कि आपका यह सम्मेलन इसी नीतिको अपनाये।

अब कुछ साहित्यपर। हम यह मानें कि समूचे साहित्यको इस समय ऊँचा उठना है और हमारे कुछ व्यक्ति साहित्यकी पुस्तकें लिखाएँ चुनकर उनमें पढ़ जायें। किन्तु बिना बैंक बैलेंसकी धनिकताकी तरह बिना पढ़े-लिखेपनकी साहित्यिकता हमारे बीच बहुत पनप गयी है। मध्य प्रदेश ही की बात मैं नहीं कहता। मैं तो समस्त हिन्दी लेखकी बात कहनेका साहस करता हूँ कि हम धीरे-धीरे बिना पढ़ने-लिखनेवालोंकी कौम बनते जा रहे हैं। स्कूलमें हो कॉलेजमें हो जन-जीवनके किसी भी क्षेत्रमें हो हमारा अधिकांश पाठ्य-पुस्तकोंको छोड़ दें तो प्राय बिना पढ़े बोलता है और बिना अध्ययन किये समझकी खैरात बाँटता फिरता है। यदि एक तिथि निश्चित करके आप हिन्दी-जगत्में सामन्तोंसे लेकर साहित्यिकों तक सबकी तलाशी ले डालें तो आपको उनके गृहजीवनमें पुस्तकोंसे अधिक किसी वस्तुका बिखराव बढ़ा हुआ न दीखेगा। फिर बातोंको पूरी और बातोंकि अजूबोंके व बादशाह का ज्ञान देते हैं मैं जाने या बजान बोला जानके लिए देते हैं या बोलना देनेके लिए। लाचारी की तरह हमपर पढ़नेवाली कुछ पुस्तकोंको छापकर मानो हम कुछ पढ़ते ही नहीं और कुछ लोग तो उन पुस्तकोंको भी नहीं पढ़ते। तब क्लास रूममें नई कक्षाके आसन बिछाता बजानेवाले अध्यापककी तरह हम अपनी बुद्धिका प्रदर्शन जन-जीवनमें किये जा रहे हैं। हमपर बढ़नेवाली आज की भूख या तो समस्त बुद्धिहीनताका व्यवसाय है या अपने बड़ोंने मूर्ख न बननेकी पीढ़ियोंकी शिक्षा या लोकपद्धतिसे अपनेको न गिरने देनेका हमारी बुद्धिका उपक्रम है जो सम्पूर्णतः पराजित होकर भी पराजय स्वीकार करनेकी भूल नहीं करता। मेरा निवेदन है कि हम पढ़ें इस अध्ययन करें और बोली जानेवाली बातोंमें अध्ययनपूर्ण प्रभाव ही अपनी

पीढ़ीको प्रदान करें। यह न समझें कि केवल भाषापर लिखे गये ग्रन्थ ही हम देशको उन्नत कर न पायेंगे। भिन्न-भिन्न प्रकारके अध्ययनों गाथाओं आविष्कारों और इतिहासों तथा उद्योगों और कलाओंके ग्रन्थोंके रचना-कारोंको भी हम साहित्यके महान् मन्दिरका अधिकारी समझें।

कला। अब कुछ समय कलाकी बात आयी। यह तो हमारा साहित्य सम्पन्न है न। हम साहित्यको विश्वव्याप्त मानते हैं और कलाके अर्थमें भी साहित्य और काव्यका स्थान स्वभावतः बहुत ऊँचा मानते हैं। जरा मूर्तिकलाको देखिए। हम तो अक्षरोंमें कागजपर इच्छाएँ और संकल्प लिखते हैं किन्तु जरा पत्थरपर होंठ और आँखें बनाकर उनपर मानवकी मुसकराहटको उतारनेवालेकी ओर भी दृष्टि डालिए। कहाँ पत्थरकी कठोरता और कहाँ मुसकराहटकी कोमलता। एक गायकी मूर्ति है। एक नारी स्तन पकड़े हुए है और एक बच्चा कौतुक लिपटकर दूध पिए मगन रहा है। इस मूर्तिका सार विश्वमें कहीं भी भेज दीजिए। अवश्य हर आदमी पढ़ लेगा। मूर्तिके बाद चित्र! यहाँ पत्थर नहीं कागज पहले कागजपर रंग उतारने पड़ते हैं। ये भी दुनिया-भरमें पढ़े जा सकते हैं। परन्तु ये भावोंमें समृद्ध हैं आकारमें अल्प हैं मतलब यह कि मौसमका इनपर असर होता है। ये चित्र मूर्तिसे अधिक अपने रंगोंके कारण यशस्वी हैं किन्तु मूर्ति-जैसे अमर नहीं। पर इनकी पहुँच विश्व भरकी समझका नाम है। चाहे ये किसी देशके बने हों। फिर संगीतको देखिए। यह भाषामें हो गायनमें हो स्वरमें हो तालमें हो। आप कश्मीरमें गाइए, दिल्लीमें गाइए, नागपुरमें गाइए इन्दौरमें गाइए, त्रिचनापल्लीमें गाइए या रामेश्वरम्‌में गाइए। राग है और सब जगह समझा जा रहा है। यही हाल नृत्यका है। मणिपुरी हो कथाकली हो या कोई और भी। समस्त राष्ट्र उसे समझता है। मूर्ति और चित्रकी तरह इसे विश्व-भर नहीं समझ सकता। इसका संवेदन राष्ट्रीय होता है अन्तर्राष्ट्रीय नहीं होता। और साहित्य और कविता कहिए, पढ़िए और अपना पड़ोसी

प्रान्तके लिए भी अनुवादक ढूँढ़ते रहिए। अपनी पड़ोसी भाषाके लिए भी दुभाषिएकी आवश्यकता है। मेरा निवेदन है कि कलाके क्षेत्रमें साहित्य और काव्य सबसे सीमित है सबसे सीमित कला है। इसकी अपील बहुत ही छोटी सीमामें बँधकर होती है। इसकी पुकार महान् तब होती है जब साहित्यके रचनाकार गीतोंको संगीतज्ञोंके गायन और वादनपर और नर्तकोंके नृत्यपर चढ़ानेकी क्षमता रखते हों। साहित्यके कलाकार अन्तर्राष्ट्रीय तब ही जाते हैं जब उनके वर्ण्य विषय चित्रकार चित्रोंमें और मूर्तिकार मूर्तियोंमें उतारनेको ललक उठते हैं। अतः कलाके क्षेत्रमें साहित्य अनुभव करे कि वह अकेला नहीं है, काव्य अकेला नहीं है। वह कलाके सम्पूर्ण उपकरणोंमें सबसे पीछे चलकर ही सबसे आगे व्यक्त होने वाला बलवान् उपकरण है।

लेखनमें मुझे एक बात और खटकती है। हमारी रचना हमारी अपनी हो। रसोइयेकी तरह हम किसीकी रचना परोसनेका पेशा न करते हों और यदि करते हों तो उस पेशेको ईमानदारीसे स्वीकार करते हों। साथ ही कोई व्यापार या धन्धा तब चलता है जब उसके संचालक अपनी जो एक धनराशि उसमें लगावें। इसी तरह लेखनकी सिद्धि भी तब महान् होती है जब कि अध्ययनमेंसे रस खींचते हुए भी उसका अपना कुछ पीढ़ीके देने योग्य हो। जीवनका चक्कर और अध्ययनका बल जीवनदायी रचना करनेवालोंकी आवश्यकता है। मुझे आशा है कि इस आवश्यकताकी पूर्ति आपकी कलम कर सकेगी।

सतपुड़ाके छोटे ऊँच-नीच शिखर और उनमें बहनेवाली नर्मदा ताप्ती महानदी गोदावरी आदिकी धाराएँ आओ और अबकी तरह जब हमारी कलममें प्रतिबिम्बित हों और गाँवोंके पर्वोंमें खेलनेवाली ग्राम वधूटियाँ जब अपनी बोलियोंके सुगम किसानियोंके नाम निकालकर देनेके लिए उभारें, हम प्रान्तका लेखक हम प्रान्तका कवि हम प्रान्तका मूर्तिकार हम प्रान्तका गायक हम प्रान्तका साहित्यकार हम प्रान्तका समाजसेवी

साहित्य और साहित्यिक

सभापति महोदय तथा मित्रो

मुझे हृदयकी धड़कनकी शिकायत है इसलिए खड़ा न हो सकूँ और इस कारण अपनी अवज्ञाका अपराधी आप मुझे मानें तो मुझे क्षमा कर दें यह मेरी प्रार्थना है।

आपके बीचमें दो शब्द बोलते मुझे सुख मालूम होता है। मुरादाबाद आनेका यह मेरा पहला मौका है यद्यपि मुरादाबाद स्टेशनसे पिछले तीस वर्षोंमें मैं कई बार आ जा चुका हूँ।

साहित्य विलासी-ऐयाशों नहीं है न वह हमारे पतनका सुन्दर सजावमें किया गया गायन ही है। जो जाति अपने पतनको गीतोंमें गाकर सुखी होती है, वह साहसी विचारोंकी संभावनाको सम्भव कैसे रखेगी? साहित्य हमारे जीवनकी समस्या है। उसमें हमारा सम्पूर्ण जीवन प्रतिबिम्बित होता है। वह जीवनके मीठे क्षणोंका संग्रह-मात्र नहीं है।

किसी व्यक्तिकी वाणी उसी समय लड़खड़ाने लगती है जब वह अपनी सारी शक्ति खो चुकता है। किसी राष्ट्रकी वाणी भी उसी समय लड़खड़ाती है जब कि सम्पूर्ण राष्ट्र लड़खड़ानेकी स्थितिमें हो।

अनेक प्राणियोंके साथ मानव भी उत्पन्न हुआ। बंकिम बाबूके शब्दोंमें मानवका विकास हुआ इसलिए उसने ईश्वरकी कल्पना मानवके ही रूपमें की। यदि सिंहका विकास हुआ होता वह अपने ईश्वरकी कल्पना सिंहके रूपमें करता।

एक दिन मनुष्यके मनमें एक विचार आया और उसकी भाषामें उस विचारको व्यक्त करनेवाले शब्द जब निकलने लगे। तभी उसके

मनमें 'क्यों ?' का उदय हुआ और उसका समाधान उसे 'इसलिए' में मिला। इसी 'क्यों ?' से आरम्भ होकर 'इसलिए' में समाप्त होनेवाली वस्तुका नाम साहित्य है।

आलोचना और सहानुभूति एक ही वस्तुके दो नाम हैं। हम एक सन्तरा खरीदते हैं। उसके बीज और छिलके निकालकर फेंक देते हैं और रस चूस लेते हैं। आलोचक भी यदि हमारे साहित्यके साथ यही व्यवहार करता है तो कहाँ गलती करता है ?

हमारा साहित्यिक — मेरा मतलब भारतीय साहित्यिकसे है — अपने उत्तरदायित्वको नहीं समझता। विश्वके निर्माणमें साहित्यिकका बहुत बड़ा हिस्सा है। व्यास और वाल्मीकि-जैसे ऋषि विश्वको विचारदान करते रहे और दुनिया आगे बढ़ती रही।

साहित्यिक तो विश्वका आनन्द-दाता है। उसके स्वरमें, हासमें पीड़ामें विश्वको आनन्द मिलता है। लेकिन साहित्यिक यदि इस आनन्द का स्वयं उपभोग करने लगे तो अपना और अपनी पीढ़ी दोनोंका नाश कर बैठता है। लेबारेटरीमें भिन्न-भिन्न चीज़ोंका विश्लेषणकर्ता यदि उन वस्तुओंको खाने लगे तो उसकी जो गति होगी वही ऐसे साहित्यिककी होती है।

हमारे आजके साहित्यिकने अपने-आपको वैसा ही बना रखा है। उसने मधुपात्रको पाया तो भगवान भूला। स्त्रीको उसने सिर्फ रमणी रूपमें ही देखना आरम्भ किया। वह भूल ही गया कि स्त्री माँ भी है, पुत्री भी है बहन भी है। ऐसे ही साहित्यिकके विषयमें दुनिया सोचनेको बाध्य होती है कि वह मार वासना व्यापक पावक कुण्ड तो नहीं है ?

मैं मोटे विचारोंका खिलाफ़ नहीं हूँ। मोटे विचार देना 'भी' साहित्यिकका कर्तव्य है लेकिन मोटे विचार देना 'ही' नहीं। हमारे साहित्यिक मिठासकी मर्यादा देते हुए साहित्य निर्माण करें। विचारोंका मस्तिष्कोंमें भिनभिनाता कुम्भीपाक नरक न बनायें।

क्या हमारा आजका कवि यह दावा कर सकता है कि गाँवका आदमी उसकी बात समझ लेगा ?

आज हमारे राष्ट्र-शरीरका सिर तो शहरोंमें है और धड़ गाँवोंमें। सिर धड़की परवाह नहीं करता और धड़ सिरको समझ नहीं पाता। ये ही राहु और केतु हमारे देशके दुश्मन हो रहे हैं। ऐसे ही समय ऐसे महान् साहित्यिककी जरूरत होती है जो इन दोनोंको मिला दे। अन्यथा शहराती धारणाओंकी मिठास अथवा या कटुतासे बननेवाले साहित्यके आसमानी किलोंपर बैठकर कोई जाति कैसे जीवन-यात्रा कर सकती है।

लोग कहते हैं — राष्ट्रभाषा बढ़े कैसे ? उसके मार्गमें उसकी दुश्मन बनकर उर्दू जो खड़ी हुई है। लेकिन बात कुछ और है। हम देखते हैं कि हर शासनने अपने ही देशकी भाषाको राज्यभाषा चुना लेकिन जब अँगरेजी शासन इस देशमें आया तो उसने यहाँकी किसी भाषाको राज्य भाषा नहीं बनाया। उसने अपनी भाषा हमपर जबरदस्ती लादी। नतीजा यह हुआ कि इस देशका सारा कारबार एक सात समुद्र पारकी भाषामें चलने लगा। इसलिए हमारी राष्ट्रभाषाकी दुश्मन उर्दू नहीं तमिल नहीं मराठी नहीं गुजराती नहीं। हमारी दुश्मन अँगरेजी है। इसलिए नहीं कि वह अँगरेजोंकी भाषा है इसलिए नहीं कि वह बाहरसे आयी है किन्तु वह इसलिए कि उसने हमारे राष्ट्रकी वाणियोंके शासनको दूर हटाकर राष्ट्रका अपने ही घरमें अपनी ही दृष्टिमें निरुपयोगी बना दिया है। अब हम शासनसे माँग करते हैं कि केन्द्रमें असेम्बलीको उठाओ करो प्रान्तीय असेम्बलीको खाली करो और वहाँ हमारी भाषाको स्थान दो। हमारा खजाना है हमारी रेलें हैं। वहाँ हमारी ही भाषा चलेगी।

कुछ लोग भाषा गढ़नेकी बात कहते हैं और कुछ भाषा बदलनेकी आवश्यकता नहीं बताते हैं। सबमें आवश्यक बात यह है कि हमारे साहित्यिक जन-सम्पर्क स्थापित करें। साहित्यके नामपर बहुत थोड़े

बोलियोंका एकत्रित होना भाषाका विकासिमापन नहीं स्थानीय साहित्यिकों-की प्रभावहीनता ही साबित करता है।

प्रचार इस देशकी स्वाभाविक परम्परा नहीं है। हमारी परम्परा तो सन्तत्व है। हमारी भाषाको उत्तर भारतसे दक्षिण-भारत तक और दक्षिण भारतसे उत्तर-भारत तक के आनेवाले सन्त थे व्यापारी थे और मासक थे। इन्हींकी दी हुई भाषा हमारी आजकी राष्ट्रभाषा है।

इस भाषामें हम जबरदस्ती संस्कृत शब्द न ठूँसें क्योंकि अपने जिन गुणोंके कारण संस्कृत स्वयं मरी उन्हींको अपनी भाषामें लाकर उसे हम जिन्दा नहीं रख सकेंगे। साथ ही हमें यह भी न भूल जाना चाहिए कि संस्कृतकी धातुओंके आधारपर ही हिन्दुस्तानकी सभी भाषाएँ बनी हैं।

यह गंगा-जमुनाका मुक्तधारा और बुद्धका विहार। यहाँ तो संस्कृतिने जन्म लिया है, इसलिए यहाँ प्रचारकी आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए।

हम भाषाके प्रश्नको देशका महान् प्रश्न समझें क्योंकि जिसकी भाषा मरी उसके आदर्श मरे और जिसके आदर्श मरे वह जाति भी नष्ट हो गयी। मनका काम पुरानी भाषासे चल सकता है लेकिन आजके साहित्यको तो व्यासके कन्धेपर नहीं मधिकोषरक प्रसाद निरालाके कन्धे-पर ही जिन्दा रखना पड़ेगा।

भगवान् कृष्णके नामको बढ़ानेके लिए यशोदाकी गोद भी इसपर बहस हो सकती है। नन्द यशोदाके न मा न थे यह प्रश्न विचाराधीन हो सकता है, लेकिन जिन कृष्णको व्यासने जन्म दिया उसपर बहस नहीं हो सकती।

यों तो हर गर्भमें बच्चे पैदा हुए थे लेकिन कलमके सपीन जिसपर लिख दिया वह युगोंकी छाती चीरता हुआ आगे बढ़ गया।

जबतक साहित्यिक जबतक आजकी समस्याएँ नहीं लिखेगा तबतक समाज उसके साथ नहीं रह सकता। यह समाज एक समुद्रकी तरह है।

समुद्रमें छोटी-छोटी नावें, स्टीम-बोट, बड़े-बड़े जहाज तैरते रहते हैं। लहरोंकी मरजीपर वे डूब सकते हैं। चूर चूर हो सकते हैं, लेकिन समुद्रमें ही एक और वस्तु खड़ी रहती है जिसका सिर लहरोंकी मरजीपर नहीं झुकता या डाँवाडोल होना नहीं जानता, वह है — प्रकाशस्तम्भ — जो भूमराहोंको रास्ता बताता रहता है। समाज अपने साहित्यमें भी यही चाहा करता है कि वह क्षणिक लहरों और परिस्थितियोंसे ऊपर उठकर चले।

हमारा एक देवता है। समाजका कोई व्यक्ति उससे नहीं बच सकता। जो बचे वह पलायनवादी है। ऐसा आदमी हमारे देशमें कोई स्थान नहीं पा सकता। वह देवता कौन है? वह है हमारी मातृभूमि — हिन्दुस्तान — जो उस देवतापर समर्पित नहीं हो सकता वह नष्ट कर देने योग्य है। इसी देवताकी वाणी हमारी राष्ट्रभाषा है। मेरे सम्मुख होकर कोई समस्या नहीं जबतक आप स्वयं न सोचें कि हिन्दीका उत्थान करनेके लिए क्या-क्या उपाय करने चाहिए। क्योंकि शक्ति आपमें है, मुझमें तो ऊबड़-खाबड़ और संकेत-निर्देश हो सकता है। हमारे जो प्रस्ताव या संकल्प उपयोगमें न उतर पायेंगे वे हमपर हमारी पीढ़ीके द्वारा प्रहार होंगे और हमारा जीवन हमारी पीढ़ीके सम्मुख मातृभाषाके न्यायालयमें दिवालिया घोषित होगा। आइए, हिन्दी प्रेमियो! सम्मुख दासिनी! मस्तक झुकाकर हम अपनी कोटि-कोटि कण्ठोंकी वाणीका नमस्कार नमन करें। फलोदय हमारा शब्द जो सकता हो बहोड़क निर्देशो विजयिनी बनें।

हिन्दी साहित्य समिति
मुरादाबाद
१९४१



गोस्वामी तुलसीदास

सभापति महाशय

कल हम तिलक-पुण्य-तिथि मना चुके हैं और आज तुलसीदासपर चर्चा कर रहे हैं। आपके कालिजमें पहली बार मैं सन् १९११ में श्री सी० वाई० चिन्तामणिके साथ आया था। उस समय मैं हिन्दी साहित्यपर बोला था। प्रिन्सिपल मि० जनार्दनके अभावमें स्थानापन्न प्रिन्सिपल मिस्टर जोशी उस सभाके अध्यक्ष थे। फिर मैं १९१७ में आया फिर इस राज्यमें मेरा प्रवेश निषेध कर दिया गया और न आ सका। आज मैं इस सभाका स्वयं सभापति हूँ।

जब हम विद्यार्थियोंके बीच साहित्य चर्चा करें तो दो बातें साथ साथ पालन होनी हैं। अध्ययनका पैमाना और आकलनकी क्षमता मानकर इन दस-मन्दिरोंमें अवश्य रखनी चाहिए। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि जब हम जानते बहुत थोड़ा हैं किन्तु दिखाते बहुत हैं। लगता है जैसे जीवन भाडेके स्पीकरोंके सहारे बैठ गया है जैसे बुद्धि थककर हारकर बैठ गयी है। ऐसे लोग आत्म-संकोचनको ही आत्म-प्रकटीकरण समझने लगे हैं। इस समयका मनुष्य जो कुछ बोलता है जिस बातकी वह शपथ खाता है उसपर उसका स्वयं विश्वास नहीं होता वह मिथ्या प्रचारक होता है। किन्तु कुछ क्षण जीवनमें ऐसे भी होते हैं कि जब अनन्त एकान्तमें भावनाओंका अनन्त सामने होता है या अपनोंके सामने होता है उस समय वह प्रचार नहीं करता आत्म-देवताकी अभ्यर्थना भी नहीं करता उस समयका माप-तौलकर बोली हुई और जान-बूझकर मापी हुई बातोंको जैसा कि स्वामी रामतीर्थ कहते हैं यदि किसी अँधेरी

गुफामें जाकर बोला जाये और उस गुफाके दरवाजेको चट्टानसे सीसा पिघलाकर बन्द कर दिया जाये तो भी बोली हुई बोली चट्टान तोड़कर जन जनके हृदयमें पहुँच जाती है और युगों-युगोंमें दोहरायी जाती है। प्रचारक और साहित्यिकमें इतना ही अन्तर होता है कि पहला वह बोलता है जो उसकी रोटी बुलवाना चाहती है दूसरा वह बोलता है जो उसके अन्तरके आराध्यकी रुचि होती है।

पानी बरसा कि हरी घास उग आयी। चारों तरफ हरा हरा हरा किन्तु कृषकको इसलिए उसने विधाताकी हरियाली तोड़कर जमीन बना ली और मनचाहे अन्नको उगाकर मनचाही फसल बो दी। इस तरह कृषकने अपना हरियालीका बाग लगा लिया। निर्माता यही उँगलियाँ किसानों और कमजोरोंसे उधार लेता है और समुद्र आकाश जलथली और मूर्तोंके अनन्त निर्माणको वाणी प्रदान किया करता है। साहित्यिक इतिहास और कल्पनाका सम्मिलित रचनाकार है। वह यथार्थकी जमीन कल्पनासे पूरी करनेवाला माली-बागबान है। इसका व्यापक केवल रचनात्मक कल्पना-कौशल मात्र नहीं है इसीलिए युगों-युगोंके रचनाकारके हाथों जब-जब कृष्ण राम अथवा कोई और पुराण-पुरुष पड़ गये तो आज इतने दिन साहित्यिकने अपनी युगकी आवश्यकताओंमें उन्हें ढाल लिया है युगकी मूर्तोंमें उन्हें सँभाल लिया है। इस तरह साहित्यकार वह है जो विधाताकी रचनाएँ अपने हाथमें लेता है और रचनाकी उसे लगनेवाली कमीको अपनी सूझसे ठीक कर देता है। कृष्ण बुद्ध मुहम्मद ईसामसीह गान्धी व सुभरी जबरदस्त शक्तिके नाम हैं माना किन्तु इनके आगमनके लिए जमीन पैदा करनेवाला और फिर इनके जा चुकनेके बाद इनका नाम सम्मान अथवा विस्मरण करनेवाला साहित्यिक है। इसीलिए एक ओर युगका चरित्र निर्माण कर वह अपनी रचनाओंके द्वारा वर्तमानका दिशा-दर्शन भी करता चलता है। यह उसकी कलमका वरदान या अभिशाप है कि राज्य बदले सिंहासन उलटे राजा आये जाय फिरे जन जीवन सबल-सुगम हुए और

अर्थात् जहाँ था वहाँसे कुछ क़दम आगे बढ़नेके लिए बाध्य हुआ। वैसे ही गाल्सवर्दी तुर्गनेव और गोर्कीको लोग यों ही नहीं मानने लगे। गोस्वामी उनके कल्पनाके पात्रोंने अपनी युगों-युगोंकी आवश्यकताके संकेतोंके बयान किये हैं।

तुलसीदासने सोलहवीं शताब्दीमें सीता लिखी और आज देख रहे हैं कि आज हर हिन्दू माता पिता अपनी बेटीको सीता बनानेमें यत्नशील हैं। ऐसी विषमता है कि तुलसीदास अपनी पहुँचमें नक्षत्रोंकी तरह ऊँचा है जहाँ हमारी पूजाकी उँगलियाँ नहीं पहुँच पातीं किन्तु बाज़ारमें बिकने वाली एक पैसेकी मोमबत्तीकी तरह वह कितना हमारे पास है। अपनी कृतियोंके रूपमें मानो वह हम ही से बोल रहा है। वह हमारे पास ऐसी मोमबत्ती बनकर रह रहा है कि जब सुलगा दें प्रकाश देने लगे और जब बुझा दें दूर हो जावे। विषमता मैं इसलिए कहता हूँ कि आसमानका नक्षत्र कभी भी आपके बुलाने ज़मीनपर नहीं आता किन्तु तुलसीदासका और साहित्यिकका कमल आपकी मेज़ोंपर दायें-बायें डोल रहा है। यह तो मानकर अवलम्बित है कि मनुष्य स्वभावकी विषमताओंमें फँसकर रहें। जब अनन्त सूर्य शिरपर रहता है तब उसके महान् प्रकाशकी हम कोई क़द्र नहीं करते उस प्रकाशमें हम अपने काम-द्वारा कृतज्ञताके भाव नहीं भरते किन्तु ज्यों ही सूर्य डूब जाता है त्यों ही तीन पैसेकी टिमटिम वाली लेकर उसके प्रकाशमें जीवनके काम पूरे करने बैठ जाते हैं। मानो यह हमारी रुचिका बीभत्स रूप है कि हम सूर्य और टिमटिमवालीको समान रूपसे तराजूपर दो पलड़ोंमें रखते कभी संकोच नहीं करते और तुलसी-दास-जैसे साहित्यिक अवतार शताब्दियोंसे अपनी उपेक्षाके इस अपमानको सहते चले आ रहे हैं। कहते हैं जब तुलसीदासने अवधी और बोलचालमें रामायण लिखी तब काशीके पण्डितोंने उनका तिरस्कार किया कि संस्कृत अपनी रचना देववाणीमें क्यों नहीं की? किन्तु विद्रोहके इस प्रहारसे युग-निर्माता तुलसीदास घबराया नहीं उसने स्पष्ट बताया भी कि

का भाषा का संस्कृत
प्रेम चाहियतु साँच।
काम जो आवे कामरी
का लै करिय कमाँच॥

ऐसे अपमानोंके बीच तिलमिला तिलमिलाकर क्या कभी ऐसी कविता किया जा सकता है ?

एक बार अपने गिरधरलालके प्रेम रसमें तल्लीन क्रान्तिकारिणी मीराबाईने कहा जाता है कि युग-कवि-तुलसीदासको पत्र लिखकर पूछा कि सारे परिवारके लोग मेरे पीछे पड़े हैं कि मैं अपना मार्ग छोड़ दूँ, बताइये मैं क्या करूँ ? तुलसीदासने पैसों और प्रभुताओंसे घबराकर सत्य नाप-तौल नहीं किया और वह भी सोलहवीं शताब्दीमें जब रुपया और राजा ही किसीका सर्वनाश कर देनेके बलवान् साधन थे कहते हैं मीराबाईके पत्रके उत्तरमें तुलसीदासका स्पष्ट जवाब यह रहा

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम
जद्यपि परम सनेही।
पिता तज्यो प्रहलाद विभीषण बन्धु
भरत महतारी
ब्रज — बनितन प्रिय पति तजि दो हैं·······

ऐसा साधक अपने मन और वचनका पक्का साहित्यकार कैसा होता है ? आजके तीन-सौ चार-सौ वर्ष पहलेके युगकी कल्पना कीजिए और तब तुलसीदासका मूल्यांकन कीजिए। कहते हैं एक बार गोस्वामी तुलसीदास इस देशके तत्कालीन बादशाह अकबरकी सभामें आमन्त्रित किये गये। तुलसीदासजीके प्रिय नवाब खानखानाके आग्रहसे वे वहाँ चले गये। राजाओंकी रुचिके अनुकूल वहाँ सम्राट्के दरबारी कवि एकत्रित हुए थे और समस्या दी गयी कि करो मिल आस अकबरकी ऐसे समय भी सन्त

कवि तुलसीदासने समाज मानवतावादी-जैसे महान् व्यक्तिको मुसलमानोंका असर अपनेपर नहीं होने दिया। उन्होंने समस्या-पूर्ति की जिसमें उल्लेख किया है कि इस शासनमें हुमायूँ और बाबर भी पैदा हुए किन्तु उन्होंने अपने शीलको नहीं छोड़ा ऐसी समस्याएँ नहीं दीं। और अपनी समस्या-पूर्तिके अन्तिम चरणको यों समाप्त किया

जिसको हरि की परतीति न हो
सो कहा मिले आम अकब्बर को।

सभी कवियोंका यह भावा विश्व भरमें और भारतमें भी अनुपम रहा है।

जिस सदीमें तुलसीदास पैदा हुए उस समय हिन्दुओंके मतभेद चरम सीमापर थे। शैव शाक्त और वैष्णव और न जाने कितने पन्थोंमें भारत का हिन्दुत्व विभाजित था। शैव वैष्णवको नहीं देखा और अपमान सिखाते थे। तुलसीदास इन परिस्थितियोंसे भी डाँवाडोल नहीं हुए। रामायणमें उन्होंने रामके द्वारा शिवकी पूजा करायी और शिवके द्वारा रामका सम्मान किया और शैव वैष्णवोंको उन्होंने बहुत ही अच्छे ढंगसे मिलाया। उन्होंने रामचन्द्रसे कहलवाया कि

शंकर प्रिय मम द्रोही
शिवद्रोही मम दास
ते नर करिहैं कल्प भर
घोर नर्क में वास।

इस तरह तुलसीदास उन कवियोंमें रहे जिन्होंने १६वीं शताब्दीमें संयुक्त भारतवर्षका स्वप्न देखा था कि भारतीय संस्कृति प्राचीन साहित्यमें विद्यमान था। उन्होंने अपना चरित्र-नायक ही एक ऐसा विशाल हृदय-निकाला लेकर राजमहल छोड़कर पदम यात्रा की और गरीबकी जिन्दगी बितायी। किन्तु समस्त भारतवर्षको अपना स्नेहक व्यवहारों-द्वारा तरह सिखाया उन्होंने ऊँच-नीचके भेदोंको अलग हटाया छोटी-बड़ी जातियोंको समान रूपसे स्नेह किया निषादको भरतसे अधिक प्रिय बताया

और अपनी दिग्विजय-द्वारा तथा ग्राम-जीवन और वन-जीवनके लोगोंके प्रति अपनेको समर्पित करके संयुक्त भारतकी स्थापना की।

रामायण पढ़ते समय एक पाठक वह होता है जो देखता है कि रामायणके पात्र बोल रहे हैं किन्तु एक पाठक वह भी होता है कि जो यह देखता है कि तुलसी कैसे बोल रहे हैं ?

तुलसीदास अपनी रचनामें जनताके बहुत निकट रहे इसीलिए सोलहवीं शताब्दीमें भी हिन्दी भाषाके शब्दोंने अपने जन्मके शैशवमें ही मनाके अन्न-प्राशन किये। जब तुलसीदास बोलते हैं तब मानो उनकी लेखनी जनक प्राणोंकी बीन बन जाया करती है उनकी काली स्याहीसे जाने कितनी उज्ज्वलता बरस पड़ती है। राम गंगाके तटपर हैं गरीब केवट सामने खड़ा है राम उससे कहते हैं पार उतार दो केवटने कथा सुन ली है कि रामके पैर छू जानेसे एक बड़ी भारी चट्टान स्त्री बन गयी अहल्याकी उस कथासे रामभक्त चाहे जितने सुखी हों किन्तु रामभक्त तुलसीका केवट भयभीत है तुलसीकी रचनामें वह जो कुछ कहता है जरा उसे देखिए और कहिए कि ये तुलसीके शब्द हैं या केवटके बोल ?

वह सीता और लक्ष्मणको साथ लिये हुए भगवान् रामसे कहता है, नावमें क्या बैठते हो महाराज जो दूसरा किनारा रहा कमर भर पानी है मैं थाह दिखाता चलूँगा···लीजिए अब तुलसीके शब्द ही सुनिए। यह उनकी कवितावली रामायणकी रचना है

इहि घाट ते थोरिक दूर अहै
कटि लौं जल, थाह दिखाइहौं जू
परसे पग धूरि तरै तरनी
घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू
तुलसी अवलम्ब न और कछू
लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू

बरु मारिए मोहि बिना पग धोए
हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू

जरा भाषाकी और केवटकी दोनोंकी सरसता देखिए। मानो एक की सरसता दूसरेको मात दे रही है और ग़रीब केवट दशरथके राजकुमारको चुनौती दे रहा है! कहता है — तुम्हारी चरण धूलिके छू जानेसे मेरी नाव तर जायगी तो अपना औरतका कैसे सम्हालूँगा। डर यह कि वह तर पत्नी और सचमुच मुझे और कोई सहारा तो है नहीं तब बच्चोंका पालन-पोषण कैसे करूँगा? इसलिए ग़रीब केवटकी अनुपकारी राजकुमारको चुनौती है कि चाहे मुझे मार डालिए किन्तु मैं बिना पाँव धोये नावपर नहीं बैठाऊँगा। कठिन शब्दोंमें अपनी वर्तमान असमर्थताका विज्ञापन हम लोग तुलसीदासकी सरलता कहाँ पा सकें? केवट यही चुप नहीं हुआ कि यह राजकुमार है और न क्या कह बैठा। वह कहता है कि आपके कुछ दोष नहीं है महाराज। आपकी चरण-रजका प्रभाव ही ऐसा है आप क्या करें, फिर जब पत्थर तर गया तब मेरी नाव तो लकड़ीकी है वह क्यों न तर जायगी? एक तो नाव पत्थरसे कोमल और फिर पानीमें भीगी हुई। पत्थर तारनेवाले रामचन्द्र जबतक इस बोलसे पानी-पानी हो गये किन्तु केवट अपना मुद्दआ नहीं भूला। वह बोला आपके पवित्र पाँव धोकर नावपर चढ़ा लूँगा। बोलिए क्या आज्ञा होती है? पूरा छन्द इस प्रकार है

रावरे दोष न पायन को
पग-धूरि को भूरि प्रभाव महा है।
पाहन तें बन-बाहन काठ को
कोमल है जल खाय रहा है।
तुलसी सुनि केवट के बर बैन
हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है।

पायन पाँव पखारि कै नाव चढ़ाइहौं।
आयसु होत कहा है।

जिस तरह अवधके सीमान्त बारात ठहराने योग्य अमराइयाँ अभी जीवित हैं, दुल्हनके सिरपर दूल्हा-द्वारा सेन्दुर भरना अभी जीवित है, भाँवर और परिक्रमा अभी जीवित है, उसी तरह शाहराहों सभ्यताके नगरों सम्पर्क-क्षेत्रोंके पश्चात् गंगाके किनारे तुलसीका कवट अभी भी जीवित है। केवल उसे देखनेके लिए साढ़े तीन सौ वर्षोंकी दूरीको चीरकर देखनेवाली आँखें चाहिए।

रामचरितमानस-जैसे महान् ग्रन्थकी रचनामें यद्यपि तुलसीदासने अपने दोषको यों व्यक्त किया है –

कवित विवेक एक नहिं मोरें
सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें।

तो भी रामायणके रचना-कौशलकी विशेषताओंमें हम जितनी ही बार डुबकी लगायें हम सबसे नये रत्न निकाल सकते हैं। लोग अपनी रचनाओंको साम्यमें प्रारम्भ करते हैं किन्तु रामायणकी सम्पूर्ण रचनामें आप देखें कि प्रथम परिस्थितियोंकी विषमता सामने रखी जाती है फिर कथा भावकी कोमलताके दर्शन होते हैं और इसके बाद अन्तमें पहले विषमता और फिर समता। यह क्रम कहीं भी टूटने नहीं पाया। ग्रन्थका प्रारम्भ शंकरकी मानसी पत्नी सतीकी मरण-व्यथासे शुरू हुआ है। पार्वतीके विवाहमें संकट है। रामके जन्ममें संकट है। रामके युवराज होनेपर विश्वामित्र ले जाते हैं, ताड़काकी कथा है। मतलब यह कि सम्पूर्ण रामायण संकटोंपर सुखोंकी विजयका एक अद्भुत उदाहरण है। संकटोंसे क्षणिक भयभीत रहनेवाली जातिको शायद जन-संख्या, तुलसीदास और राम-कथाकी विशेषताका ज्ञान नहीं?

राम तुलसीदासके लिए ईश्वर थे। राजा भी नहीं थे किन्तु उन्होंने पुरुष जैसे रामके विरोधोंके जीवनका मिलनांक चित्रित किया है

और भरत चरित्र-गायनके पूर्ण-पद भक्तिका जो चित्र तुलसीदासने प्रस्तुत किया है उसमें देवों और मुनीका जगता ही प्रतिरूप न पाया। कल्प और निष्ठाकी निष्ठामें निर्मलताके स ग्रन्थ चार चाँद लगा देंगे।

भरतके चरित्रके निर्माणमें तो तुलसीदास अनेक पूर्ववर्ती मर्यादाओंसे बहुत आगे बढ़ गए हैं। महर्षि वाल्मीकिकी रामायणमें दूत जब रामके वन-गमनपर भरतके मामाके घर भरतको बुलाने जाता है और जब भरत पूछते हैं कि अयोध्यामें सब कुशलसे तो है? तब वह दूत भरतको जवाब देता है कि कुशलास्ते महाबाहो यस्य कुशलमिच्छसि किन्तु जब तुलसीके अवधके दूत भरतको बुलाने जाते हैं तो वह न कहता ही कहते हैं कि वसिष्ठ आपको गुरुदेवने शीघ्र ही बुलाया है।

तुलसीदास अपनी रामचरितमानसकी प्रस्तावनामें ही मानो साहित्यके सब लक्षण कह चुके हैं। वे मानते हैं कि कविताका चाहे अंग-अंग हो, रस भी अलंकार भी किन्तु वह सबके लिए कल्याणकारी व मंगलकारी होना चाहिए। इस मान्यताकी रचनामें ही तुलसीदास परम कौशल व्यक्त पाया है। क्योंकि जब अपकारी भी आवश्य है और वाणी वचनोंका भी अंग-अंग साहित्यके अंग-उपांग भी रहते हैं और वाणियोंको भी कहु मनत हैं रस छंद भी आते हैं और भी भी और सम्पूर्ण ज्ञान छिपकर बैठनेकी प्रवृत्ति अर्थोंकी प्रवृत्ति उसमें होता है और स्वच्छन्दचारी रामनीतिमय। किन्तु तुलसीदासके शब्दोंके अनुसार इन सबका मंगलकारी होना चाहिए। साहित्यमें सब छिपकर बैठता है रामनीतिमय प्रकार छिप कर बैठता है। तुलसीदासके निश्चयके अनुसार छिपकर भले बैठे किन्तु वे मंगलकारी अवश्य हों।

अपनी रचना तुलसीदासने भी तुलसीदासने अद्भुत कौशल व्यक्त करते हैं। रामायणका प्रसंग है जहाँमें सीता अपनी सखियोंको लेकर जनकके बागमें गौरी पूजनके लिए गयीं। धनुष-यज्ञ होनेवाला है अभी हुआ नहीं है। वहाँ जनककी उस वाटिकामें सीता रामको देख लेती हैं और

सखियोंके तानेसे भयभीत होकर गौरीपूजनको मन्दिरमें आ जाती हैं, तुलसीदासजी तो पत्तियोंमें मानो यहीं आकर सारी समस्याको निहाल कर लिया है।

जय जय जय गिरिराज किशोरी जय महेस मुख-चन्द्र-चकोरी
जय गज-बदन षडानन-माता जगत-जननि दामिनि दुति-गाता।

किशोरी सीता अपनी आराध्याको भी किशोरी कहकर पुकारती हैं जिससे वह किशोरीकी कठिनाइयोंको समझ सके और राज-किशोरी सीता दूसरी राजकिशोरीसे निवेदनकर रही हैं कि वह उसकी कठिनाइयोंको समझे जिसपर सीताने अभी वाटिकामें मुखचन्द्र देख लिया है और वह महेस मुख-चन्द्र-चकोरी गौरीकी आराधना करने लगती हैं फिर गौरी भी सौन्दर्यमें श्रेष्ठ हैं, और उसके बाद जग-माता कहा गया और सीताने भी अपने जीवनमें यही पाया। गौरीके भी दो पुत्र थे सीताके भी दो ही हुए, अचम्भा होता है कि तुलसीदास किशोर हृदयकी इस कल्पनापूर्ण कोमलता-को कैसे लिख सके जब कि उनके जीवनमें वियोगज अनन्त अनर्थोंकी उत्पत्तिके सामान उपस्थित कर दिये होंगे।

यहीं आकर यह कहनेको जी होता है कि 'कलमसे निस्सन्देह काम पराजित होता है'

गोस्वामी तुलसीदासने अपने कथा भाग और अलंकार वैभवमें संस्कृत प्राचीन साहित्यसे जो लिया हो उन्होंने अपनी समकालीन भाषाओंसे भी रस-ग्रहण किया। अपने शहर या गाँव या जन्मस्थानपर जानेवाले व्यक्ति को जिस तरह अनेकों गाँवों और शहरोंकी सीमाएँ लाँघनी होती हैं और उन सीमाओं-से होकर गुजरना होता है उसी तरह गोस्वामी तुलसीदासजी कलाकार उन भाषाओं और ज्ञान-अनुभव-से होकर गुजरा-सा लगता है जहाँतक उनकी जानकारी पहुँच सकती थी उनकी रचनामें उर्दू, फ़ारसी और हिन्दी अपभ्रंशकी भिन्न-भिन्न स्थानोंकी भिन्न-भिन्न बोलियोंका अनूठा रूप देखा जा सकता है क्योंकि उनका उद्देश्य अपनी बातको अपने पाठक

के पास सरलतासे पहुँचाता था। अपनी हित और अहितका भी ज्ञान प्रदान करता नहीं। इसीलिए उन्होंने रामचरितमानसमें स्पष्ट स्वीकार किया कि उन्होंने वेद शास्त्र पुराणकी सम्मत वाणीसे तो रामचरितमानसकी रचना की ही, कुछ अन्यत्रसे भी लिया। विद्यार्थियोंके लिए यह बात विशेष ध्यान योग्य है कि ज्ञानको सदैव किसी भाषाके द्वारा पाया जा सकता है और ज्ञानपर भूमि-निर्णयों और आयुर्वेद शास्त्रोंकी तरह स्वदेशी और विदेशीका आरोप नहीं किया जा सकता। किन्तु वे लोग अपराधी हैं जो विदेशी ज्ञान समस्त समय अपनी भाषाको भूल जाते हैं।

सन्त विनोबाके कथनानुसार तो तुलसीदासकृत रामचरित मानसका नाम 'रामायण'के स्थानपर 'भरतायण' होना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सन्तवर विनोबाका यह कथन बिलकुल ठीक है कि भरत अक्षरशः तुलसीदासके ध्यान-मूर्ति-मात्र थे। भरत रामके भक्त थे और तुलसीदास मौन, औत्सुक्य और आराधनामें भरतके शिष्य बननेका प्रयत्न करते थे। भरतका चरित्र गोस्वामी तुलसीदासने इस प्रकार चित्रित किया है कि विश्वके कठोर संघर्षके बीच आज भी यदि कहीं भरतत्व प्राप्त हो जाये तो सौ-सौ रघुवंशोंका सम्मान आज भी बचाया जा सकता है। यदि मेरा वश चलता तो मैं कॉलेजके विद्यार्थियोंके पाठ्यक्रममें उन्हें रामचरित-मानस दिए जानेकी हिमायत करता। घड़ी-ठाकुरजापर पढ़-पढ़के राम-वन गमन या सीता-हरणकी कथा सुनकर रो पड़नेवालोंके अकथनीय आँसुओंका भ्रम तो मेरी समझमें नहीं आया न आ सकता। ऐसा लिखना कठिनाइयाँ सहृदय संघर्ष और इस भवके पाँच पुरुष-स्वामियोंकी रक्षा और पोषणका निर्वाह यदि यह जीवन नहीं है तब तो जीवन केवल रोटीके लिए, मालिककी ओरसे पाकपर जीनेवालों ही के पास रह जायेगा। मेरे निकट तुलसीदास केवल भावुकी प्रार्थनाशील ही नहीं हुए, वे काम भी कर्मयोगी है। कभी कार्योंमें व्यापकतेके भारपर घूमते-से और कभी अयोध्यामें अपनी पोथी-पत्रे लिए देवमन्दिरोंके द्वार चक्कर लगाते-से।

किन्तु छोटे-छोटे गाँवोंकी यात्रा करते और लोक-जीवनसे प्रेरणा लेकर लोक-जीवन ही में रामचरितमानसको उतारते-से — तुलसीदासके चरणोंकी धूलमात्र में अपने हाथ उन चरणों तक भी पहुँचा पाता हूँ जो आज भी प्रतिमाके पीछेका अपना हृदय दान कर रहे हैं।

आपने मेरी बातें शान्तिसे सुन लीं इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। विद्यार्थियोंके सामने बोलते समय मैं यह नहीं सोचता कि मैं तुलसीदासपर क्या कहना चाहता हूँ मैं केवल वही सोचता हूँ जो मुझ आपसे गोस्वामी तुलसीदासपर संक्षिप्त रूपमें कहना है।

होल्कर महाविद्यालय इन्दौर
१९५८

■

पत्रकार संघ और सम्भावनाएँ

देशके उपस्थित सुप्रसिद्ध सज्जनो और पत्रकार बन्धुओ !

मेरी अपेक्षा ज्ञान-वृद्ध, वयोवृद्ध और तपोवृद्ध व्यक्तियोंके होते हुए, आपने मेरे-जैसे अनुभवहीन व्यक्तिको इस संस्थाके सभापतित्वका गौरवपूर्ण पद प्रदान किया इसके लिए मैं शिष्टाचारका ही आपको धन्यवाद दे सकता हूँ हृदयसे नहीं। असमर्थता यह दूसरा भय है। संस्था अभी बाल्यावस्थामें है ऐसे समय साधारण तथा सार्वजनिक जीवन और राष्ट्रीय स्फूर्तिके आत्म-प्रकाशनमें जिनके हाथ अधिक अनुभवशील अधिक सावधान होते उन्हींको यह कार्य सौंपना उचित था। एक वयके शिशुको सजीव सबल और सक्षम कर दे डालनेके लिए, किन्तु संगोपनमें निपुण हाथोंकी जरूरत थी। मेरा तो इस कथामें कोई स्थान ही नहीं किन्तु मैं मानता हूँ आपने अपने ठेठ पानीके बरते हुए हथियारोंको इस संस्थाके किसी अकस्मात् जिम्मेदारीके समय सँभालनेके लिए रख छोड़ा है और इसलिए मुझ-जैसे आदमीको आपने आज्ञा दी है कि मैं प्रारम्भिक समयकी परिमित जिम्मेदारियोंमें आपकी आज्ञाका पालन करूँ। यद्यपि मैं इस प्रदान किये हुए गौरवके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ किन्तु मैं जानता हूँ कि ऐसी जिम्मेदारियाँ गौरवका कारण नहीं होतीं वह तो एक आपदा एक संकट होता है जहाँ अपने व्यक्तित्वों-से अलग बैठकर अनुभवको अनुगामक और आवश्यकताके अनुकूल सभाका संचालन करना होता है। अस्तु, तात्पर्य आपने चाहे जो सोचकर मुझे यह पद प्रदान किया हो मैं तो इस पदके सबसे योग्य श्रीयुत् अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी और पूज्य लक्ष्मणनारायण गर्दे श्रीयुत् मथेपरांकर

विद्यार्थी और उन सब सज्जनोंके एक नम्र प्रतिनिधिके नाते कार्य करूँगा जिनके ज्ञान अनुभव और तपको आपके सभापतित्वका पानेका मुझसे अधिक अधिकार था।

सज्जनो, भारतीय उपवनमें कितने ही फूल और फल ऐसे हैं जो इस देशकी उपज नहीं, उनका आगमन अन्य देशोंसे इस देशमें हुआ है। समाचार-पत्रों और समाचार-पत्रोंका व्यवसाय भी इसी बातका एक उदाहरण है। इसीलिए समाचार-पत्रसे सम्बन्ध रखनेवाला प्रशस्त ज्ञान भी हमें उन्हीं देशोंके साहित्यमें मिलता है और अपने देशकी परिस्थितिके अनुकूल हमें उसका उपयोग कर लेना होता है। पाश्चात्य देशोंमें समाचार-पत्रका काम बहुत महत्त्वपूर्ण है और उसमें काम करनेवाले लोगोंका समाजमें बड़ा मान है। गत सौ डेढ़ सौ वर्षोंमें संसारमें जो लड़ाइयाँ जो महायुद्ध जो सन्धियाँ जो समझौते और जो सामाजिक राजनैतिक और औद्योगिक हलचलें हुई उनका महान् यश अधिकतर समाचार पत्रकारों और समाचार-पत्रों ही को देना पड़ेगा। युद्धघोषणा अथवा सन्धिकी चर्चा-जैसे काम यद्यपि प्रत्यक्षतः राज-शकटका संचालन करनेवाले राजनीतिज्ञ ही किया करते हैं किन्तु युद्ध या सन्धिकी परिस्थितियाँ उत्पन्न करने अथवा उन परिस्थितियोंको जिन्दा रहने देने और मार डालनेका काम समाचार-पत्र ही किया करते हैं। इस बातसे समाचार-पत्रों और उनके संचालकोंकी अतुल अद्भुत अथवा अपूर्व शक्तिका अन्दाजा लगाया जा सकता है। इंग्लैण्डमें साम्राज्यके जो चार आधार स्तम्भ माने जाते हैं उनमें एक समाचार-पत्र भी है और इसलिए इंग्लैण्डमें और उससे भी अधिक जापानमें समाचार-पत्रोंको 'फोर्थ स्टेट' कहा जाता है। इंग्लैण्ड जापान और अमेरिका-जैसे महाशक्ति कहे जानेवाले देशोंमें लार्ड नार्थ क्लिफ लार्ड बेवरब्रुक और ओची के उत्पादक प्रसिद्ध जापानी फुकुजावा-जैसे व्यक्तियोंको यह गौरव प्राप्त है कि उनके देशोंको उसी पथमें चलना होता है जिस पथमें वे चलाना

रहते हैं।

बन्धुओ! यदि समाचार-पत्र संसारकी एक बड़ी ताकत हैं तो उनके सिर जोखिम भी कम नहीं। पत्रकारी जो शिखरें छूनेसे चमकती और राष्ट्रीय रक्षाकी महान् दीवार बनती है उन्हें ऊँची होना पड़ता है। समस्तमें समाचार-पत्र यदि बड़प्पन पाये हुए हैं तो उनकी जिम्मेदारी भी भारी है। बिना जिम्मेदारीके बड़प्पनका मूल्य ही क्या है? और वह बड़प्पन तो मिट्टीके मोल हो जाता है जो अपनी जिम्मेदारीको सँभाल नहीं सकता। समाचार-पत्र तो अपनी गैर-जिम्मेदारीसे स्वयं ही मिट्टीके मोलका नहीं हो जाता किन्तु वह देशके अनेक महान् अनर्थोंका उत्पादक और पोषक भी हो जाता है। इस समय एकाधिकार या अल्पाधिकार शासनोंके सिंहासन डोल रहे हैं और जन-सत्ताका सूर्य धीरे-धीरे नभो मण्डलके मध्य भागको छूना चाहता है। ऐसे समय जनताके हृदयकी ध्वनि उनके संकटके शमन उनके एकान्तके चिन्तन उनके जन-समूहके प्रबोधक समाचार-पत्रोंका महत्त्व और भी अधिक है। और चूंकि निरे पुस्तकोंसे समानताकी ओर जानेका जनसमूहका रुख बदलनेका सामर्थ्य अब अपना काम नहीं कर सकेगा अतः समाचार-पत्रोंका प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही जायेगा। इसलिए सामयिक पत्रोंसे अपना सम्बन्ध समझने उसे अनुभव करने और उनके द्वारे परिस्थितिमें परिवर्तन करनेके उपासकोंको अपने गम्भीर उत्तर-दायित्वको क्षण-क्षण अनुभव करना होगा और आनेवाली परिस्थितियोंका सक्रिय जवाब देनेके लिए सदैव प्रस्तुत रहना होगा।

बरबनी समाचार-पत्रोंका प्रधान काम है लोकमतका निर्माण और इसीलिए, इस व्यवसायके व्यक्ति चिन्तित रहते हैं कि देशकी आवाज के स्पष्ट, सच गुण और उन्मुक्त करनेमें देशकी धारणाओंको काट-छाँट, विकृत और चरित्र-शून्य बनानेमें उनका कोई कार्य अपकर्षका कारण न हो जावे। जो देश स्वतन्त्र है, वहाँ साहस और महत्त्वाकांक्षाओंसे, पराध

और अफ़ीम-जैसे विष-युक्त पदार्थोंकी तरह बन्धन नहीं रखे जाते वे जिस तरह अपनी गम्भीर ज़िम्मेवारियोंको 'विनोद' की तरह निपटाते हैं उसी तरह अपने और समाजके विनोद और शौकके लिए राष्ट्रीय-हितको कभी-कभी भेंट चढ़ा सकते हैं। किन्तु जो देश भारतकी तरह पराधीन है उस देशके सम्पादकोंको अपने देशके भाग्यके साथ खिलाड़ी जैसी तरह बरतनेका अवसर नहीं रहता एक जोखिम भरे रोगी आत्मीयकी तरह बरतना पड़ता है। वे अपने बीमार देश की उसके कमजोर भाग्यके साथ मज़ाक नहीं कर सकते देशकी किसी भी घटना और अपने किसी भी साधनका उपयोग सामाजिक और व्यक्तिगत विनोद और शौकके लिए नहीं कर सकते। पराधीन देशोंके पत्र सम्पादकोंकी ज़िम्मेवारियाँ स्वाधीन देशोंके पत्र-सम्पादकोंसे कहीं अधिक और जोखिमसे भरी हुई होती हैं। स्वतन्त्र देशोंमें पत्र-सम्पादन प्रोत्साहनका गौरवका और सुखका साधन होता है। परतन्त्र देशोंका उनका पत्र सम्पादन विदेशी राज-कर्ताओंसे सीधा लोहा लेना उनके स्वार्थोंपर बिना झिझके पैर रखना होता है। सन् १७८ में कलकत्तेसे प्रकाशित होनेवाले भारतके प्रथम पत्र 'हिकीज़ गजट' से लगाकर आज तकके हमारे देशके कितने ही पत्रोंसे मिले हुए दैनिकोंके बारम्बार फौजी अमानुषीय कठोर व्यवहार मनुष्यता-हीन दमनाभावना बड़े-बड़े जुर्माने ज़ब्तियाँ और पिछले १४० वर्षोंकी कठोर यातनाएँ इस बातका गहरा सबूत हैं कि किसी पराधीन देशका पत्र-सम्पादन प्राणकी बाज़ीका व्यापार है। भारतके समाचार-पत्रोंका सत्यानाश और विनाश विदेशी सरकारके क़ानूनके अस्त्रोंसे बार-बार होता गया है। इस देशके समाचार-पत्रोंने तीन बातोंको लगातार सामने रखा है—

१ हम इतने बचकर लिखें कि क़ानूनका हाथ हमें निगल न जाये।

२ क़ानून द्वारा लिखनेके साधन उनकी स्फूर्ति छिन जानेके बाद भी ऐसी कौन-सी बात है कि जिन्हें लिखकर, राष्ट्रको जाग्रत करनेका बल उसमें ला सकें। ३ ऐसे कौन-से साधन हैं जो व्यवसायकी दृष्टिसे समाचार-पत्रों-

को छिपा रख सकें।

इसके सिवा पत्र-संचालनकी कला हमारे देशमें सर्वथा नया होनेके कारण और 'जनताके बल' की कदर देशमें अभीतक प्रकट न कर सकनेके कारण देशको ओरसे — देशकी जनताकी ओरसे — जो समर्थन या सहायता जो वांछित रूपमें मिलनी चाहिए, वह हमें नहीं मिलती। जनताकी सहायताके अभावके दुर्भाग्यसे हम कठिनाईमें पड़े जा रहे हैं। समाचार पत्रों की उपमा उस स्तंभसे दी जा सकती है जिसके पूर्व और पश्चिम भयभीत अत्याचारियोंके आक्रमण हो रहे हैं किन्तु जिसके पोषक और आधारभूत अज्ञान हों। इस तरह बलवान शत्रु और अज्ञान-सहायकके बीच सम्पादक-के स्वार्थोंकी रक्षा करते जाना एक कठिन तपस्या है।

ऐसी है परिस्थिति जिसमेंसे समाचार-पत्रोंको गुजरना होता है। किन्तु ऐसी अनेक बाधाओं और विकट परिस्थितियोंमें भी भारतीय पत्रों और उनके संचालकोंने अपना अस्तित्वको कायम रखा और पिछली शताब्दीके पचीस वर्षोंमें समाचार-पत्रोंकी संख्या बढ़ायी यह देख-सुनकर किसे अचम्भा न होगा? और कौन यह न कह उठेगा कि इस कार्यको कन्धेपर लेनेवाले कर्णधार पत्र-प्रेमियोंके धैर्य उनकी लगन उनकी दीर्घदर्शिता ही यह परिणाम है। कौन नहीं कहेगा कि आज समाचार पत्रोंको जो बल जो अवस्था प्राप्त है उसका श्रेय इस देशके स्वर्गीय लोकमान्य स्वर्गीय गोखले बाबू श्रीयुत रामानन्द चटर्जी और श्रीयुत सुब्रह्मण्यम् अय्यर-जैसे व्यक्तियोंको ही है। मुझे विश्वास है कि यदि हमने अपने देशकी अगली पीढ़ीके जिनको अपना रक्त बिन्दुओंपर निर्भर हो जाने दिया यदि हमने भी पहलों-सी लगन वही त्याग और वही अध्यवसायसे अपना काम किया तो हम अपने पीछे आनेवाली पीढ़ीके हाथों एक गर्व करने योग्य परिस्थिति दे जानेमें सफल हो सकेंगे। स्वतन्त्रताका उपभोग करनेवालोंकी अपेक्षा उन कार्योंका कीर्ति निःसंशय अधिक उज्ज्वल उनका प्रयत्न अधिक प्रशंसनीय उनका पुण्य अधिक है

जिन्होंने अपनी भुजाओंके बलसे राज्य कमाया और अपनी आजाद पीढ़ियों-के हाथोंमें धरोहरकी तरह सौंप दिया।

मैंने यह बात कई जगह पढ़ी और सुनी है कि राष्ट्रकी अथवा मानव हृदयकी धमनियोंको फड़का देनेवाले कवि अपने-आप ही जन्म लेते हैं वे बनाये नहीं जाते। इस विषयपर निश्चित रूपसे मुझे कुछ पता नहीं किन्तु पत्र-सम्पादकोंके विषयमें मैं इस बातको मानता हूँ। मैं पत्र-सम्पादन के विषयके जानकार अंगरेज लेखक मि० जॉन मेकफर्सनके इस कथनसे सहमत हूँ कि ऑक्सफोर्डका गौरव कैम्ब्रिजकी कीर्ति और बैरिस्टरीका बड़प्पन पत्र-सम्पादनमें अधिक कीमतका नहीं ठहरता। यहाँ तो स्वभाव-जन्य बेचैनी ही अधिक यशस्विनी होती है। यह कला अलंकारों वाले सौन्दर्यकी उपमान नहीं इस प्रकारके शाहानोंको सज-धज करनेवाली नवीनताकी उपमा दी जा सकती है, और इस कलाकी आत्माकी उपमा है वह सौन्दर्य जो प्राणोंके मूलमें है चूँकि वह अपनी गोदमें निवास करता है। अपनी गोदमें निवास करनेवाला सौन्दर्य सजाये हुए राज-महलोंमें नहीं रहता वह प्रकृतिके हाथों निर्मित हुई जोखिमकी जगहोंमें निवास करता है। उसी तरह पत्र-सम्पादनकी कला युनिवर्सिटीकी मुहर की तसवीरोंके भरोसे जीवित नहीं रह सकती उसके लिए हृदयकी लगन ही आवश्यक है। इस कलाका जीवन है सहृदयता और बलवान बेचैनी और स्वाभिमानका स्वभाव-सिद्ध होना। शिक्षा और श्रम-द्वारा विद्वत्ता और बहुश्रुतताको जीता जा सकता है अगर किसी स्वभावसिद्ध गुणोंसे नहीं। स्वभाव-सिद्ध गुण जिसका बाना नहीं उसका इस कलाका द्वार खटखटाना अपना भविष्य जीवनको बरबाद करना और देशकी छातियों-पर वृथा बोझ बढ़ाना है। यह सच है कि मानव-पहुँचके लिए असम्भव कुछ भी नहीं किन्तु यह भी सच है कि हर काम हर आदमी नहीं कर सकता। मैं नहीं मानता कि जन्मके ही समान मानव-पहुँच और विशेषतः मानव-वृत्ति स्वभावसे समान परे है। प्रत्येक बात मानवीय रुचिकी स्वाभा-

विचारपर अवलम्बित होती है। अतः मेरी नम्र सम्मतिमें तो मनुष्य अपने मनका तोल देखकर ही अपने लिए कार्य चुने। समाचार पत्रोंके जोखिम-भरे धन्धोंमें तो यदि ऐसे ही स्वभाव-सिद्ध रुचिवाले लोग आयेंगे तो यह कला अधिक बढ़ेगी और अपेक्षित फल देगी।

सज्जनो, समाचार-पत्रोंने सचमुच समस्त जगत्‌को पाठशाला बना डाला है। 'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्' कहकर, धर्माचार्योंके चरणोंपर मस्तक झुकानेकी परम्परा सब देशोंमें रही है और आज भी है किन्तु बिना नाम ही समाचार-पत्रोंके ज्ञानकी उनकी सूचनाओंकी उत्सुकतासे बाट प्रतीक्षा करनेवाले शिष्योंकी जितनी बड़ी संख्या आज जगत्‌में है, उतनी बड़ी संख्या संसारके सब धर्मोंके आचार्योंके समूचे जोड़की भी नहीं है। यह सच है कि समाचार-पत्रोंको किसीने शिक्षक नियुक्त नहीं किया, किन्तु यह बात कहकर वे एक शिक्षकके नाते पड़नेवाली जिम्मेदारीसे बच नहीं सकते। अयाचित और स्वयं-स्वीकृत सेवा अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण हो जाती है। विद्यार्थी अपने शिक्षकोंसे जो तालीम पाते हैं वह ऐसे ज्ञानके रूपमें होती है जिसे उन्हें भविष्य-जीवनमें काममें लाना होता है, आज नहीं। और उन्हें अपने ज्ञानके अमुक विद्वानों-द्वारा परिमार्जित करनेके लिए काफी अवसर भी रहता है। पत्र-सम्पादकोंके श्रोताओं या पाठकोंका यह हाल नहीं। जिस बातके लिखनेमें सम्पादकको थोड़ा ही कष्ट उठाना पड़ता है केवल जरा सोचना और कुछ सन्दर्भ पुस्तकोंको देखना पड़ता है, यदि वही बात परिस्थितिको देखकर या हानि-लाभका ख्याल कर न लिखी जाय तो वह पाठकोंको चरित्र धन गौरव और ज्ञानके रूपमें महान् हानिका कारण होती है। इसीलिए कि समाचार-पत्रका पाठक जीवन-युद्धमें लगा हुआ जीव होता है समाचार-पत्रोंसे पाये हुए ज्ञानको परिमार्जित करनेके लिए विद्वान् शिक्षकों और उचित अवकाशका उनके पास अभाव होता है। यह बात ठीक वैसी ही है कि इतिहासके लेखक या भविष्यवक्ताओंकी गलती केवल पढ़नेमें कष्ट देती है और पिछली परम्परा या भावी जीवनकी चर्चा

करती है, अतः मनुष्यकी प्रत्यक्ष हानि नहीं करती किन्तु क़ानून बनाने वालेकी ग़लती तुरन्त लोगोंके धन-जनका नाश करने लगती है। अतः समाचार-पत्रोंके लेखकको अपनी क़लम तलवारसे कहीं अधिक सावधानीसे उठानी पड़ती है। तलवारकी पीड़ा प्रारम्भमें ही होती है। अतः घावके पूरा होनेके पहले ही वार बचानेका यत्न किया जा सकता है। किन्तु पत्र-सम्पादकके प्रहारका अनुभव, नाश और हानिके बाद होता है। इस-लिए, इस दिशामें क़लम चलानेवालेकी दृष्टि, परिणामपर सतत लगी रहनी चाहिए। नियुक्त शिक्षक केवल अपने नियुक्त करनेवालेके सामने उत्तर दायी है किन्तु पत्र-सम्पादक समस्त देशके सामने उत्तरदायी होता है, क्योंकि उसके हाथमें देशका हित और अहित होता है।

सम्मान्य बन्धुगण! स्वभाव-सिद्ध सम्पादकोंकी चर्चा करनेसे मेरा मतलब ज्ञानको गौण स्थान देनेसे नहीं। मैं मानता हूँ कि सम्पादकके स्वभाव-सिद्ध गुणोंको जिन्दा रखनेके लिए, ज्ञान ही एक महान् साधन है। किन्तु हीरा कीमती वस्तु भले ही हो धारारण रखे जानेके पहले उसे कड़ाई संघर्षोंका सामना करना होगा। इसी तरह सम्पादककी ज़िम्मेदारी सँभालनेवाले व्यक्तिके मार्गमें लगातार विश्वके ज्ञानका संचयन बना होता है। सम्पादकों या पत्रकारोंके लिए आवश्यक ज्ञानका प्रबन्ध अभी हिन्दके कोई भी विद्यापीठ पूर्ण रूपसे नहीं खुलता पाये हैं। अमे-रिका इंग्लैण्ड आदि देशोंमें अभी कोई वर्षोंसे पाठ्य-क्रम बने हैं, किन्तु उनमें अभी निश्चितता नहीं आ पायी। भारतमें हमारे अज्ञानपर जीने वाला शासन होनेके कारण हम सदैव विश्वके ज्ञानको बहुत देर बाद पाया करते हैं। किन्तु सम्पादन-कलाके ज्ञानके विषयमें यह विलम्ब अक्षम्य अपराध होगा। हमें ऐसा उद्योग करना चाहिए जिससे समाचार पत्रों और सम्पादन-कलाके ज्ञानकी जड़ जमे। मैं आशा करता हूँ, आप सब सज्जन इस बातपर अवश्य विचार करेंगे कि व कौन-कौन-से प्रधान उपाय हैं, जो समाचार-पत्र और सम्पादन-कलाके लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हों

करते हैं।

महाशयो, हमारे देशके समाचार-पत्र संगठित नहीं हो रहे। श्रीयुत नटराजनके सभापतित्वमें बम्बईमें, श्रीमान् रामस्वामी शास्त्रीके सभापतित्वमें मद्रासमें, 'फ़ारवर्ड'के एक भूतपूर्व सम्पादक महाशयके सभापतित्वमें बंगालमें और इसी प्रकार भिन्नमें, एक-एक पत्रकार-संघ स्थापित है। यद्यपि भाग्यशाली सबके सभापति तो कुछ समय तक महात्मा गान्धी भी रह चुके हैं। किन्तु खेद है कि सिवा कभी-कभी निन्दा और विरोधके प्रस्तावोंके पास कर लेनेके इन संघोंका कोई विशेष उपयोग जहाँ तक मेरा तुच्छ सूचना-ज्ञान पहुँचा है, नहीं हुआ। इन संघोंने मिलकर यह उपाय नहीं किया कि एक बार देशके समस्त पत्रकारोंके रूपमें अपनी राष्ट्रीय पत्रकारिता बना लेनेके और पत्रकारोंको संगठित करते। हमारे संगठित न होनेके अनेक कारणोंमें दो प्रधान दीखते हैं — एक तो सम्पादकगण या संचालकगण स्वयं अपने अपने पत्रोंके जीवनविधाता हैं फिर भला वे किसीके अनुशासनमें कैसे रहें? दूसरे जिन पूँजीपतियोंके हाथमें देशके कुछ प्रभावशाली समाचार-पत्र हैं, वे शायद इस बातका भय मानते हैं कि यदि साहसी गरीब उपकरणे पत्रकार संघमें बलवान हो गया तो निरंकुशताको एक गहरी ठोकर लगेगी और उसके ठोकर लगते ही पूँजीवादी इमारतकी नींव हिलने लगेगी। इसका एक तीसरा कारण भी शायद है। संगठनका काम बिना धनके नहीं चल सकता, और धन तो धनपतियोंकी चेरा है। गरीब अपनी आपसी ताकतको भी संगठित नहीं करना चाहते शायद उनका यह खयाल है कि केवल समाचार-पत्रोंका उपदेश ही समाचार-पत्रोंको काफ़ी शक्तिशाली बना देगा इधर धन-पतियों-की पनिपर चलनेवाली संस्थाओंमें यह सार्वजनिक-बल नहीं आता या जिसे देशमें इस बलको पत्रको कर अपना बलके पैरोंको उसके स्थायक संगठनमें मजबूत बनाता है। तब संगठन कैसे हो? दैग्म यदि बार-बार दमनक कानून जारी किये गये और समाचार-पत्रोंको कुचला गया तो

इसका कारण समाचार-पत्रोंका संगठित न होना ही है। अन्य समाचार-पत्रों और समाचार-पत्र-संचालकोंका तो प्रायः कुछ नहीं बिगड़ता जिन्हें अपना व्यापार या सरकार दरबारमें प्रतिष्ठा पानेके लिए पत्रोंका संचालन करना होता है किन्तु जिन समाचार-पत्रोंके सम्मुख लोक-मतका सजग होना ही उद्देश्य है उन्हें कानूनकी कृपासे कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं। इसका पता उन्हींको है जिन्हें समाचार-पत्रकारके नाते नित्य सरकारी नियन्त्रणमें रहना और आये दिन सरकारी प्रहारोंको सहना पड़ता है यद्यपि इस देशके दरवाजे हमारे देशवासियोंके लिए प्रायः बन्द-से हैं किन्तु व्यापार कला मजदूरी विद्याभ्यास तथा अन्यान्य कार्योंसे जो लोग देशसे बाहर गये हैं या चले जाते हैं, उन्हें देशमें लौटनेमें कोई खास कठिनाई नहीं होती। किन्तु जो लोग आन्दोलनके नाते समाचार-पत्रोंमें लिखनेका पाप करते हैं या जो समाचार-पत्रोंसे सम्बन्ध रखते हैं उन भारत-वासियोंको इस देशके शासनकी ओरसे परेशान किया जाता है कि वे अपनी मातृभूमिका पुनः मुख न देखें। लाला लाजपतरायकी पाँच वर्षों तक अमेरिकामें बनो-जीवन व्यतीत करते हैं स्वामी सत्यदेव कठिनाईसे पासपोर्ट पाते हैं और कितने ही साहित्यसेवी पासपोर्ट नहीं पाते ऐसे व्यक्तियों ही मेंसे होनेके कारण श्रीयुत सापुरजी सकलातवाला एम० पी० पार्लमेण्टके सदस्य होकर भी भारत आनेसे रोके जा सकते हैं। क्या हम उन लोगोंके देशके लिए सहे हुए कष्टोंको भूल सकते हैं, जिन्होंने देशसे बाहर समाचार-पत्रोंमें अपार आन्दोलन कर संसारके लोकमतको देशकी स्वाधीनताके अनुकूल बनाया है? सज्जनो यदि आज अमेरिकाकी आयोवा युनिवर्सिटीके विद्वान् प्रोफेसर सुधीन्द्र बोस बार-बार प्रयत्न करनेके पश्चात् भी भारतमें नहीं आ सकते और यदि श्रीयुत बसन्त कुमार राय राजा महेन्द्र प्रताप श्रीयुत हरिश्चन्द्र विद्यालंकार श्रीयुत एम० एन० राय श्री कालिदास नाग लाला हरदयाल श्री तारकनाथ दास श्री रासबिहारी बोस और श्रीयुत सैयद हुसेन आज देशनिकालेके

णीय अपराधियोंकी तरह देशसे बाहर हैं और अपनी मातृभूमिमें
हीं आते तो इसका कारण है — देशके पत्रकारोंके संगठनका अभाव। उन
त्रकारोंके सारे अपराध नहीं जिसका हमारे देशमें शासन है। जब
ग्लैण्डमें तो उसको औपनिवेशिक और समाजसत्तावादी साम्राज्यवादक
हा रह सकती है, किन्तु उसी इंग्लैण्डके शासनमें हमारे देशमें न आप
हीं आ सकते जिन्होंने समाचार-पत्रों-द्वारा निर्भीकतापूर्वक भारतकी
धापर आन्दोलन किये हैं। इसके सिवा कष्ट सहकर या बिना कष्ट सह
ा लोग प्रसिद्ध लेखक या सम्पादक बन गए हैं और जिनपर थोड़ी-सी
ापदा आते ही लोक-मत खूब प्रक्षुब्ध हो उठता है उनकी बात जाने
ीजिए। उनपर प्रहार करते समय, तो सरकार भी दो बार सोच लेती
है किन्तु जिन अभागोंने प्रसिद्ध लेखक या प्रधान नेताका गौरवपूर्ण पद
हीं पाया, जिन्हें समाचार-पत्रोंके साधारण लेखक उप-सम्पादक या
ाधारण कार्यकर्ताकी हैसियतसे अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है,
दि उनपर कभी कानूनकी कृपा हो जाती है तो उन्हें जेलमें तरह
रहके कष्ट दिये जाते हैं, साधारण चोर और डाकूसे भी बदतर रखा
जाता है, और खान पीने तथा जीवनमें इतनी बाधायें पैदा कर दी जाती
हैं कि वे बेचारे अब इहलीला संवरण कर गए इसका उस जनताको पता
ी नहीं चलता जिसकी सेवा करते-करते उन्होंने ये उपहार पाये। इस
अपरिचित श्रेणीके लोगोंकी स्त्रियों माता-पिताओं भाई-बहनों और बाल-
बच्चोंकी जो दुरवस्था होती है उसकी तो कल्पना ही व्यर्थ है। वे भूखों
मरते हैं सरकारके सन्देह-भाजन होनेसे प्रभावशील लोग पूछते ही नहीं।
जनता उनसे परिचित न होनेके कारण सहायता नहीं करती परिणाम
यह होता है कि उन परिवारोंको भीख भी नहीं मिल पाती। मुझे क्षमा
कीजिए इन लोगोंकी इस दुरवस्थाका कारण और कुछ नहीं केवल
देशके पत्रकारोंका उचित संगठन न होना ही है। भारतके अंग्रेजोंके
समाचार-पत्रोंके विद्वान् सम्पादक और पत्रकार अपना चाहे जो रुख रखें

मैं आशा करता हूँ कि हिन्दीके पत्रकार अपने संगठनको ऐसा स्वरूप देंगे जिससे वह संगठन सह-योगी पत्रकारोंके लिए सहायक भी हो सके।

सज्जनो! एक बार एक अँगरेजी दैनिकके सम्पादकीय विभागमें काम करनेवाले मित्रने पूछा "पत्रकार कौन है? क्या भारत सरकारके बोर्ड ऑव इनफॉरमेशनके भू० पू० डाइरेक्टर प्रोफेसर रशब्रुक विलियम्स और आवकस्के उनके उत्तराधिकारी मि० कोटमन पत्रकार कहे जा सकते हैं? क्या बम्बईके 'इण्डियन मेल'के स्वामी सर विलसा पत्रकार हैं? यदि देशके प्रधान व्यापारी टाटा या श्रीमान् घनश्यामदासजी बिड़ला कल कोई पत्र प्रकाशित करने लगें तो पत्रकारोंकी गणनामें आ जायँगे? अथवा किसी देशी रियासतके महाराज अपना राज्यमय पत्र प्रकाशित कर उसमें लेख लिखने लगें तो वे पत्रकार हो जायँगे?" सम्भव है इन प्रश्नोंके मेरे जवाबका लोग मजाक उड़ायें। पर सज्जनो! मेरा तो स्पष्ट मत है कि वे सज्जन पत्रकारोंकी श्रेणीमें नहीं गिने जा सकते। यदि देशमें कोई पत्रकारसंघ कायम हो और उसमें सरकारी नौकर, धनिकोंके सेवक और इस लोगोंकी तादाद अधिक हो जाये जिनके जीवन पत्रोंकी आमदनीपर अवलम्बित नहीं या जिनके पत्र किसी कमाईके विज्ञापनमात्र हैं तो मैं ऐसे संघको ऐसी सभाको ऐसे सम्मेलनको निहायत अदबके साथ 'पत्रकार संघ' कहनेसे इनकार करूँगा। पत्रकार तो केवल वही है जिसका जीवन पत्र और सम्पादन-कलापर ही अवलम्बित है और जिसके सुखोंका साधन और दुःखोंका सहारा समाचार-पत्र ही है। पत्रकार हैं वे लोग जिनका मूल्य चाहे उनके पत्रोंके संस्करणकी तरह कम अधिक कूता जाता हो किन्तु केवल पत्रकार होनेसे जिनके प्रभावको कम नहीं कूता जा सकता।

सज्जनो! यह सच है कि भारतमें पत्रोंका धन्धा उतना आकर्षक नहीं। अच्छे मस्तिष्क परिपूर्ण ज्ञान और दीप्तिमान कलाके लोग समाचार-पत्रोंमें अपना जीवन खपाना नहीं चाहते। इसका प्रधान कारण तो

यह है कि यह व्यवसाय राज्य-कर्ताओं-द्वारा आदरकी दृष्टिसे नहीं देखा जाता। इसीलिए जो लोग जुर्माने जेल-यातना या अफसरों तथा राजाओं-की नाराजीसे अपनी तौहीन अनुभव करते हैं वे इस रोजगारमें अपने जीवनको बरबाद करना नहीं चाहते। दूसरे समाचार-पत्रोंपर रहनेवाली कठिनाइयोंके कारण पत्र अपने पूर्णोंका पूरा विकास नहीं कर पाते और ऐसी दशामें वे गरीबीमें अपना जीवन व्यतीत करते हैं। तब यदि कुछ तरुण निर्भीकतापूर्वक अपने रास्ते हुए पत्रिकारको लेकर पत्रोंकी सेवाओं-में प्रवेश भी करना चाहते हैं तो पत्रोंकी ऐसी स्थिति नहीं होती कि वे इस भविष्यके उज्ज्वल स्वप्न देखनेवाले तरुणोंको स्वल्प-मुद्राओंकी कीमत-पर स्थायी कर सकें। यह देखा गया है कि जब-जब समाचार-पत्रोंके बन्धन शिथिल किये गये हैं या देशकी व्यापारिक अवस्था अच्छी रही है और समाचार-पत्र अच्छा वेतन दे सके हैं तब-तब देशके तरुणोंने समाचार पत्रोंके जोखिम-भरे रास्तेसे अपना पाँव पीछे नहीं खींचा किन्तु इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि सरकारने अपने विरोधसे भारतके पढ़े लिखे तरुणोंको पत्रकार नहीं बनने दिया।

इसके सिवा इस दिशामें एक कठिनाई और है। समाचार-पत्र सम्पादन कलाकी शिक्षाका इस देशमें कहीं समुचित प्रबन्ध नहीं है। अभी कुछ दिन हुए बम्बई विश्वविद्यालयने इस दिशामें कुछ उद्योग करना चाहा था किन्तु आखिर कुछ नहीं हुआ। देशके तरुणोंको सम्पादन-कलाकी शिक्षा देनेके पक्षमें हमें भारत-व्यापी संगठनका श्रम-विश्लेषण मिलने तक नहीं ठहरना चाहिए। यह सन्तोषकी बात है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी परीक्षाओंमें एक विषय पत्र-सम्पादन भी है किन्तु उन परीक्षाओंमें पास होनेवाले तरुणोंका पत्रोंके कार्यालयोंमें जब वे नियुक्त किये जाते हैं कोई खासका उपयोग नहीं हो पाता। केवल परीक्षा ही से सम्पादक निकलेंगे भी नहीं। हिन्दी समाचार-पत्रोंके कार्यालयोंमें योग्य व्यक्तियोंके प्रवेश करानेके लिए, एक पाठशाला या आवश्यक नये मार्गोंको बाढ़में-से

कोई मदद मिल सके तो चाहिए एक सम्पादन-कलाके विद्यापीठकी आवश्यकता है। ऐसा विद्यापीठ किसी योग्य स्थानपर बुद्धिमान् परिश्रमी अनुभवी सम्पादक शिक्षकों-द्वारा संचालित होना चाहिए — उस पीठमें अन्यान्य विषयोंका एक प्रकाण्ड ग्रन्थ संग्रहालय होना चाहिए। वहां सरकारी गैर-सरकारी रिपोर्ट प्रस्ताव आदिकी व्यवस्थाबद्ध फाइलें होनी चाहिए। पंडितोंकी तालीममें इतिहास भूगोल अर्थशास्त्र राजनीति और साहित्यके परस्परसम्बन्धी ज्ञानके रूपमें पत्र-संचालनकी विविध वस्तुओंका समावेश होना चाहिए। वहां बताया जाना चाहिए कि प्रत्येक विषयका अध्ययन कैसे किया जावे विषयमें प्रवेश कैसे किया जावे साधन-सामग्री कैसे जुटायी जावे और उसका किस तरह उपयोग किया जावे एक भाषासे दूसरी भाषामें अनुवाद भिन्न-भिन्न पद्धतियोंसे किये जायें घटनाओंको काव्य कहानी कुतूहल गम्भीरता विनोद व्यंग्य और उपेक्षाका स्वरूप कैसे दिया जावे संसारकी घटनाएँ कैसे चुनी जावें और उनका विविध शैलियों रूपोंमें पृथक्करण कैसे हो बड़ी-बड़ी बातोंको छोटा स्वरूप कैसे दिया जावे और कोई भी बात समझ लेनेके पश्चात् समाचार पत्रोंमें कैसे दी जावे आलोचनाएँ कैसे की जावें आलोचनाओंके जवाब कैसे लिखे जावें किन आलोचनाओंमें विषयकी मीमांसा करते हुए व्यक्ति-की उपेक्षा की जावे और किनमें नहीं — आदि बातोंको खूब और उपयोग सिखा देनेकी व्यवस्था होनी चाहिए। इसी संस्था-द्वारा प्रयोगके लिए, एक साप्ताहिक पत्र और एक मासिक पत्र भी प्रकाशित किया जावे। इस संस्थासे उत्तीर्ण होनेके पश्चात् विद्यार्थियोंको देशके कुछ प्रसिद्ध और उत्तम समाचार-पत्रोंके कार्यालयोंमें कुछ मनस्वी सम्पादकोंके पास प्रत्यक्ष ज्ञानके लिए रखा जावे। इस तरह अंग्रेजी पढ़ने-लिखने और समझनेका विशिष्ट ज्ञान या सूझनेवाले तरुण चार-पांच वर्षोंमें सम्पादनके कामकी चीज हो सकेंगे। और रिपोर्ट प्रूफ मट तथा अन्य भिन्न-भिन्न सम्पादनके कामोंसे गुजर कर उनमेंसे कुछ व्यक्ति यदि

उनमें स्वभाव सिद्ध लगन हुई तो देशके अच्छे पत्रकार हो सकेंगे। इसके बाद भी अधिक महत्त्वका काम तब हो जब हम विशेष होनहार तरुणोंको इस कलाका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए विदेशोंमें भिजवा सकें। महान् शिक्षा हुए देश अफ़्ग़ानिस्तान टर्की और चीनके सैकड़ों तरुण युरोपीय ज्ञान क्षेत्रोंमें हैं तब क्या हमारे सम्पादन-कलाके कुछ तरुण भी न हों? अस्तु, ऐसी विद्यापीठमें, एक भाग सम्पादन कलाकी तालीम देनेवाला तथा दूसरा भाग व्यवस्थापक तैयार करनेवाला होना चाहिए। छापेखानोंके आर्थिक और व्यवसायकी दृष्टिसे संचालन हमारे पत्रोंकी एक भारी ज़रूरत है। उत्तम व्यवस्थापकके अभावमें उत्तम सम्पादक अकेला कुछ अधिक नहीं कर सकता अतः विभाग होना ही चाहिए। राजाके मन्त्रीकी तरह सम्पादकको व्यवस्थापककी ज़रूरत है। कई होनहार पत्रोंके डूबनेके प्रधान कारणोंमें एक कारण था उत्तम व्यवस्थापककी कमी। अस्तु सज्जनो ऐसी विद्यापीठकी स्थापनाकी ओर मुझे आशा है, आपका ध्यान गये बिना न रहेगा। किन्तु "भूखे भजन न होय गुपाला"। ऐसे विद्यापीठका निर्माण पत्रोंके मुख्य-व्यवसायियों-द्वारा नहीं स्वयं श्रीमानों-द्वारा ही हो सकता है। हिन्दी भाषी जनताका जितना विस्तृत क्षेत्र है उसमें वैसे ही धनी-मानी और राजा-महाराजा पड़े हुए हैं। यदि वे मैसूर ट्रावणकोर और बड़ौदाके समान हिन्दी-प्रभुता इस कलाको दें तो इस विद्यापीठके कायम होनेमें देर नहीं लग सकती। हम तो हिन्दू यूनिवर्सिटीको अन्य सरकारी यूनिवर्सिटियोंकी तरह गिने-चुने विषयोंकी तालीम देते ही नहीं देखना चाहते। हम चाहते हैं कि उसके संचालक, अपने पाठ्यक्रममें सम्पादन-कलाको भी स्थान दें। मेरा विश्वास है आपके प्रयत्नोंका फल इस कलाकी तालीमकी इन शिक्षालयोंमें अवश्य पूरा। यदि कुछ धनिक सज्जन एक-एक विद्यार्थीको अपनी सहायतासे विदेशोंमें सम्पादन-कलाका अभ्यास करने भिजवायेंगे तो वे देशके भावी लोकमतको जाग्रत् करनेकी एक अच्छी सेवा करेंगे।

सम्मान्य सज्जनो! देशके अँगरेजी पत्रोंके लिये यह कहकर मजाक उड़ाया करते हैं कि देशी भाषाके पत्रोंमें कुछ नहीं होता और हमारे दुर्भाग्य से बंगला मराठी गुजराती और तेलुगु भाषियोंकी अपेक्षा ऐसे लोगोंकी तादाद हमारे यहाँ अधिक है। जो लोग अँगरेजी पत्रोंकी महत्ताका स्वप्न देखते हैं वे यह नहीं जानते कि अँगरेजी पत्र अभी जनताके हाथों नहीं पहुँच पाते। जैसा कि माननीय बाबू गोविन्ददासने स्टेट कौंसिलमें हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनानेके प्रस्तावपर बोलते हुए कहा — देशमें फी सदी डेढ़ (१॥) आदमी अँगरेजी अक्षरोंसे परिचित हैं। अँगरेजी पत्र बजट, अर्थनीति, शास्त्रीय ज्ञान और भिन्न भिन्न बातोंकी चर्चा करते हैं, और कहा जाता है कि देशी भाषाके पत्रोंमें यह कुछ भी नहीं होता। अँगरेजी पत्रोंमें तार समाचार और देश-देशान्तरके संवाद रहते हैं देशी भाषाके पत्रोंमें नहीं होते। इसके सिवा अँगरेजी भाषाके पत्र हिन्दी भाषाके पत्रोंसे दोगुन खबर लेकर आते हैं। देशी भाषाके पत्र ऊँचे विषयोंकी चर्चा किनसे करें? अँगरेजीका ज्ञाता जापानी चीनी तुर्क और आयरिश अपने देशकी भाषामें संवाद-पत्र पढ़नेके आदी होते हैं और हमारे पत्रोंके अँगरेजीके पाठक नहीं होते। हमें तो ऐसे पाठकोंसे बरतना पड़ता है जो देशके शासन द्वारा पढ़े-लिखे नहीं होने दिये जाते और जो केवल अपना नाम-भर लिखना-पढ़ना जानते हैं। ऐसी दशामें हम देशकी गरीब जनताके हितका साहित्य दें या देशके लोक-दर्शक सज्जनोंको सन्तोष दें? जरा दृष्टि डालिए, तो अँगरेजी पत्रकारोंके लेखक द्वारा की हुई प्रतियाँ देते हैं तार समाचार अँगरेजीमें आते हैं बड़े-बड़े राजनीतिज्ञोंके भाषण अँगरेजी में होते हैं और डेमोक्रेटिक एक्जामिनर डाक शायर पोस्ट स्टेट्समैन तथा न्यूज़ स्वराज्य हिन्दू क्रॉनिकल सब अँगरेजीमें प्रकाशित होते हैं और अँगरेजी पत्रकारोंको पढ़कर थोड़ी-सी काट छाँट करने और एक-दो पंक्तियाँ जोड़नेके सिवा कुछ नहीं करना होता। देशी भाषाके पत्रकी महान् कठिनाई है तारों और समाचार-पत्रोंके समाचारोंका अनुवाद करना

जो मौलिक चिन्तनसे कहीं अधिक पैसा देनेवाला व्यापार हुआ है। इसके सिवा देशके कम पढ़े लोग अपने दुःख-दर्दोंको जिस भाषामें लिखते हैं वह पत्रोंमें छपने योग्य नहीं होती उसे सर्वथा नवीन और शुद्ध करके पत्रमें देना पड़ता है ऐसी अवस्था होनेके कारण थोड़े ही श्रमसे अधिक योग्य पत्र बनानेका अवसर अंगरेजी पत्रकारको होता है देशी भाषाके पत्रकारको नहीं। तो भी गरीबोंके दुःख-दर्दकी जो बातें देशी भाषाके समाचार पत्रोंमें देखनेको मिलती हैं अंगरेजीके समाचार-पत्रोंमें देखनेको सच्ची जनताका वैसा साहित्य देखनेको नहीं मिल सकता।

देशी भाषाके समाचार-पत्रोंमें जो घातक परम्परा देखनेमें आती है — वह है अंगरेजी पत्रोंकी नकलसे अधिक वृत्त समेटना। मैं यह बात तो मानता हूँ कि प्रत्येक सम्पादकका अंगरेजीका ज्ञान खूब उज्ज्वल होना चाहिए ताकि देशमें प्राप्त ज्ञानके द्वार उसके लिए खुले हुए रहें पर वह अपने ही साथी संवाद-पत्रोंको हेय दृष्टिसे न देखे। हमें देशी भाषाके समाचार-पत्रोंके अवतरण संवाद और सम्मतियाँ उद्धृत करनी चाहिए और जिन कामोंमें एक पत्र सिर खपा चुका है उसमें प्रत्येकको सिर न खपाकर, अपनी ओरसे कुछ-न-कुछ नया देना चाहिए, जिसका उपयोग देशी भाषाके अन्य पत्रोंमें हो सके और उनका श्रम और समय बचे। देशी भाषाके समाचार-पत्रोंको नगण्य समझनेकी परम्परा दोषपूर्ण है। तो भी हमें चाहिए कि हम अपनी परिस्थितियोंसे समझते हुए अपने समाचार-पत्रोंको ऐसा बना दें कि जिससे हमपर ज्ञानकी कमीका लांछन न रह जावे। हम जानते हैं इसमें श्रम अधिक लगेगा किन्तु यह काम इस देशमें हमी देशकी भाषाका शासन बढ़ानेके लिए करना ही होगा। समाचार-पत्रोंकी भाषा जनताकी भाषा होनी चाहिए। उसमें कठिन शब्दोंका प्रयोग उसी समय होना चाहिए, जब किसी वैज्ञानिक शब्दको अन्य भाषासे हम अपनी भाषा-में प्रकट कर रहे हों किन्तु अन्य बातोंमें समाचार-पत्रोंकी भाषामें न संस्कृतका बोझ आना चाहिए न फ़ारसीका दबाव वह साधारणतः साधा-

रल जनकी समझमें आनेवाली भाषा होनी चाहिए। यह सच है कि पत्र बाद हमारे मार्गकी एक भारी कठिनाई है। देशके शासनकी रचना ऐसी है कि देशकी वृद्धिके साथ-साथ शिक्षा व्यवसाय कृषि राज-सभा स्थानीय स्वराज्य और सरकारी नौकरीके स्थानोंमें धनिक ही अधिक बढ़ सकेंगे, किन्तु इस कृत्रिमताके खिलाफ एक संसारव्यापी आन्दोलन चल रहा है। यह देखते हुए भी कि धनिक अपने धनसे बड़े-बड़े स्वतन्त्रताकी डींग हाँकनेवालोंको खरीद लेते हैं हमें हरगिज निराश नहीं होना चाहिए और यह करना चाहिए कि चरित्रशील लेखनियों और उज्ज्वल और प्रजाहितकारी भावोंकी ही वृद्धि हो। अभी भी हिन्दी संसारमें दुनियाकी उस धन सत्ताधारियोंकी भले ही अधिक हो जिन्हें अपने विज्ञापन व्यापार और प्रभाव बढ़ानेके नाते धनिकोंका निश्चिन्त छत्रछायामें रहना पड़ता है *किन्तु आज भी हिन्दी केसरी कर्मयोगी प्रताप दैनिक और स्वदेश* जैसे साप्ताहिकोंका देशकी स्मृतिपर गहरा प्रभाव है। हितवार्ता का नाम भी इन्हीं पत्रोंकी श्रेणीमें आता है। इनमें 'प्रताप' की तपस्या बड़ी और उसकी स्थिति स्थायी हो गयी है। इसमें सन्देह नहीं कि जो लोग पत्र कार्यालयोंमें काम कर रहे हैं उनकी सेवाओंका काफी मूल्य है तो भी यह हिन्दीका दुर्भाग्य है कि लाला लाजपत राय जी पं० मदनमोहन मालवीय बाबू काशीप्रसादजी जायसवाल बाबू श्रीप्रकाशजी बाबू राजेन्द्रप्रसादजी भाई परमानन्दजी आदि सज्जनोंने हिन्दी पत्र-सम्पादनसे दूर होकर हिन्दी पत्रकारोंकी श्रेणीको गरीब बना दिया। ये सज्जन ऐसी कड़ियाँ हैं जिनका सम्बन्ध भारत व्यापी राष्ट्रीय जीवन और प्रभावसे है। ऐसे सज्जनों के साहित्यकी प्रत्यक्ष सेवा छोड़ देनेसे हिन्दी समाचार-पत्रोंकी प्रतिष्ठाको हानि पहुँची है। मुझे इस बातका पूर्ण पता नहीं कि भारतके कौन-कौन पत्रकार देशसे बाहर सेवा कर रहे हैं। विदेशोंमें रह आनेवाले मित्र सज्जनोंका मैं ऊपर उल्लेख कर चुका हूँ उनके सिवा प्रसिद्ध लेखक सेन्ट निहाल सिंह और श्रीयुत चमनलाल ही नाम मुझे याद आता है। हिन्दी-

मासिकोंके या हिन्दी पत्रकारोंके गौरवको बाहरी देशोंमें बढ़ानेवालोंके नामोंमें मुझे गर्वपूर्वक एक तो सहृदय पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदीका नाम लेना चाहिए, और दूसरा नाम 'हिन्दीके उत्साही और कर्मयोग' सम्पादक दरभंगा निवासी श्रीयुत भवानीदयालका उल्लेख करना चाहिए।

सज्जनो! जिन वृद्ध सज्जनोंने आजसे दो-तीन दस पूर्व इस क्षेत्रमें नयी पीढ़ीको पुकार की थी उनमें बाबू बालमुकुन्द गुप्त, स्वर्गीय पं० राधाचरण गोस्वामी स्वर्गीय श्रीराधाकृष्ण दास पूज्यवर स्व० पण्डित माधवरावजी सप्रे आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी और पण्डित अम्बिका-प्रसादजी वाजपेयी आदि हैं। आजके हिन्दी भाषाके युगको पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी-द्वारा निर्मित तथा लेखको पं० माधवरावजी सप्रे द्वारा निर्मित कहना चाहिए। यों सभाएँ सब सज्जनोंने की हैं किन्तु सम्पादकीय व्यवस्था विचार-प्रवाह और भाषा-शैलीके रूपमें वर्तमान युगको द्विवेदीजी और सप्रेजीका ही युग कहना होगा।

सज्जनो! इसके पश्चात् जबसे राष्ट्रके तेजस्वी भावोंका युग शुरू हुआ और निर्भीक भाषा-शैली और विचार-परम्पराका प्रवाह हिन्दीमें बहा तब बहुतोंको खयाल था कि कर्मयोगी की शैली युग-निर्माणका काम करेगी किन्तु वह पत्र अधिक दिनों तक नहीं टिक सका। नागपुरके 'केसरी' के वीर-पथको कायम रखनेका श्रेय भाई पराड़करजीकी लेखनीने किया अनेकों कष्टोंमें वे हिन्दी-द्वारा सामयिक जगत्के पक्ष-पुष्टमें लगे ही रहे, अब हिन्दीको तेजस्वी भावनाओंके युगको धीमे-धीमे निर्माण करनेका श्रेय श्री० पराड़करजीको ही देना होगा। हिन्दी पत्रोंमें विशेषांक प्रकाशित करनेका श्रेय राजा महेन्द्रप्रतापको तथा उन सब सज्जनोंको है जिन्होंने सरस्वती माधुरी चाँद और मनोरमामें विशेषांक अपने ढंग निकाले। मासिक साहित्यमें 'प्रभा' के न रहनेसे तेजस्वी साहित्यको भारी हानि हुई। 'माधुरी' की आजकलकी हालत इस बातका सबूत है कि जहाँ साहित्य धनपतियोंके हाथमें होता है और सम्पादक अपने भावोंके

लिए स्वतन्त्र नहीं होता वहाँ साहित्यकी धारा एक-सी नहीं बह सकती। 'सरस्वती' अपने पूर्व पथपर है और वह उसे कायम रखे हुए है। 'मनोरमा' अच्छी रुचिसे प्रकाशित हो रही है, साहित्यकी भिन्न-भिन्न बातुओंपर प्रकाश डालनेका यत्न किया जाता है। बाल-साहित्यमें 'विद्यार्थी' का वह स्थान नहीं रहा। उससे परिपूर्ण उन्नतिकी आशा की गयी थी किन्तु वह थोड़ा बढ़कर ठहर गया। 'शिशु' में शिशु साहित्यकी स्वाभाविकता खूब आयी और लहेरिया सरायके 'बालक' ने तो बाल-साहित्यमें देशकी अन्य भाषाओंके सामने भी अपनी हिन्दीमें नाम लेनेकी चीज बना दिया। यद्यपि देशमें स्त्रियोंको मताधिकार मिल रहा है और स्त्रियोंपर देशकी जागृतिके साथ बढ़ती हुई जिम्मेवारियाँ आ रही हैं तो भी 'गृहलक्ष्मी' 'स्त्री-दर्पण' 'महिला-सुधार' तथा अन्य तत्सम्बन्धी पत्र पत्रिकाओंने अपने स्वरको युगके साथ परिवर्तित नहीं किया। इस विभागमें उत्तमतर पत्र 'चाँद' है। उसमें साहित्यिक रुचि है, शैली है और सबसे अधिक समयके सन्देशको पहुँचानेका सामर्थ्य है। इस विभागमें नाम लेने लायक स्त्री सम्पादित पत्र है — 'ज्योति'। हिन्दीके दैनिकोंमें श्रीयुत पराड़करजी द्वारा सम्पादित 'आज' का आसन उच्च है। बाबू शिवप्रसादजी गुप्तने हिन्दीको भेंटकर सामयिक साहित्य देनेमें बड़ा धन व्यय किया और वह उठाया है। 'हिन्दू संसार' का सम्पादन उच्च रुचि और जिम्मेवारीका पूर्ण विचार रखकर किया जाता है, उसमें दलबन्दीको राष्ट्रीय भावना पर राज्य नहीं करने दिया जाता। 'स्वतन्त्र' की विशेषता उसके नेपाल-सम्बन्धी लेख हैं। इस विशेष विभागमें उसकी दृष्टि रहना हिन्दीके सामयिक साहित्यके नाते महत्त्वकी वस्तु है। 'अर्जुन' की विशेषता 'भारत' की खरी बातें और सुधारके लिए उसकी बुलन्द आवाज है। 'विश्वमित्र' और 'वर्तमान' देशकी राष्ट्रीयतामें अग्रगामी मतके पत्र रहे हैं जिस मतका ग्रहण करना कष्टसाध्य होता है और खतरेसे खाली नहीं होता। पुराने साप्ताहिकोंमें 'बंगवासी' अपना ढंग चला आ रहा है वह स्थायी सनातन-

वर्मी पत्र है। 'वैंकटेश्वर' का सम्पादन आजकल विश्वसनीय और दृढ़ हाथोंमें दीख पड़ता है किन्तु व्यापारी समुदाय-द्वारा संचालित पत्रोंमें राष्ट्रीय स्फूर्ति स्थायी नहीं रह पाती। आजका स्वरूप न जाने किस दिन बदल जावे। द्विदैनिक पत्रोंमें 'सुप' है जिसका अपना पत्र है हिन्दी जगत्की सभामें उसकी सच्चाईपर अविश्वास नहीं किया जा सकता।

देशी राज्योंमें काम करना बड़ी टेढ़ी खीर है। निरंकुश शासकोंके बीच काम करनेमें जिस धैर्य सहिष्णुता और साहसकी जरूरत होती है, उसे क़ायम रखते हुए श्रीयुत रामनारायणजी चौधरी और श्रीयुत शंकरलालजी वर्मा उस वीर योद्धाकी ध्वनिको गूँजती हुई रखे हुए हैं जो हिन्दीभाषियोंमें राष्ट्रीय पथिकके नामसे परिचित है। ग्वालियरका 'जयाजी प्रताप' ग्वालियर राज्यका पत्र है किन्तु स्वर्गीय माधव महाराजके जमानेसे अपनाकर आज तक श्रीयुत माथुर महाशय उस सरकारी पत्रको बड़े ही अच्छे ढंगसे चलाये लिये जा रहे हैं। 'भारत-वीर' का जिक्र अभी नहीं किया जा सकता अभी तो श्रीमान् भरतपुर नरेशके सुधारोंकी धूम है। यह देखना है कि जब महाराजका रुख बदलता तब पत्र कहाँतक राष्ट्रीय रहता या यों कहिए कि भरतपुर और राजपूतानेकी गरीब प्रजाकी सेवा कर सकता है।

देशके अन्य पत्रोंमें जिनकी सेवाएँ मूल्यवान् हो रही हैं वे हैं अल्मोड़ाकी 'शक्ति' और उसकी लगातार अपने क्षेत्रकी राष्ट्रीय सेवाएँ, बिहारके 'देश' और 'मज़दूर' आगराका 'आर्य-मित्र' आदि। 'प्रताप'के साथ जिन पत्रोंका उल्लेख होना चाहिए, उनमें 'सैनिक'की देशभक्ति और उसके सम्पादक श्रीयुत् श्रीकृष्णदत्त पालीवालका प्रयत्न हिन्दी भाषियोंके आदर करनेकी चीज है। 'अभ्युदय' की सेवा सतत जारी है, और जब स्वयं पं० कृष्णकान्तजी लिखते हैं तब इस पत्रकी अन्तर्राष्ट्रीय चर्चा विशेष अच्छी होती है। कृषि व्यापार कला और भिन्न-भिन्न धर्मोंके पत्रोंकी हिन्दीमें भारी कमी है। चित्रोंके पत्रोंमें अन्य मासिकोंके

साथ, पूनाके श्रीयुत वासुदेव रावजी जोशीके प्रयत्नोंके फलस्वरूप 'चित्रमय जगत्' का भी विशेष स्थान है।

इस समय जिस प्रान्तसे मैं जा रहा हूँ उसके अधिकांश जिलोंमें हिन्दी-भाषियोंकी बस्ती है, और ऐसा एक भी जिला नहीं जहाँ हिन्दी भाषा न समझी जा सकती हो। उस प्रान्तमें अँगरेजी भाषामें नाम लेनेको एक अँगरेजोंमें प्रान्तीय सरकारी गजट निकल रहा है और एक अर्ध-साप्ताहिक हितवाद निकल रहा है। इधर 'हितवाद'ने बहुत कुछ तरक्की की है, किन्तु उसका ढंग जनताकी आशिषमें सरी राजनीतिको साहसके साथ प्रकट करना नहीं है। इन दो पत्रोंको छोड़कर प्रायः उस सूबे भरमें हिन्दी और मराठी भाषाके पत्र प्रकाशित हो रहे हैं। मराठी भाषी पत्रोंमें नागपुरके महाराष्ट्रका दर्जा ऊँचा है, मेरी सम्मतिमें हृदय की उच्चतामें उसका स्वर मराठी केसरीसे भी कभी-कभी ऊँचा रहता है।

महाशयजी हिन्दी पत्रोंमें कुछ समय पहले उस प्रान्तमें प्रभा 'श्री शारदा' और 'हितकारिणी' प्रकाशित हो रही थीं किन्तु इस समय केवल 'हितकारिणी' ही किसी प्रकार चल रही है। सागरके समालोचक को *हिन्दीके सम्मान्य और पुराण पुरुष एवं सुलेखक सैयद अमीर अली मीरके* आशीर्वाद और सहायताका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। श्री मेरे देशभक्त तरुण मजहर अली जिस साहसके साथ हिन्दी-मुस्लिम समस्याओंपर अपने विचार समालोचक में प्रकट कर रहे हैं हिन्दी-जगत्में मुसलमान हिन्दी पत्रकारोंमें शायद वे अकेले ही होंगे। वे जातिगत पक्षपातको राष्ट्रीयतापर कभी हावी नहीं होने देते। नागपुरके उत्साही और देशभक्त श्रीयुत सवाईलालजी पुरोहितकी सेवाओंके स्वरूप हिन्दी अर्ध-साप्ताहिक 'प्रणवीर' ने हिन्दी-जगत्की अच्छी सेवा की है। यद्यपि प्रणवीरके मुख-पृष्ठपर वयोवृद्ध श्री राधामोहन गोकुलजीका नाम था, और वे कभी-कभी उस पत्रमें लिखते भी थे किन्तु उस पत्रको यशस्वी रूपसे चलानेका श्रेय श्रीयुत रामगोपाल-जी विद्यालंकार और श्रीयुत शिवनाथ माधव आपटेजीको ही है। वीर

पर भाई विजय सिंहजी 'पथिक' जब वर्धासे चले गये तब श्रीमान् सेठ जमनालालजीके आश्रय-प्राप्त वर्धाके 'राजस्थान केसरी' का संयुक्त सम्पादन श्री विद्यालंकार चलाते रहे। सत्यदेवजीने नागपुरसे हिन्दी साप्ताहिक 'मारवाड़ी' और अकोलासे नये हिन्दी मासिक 'राजस्थान'-द्वारा भी हिन्दीकी सेवा की। यद्यपि मैं उन धनिक सज्जनोंका कृतज्ञ हूँ जिनकी सहायतासे इस प्रदेशमें साहित्य-सेवा होती रही किन्तु मैं अपना यह कटु अनुभव निःसंकोच भावसे प्रकट करना चाहता हूँ कि धनिक मित्रोंके आश्रयमें सामयिक पत्रोंका जीवन सदैव दाताकी लहरपर निर्भर रहा और श्री धारका 'राजस्थान केसरी', 'राजस्थान' और 'मारवाड़ी'के इनमें धनिकोंकी वह लहर आयी और चली गयी। मध्य भारतके पत्रोंमें महात्मा गान्धीके हिन्दी 'नवजीवन'के सहृदय सम्पादक पं० हरिभाऊजी उपाध्यायने हमारे संघर्षोंमें सौभाग्यवश, 'मालवमयूर'में अपनी शक्तियाँ लगायीं। उसका सम्पादन बहुत अच्छा होता रहा है। अभी कुछ दिनोंसे श्रीयुत गोपीवल्लभजी उपाध्यायके सम्पादकत्वमें मालव विद्यापीठकी मुखपत्रिका 'विद्या' बड़े सुन्दर ढंगसे प्रकाशित हो रही है और यदि धनिक लहरने सम्पादनका मजाक न समझा तो विश्वास करना चाहिए कि यह पत्रिका हिन्दीमें अपना स्थान ढूँढ़नेका यत्न करेगी। यों तो हिन्दी केसरीके रूपमें मध्य प्रदेशमें सबसे पहले राष्ट्रीयताकी सम्भार गर्जना की थी। और राष्ट्रीय-सभाका सन् १९२०का निर्णय झण्डा सत्याग्रह और मध्य प्रान्तीय सरकारपर प्रभावशाली कामोंका असर, यह बात स्पष्ट करते प्रकट कर रहे हैं कि इस प्रान्तमें पुरानी जागृतिको, हिन्दीके सामयिक पत्रोंमें जिन्दा रखा है।

मध्यप्रदेशमें पत्रकारके नाते जिनकी शक्तियाँ कीर्तिमान रही हैं उनमें स्वर्गीय पण्डित रघुवरप्रसादजी द्विवेदी ठाकुर छेदीलालजी ठाकुर लक्ष्मण सिंह पण्डित नर्मदाप्रसाद मिश्र और पं० द्वारकाप्रसाद मिश्रके नाम उल्लेखनीय हैं। गोरखपुर समाचार-पत्रोंमें पं० गंगाप्रसादजी अग्निहोत्री

की धूम है और व्याकरण तथा शिक्षामें समाचार-पत्रोंके लेखक केवल पण्डित कामताप्रसाद गुरु हैं। शेष समाचार-पत्र-लेखकोंमें श्री पण्डित गोपाल दामोदर तामस्कर, श्रीयुत श्रीकृष्णप्रसाद श्रीवास्तव और श्रीयुत कुलदीप सहायका नाम लिया जा सकता है।

विनोद-साहित्यका प्राण है। यह विद्या हिन्दीमें नयी है, अतः इसे साधना भी श्रम-साध्य होता है। इस विषयमें 'मतवाला'का नाम सुरुचिकी दृष्टिसे प्रथम लिया जा सकता है यद्यपि उसकी रुचिसे लोग अधिकतर सहमत नहीं हो पाते। प्रकट साम्प्रदायिक पत्रोंमें श्री ईश्वरीप्रसादजीके सम्पादनमें 'हिन्दू पञ्च' अच्छी सफलता प्राप्त कर रहा है। पत्रोंको खोजनेवाली सूझ सदैव श्री नरदत्तजी शास्त्रीके 'शंकर'में देखनेको मिलती है। 'सेवा' वाल्मीकियोंका सुन्दर मासिक है। उसका सम्पादन अभी कुछ दिनों तक बड़े अच्छे ढंगसे होता रहा। मेरा विशेष ध्यान जाता है, पं० हृषीकेश शर्मा-द्वारा सम्पादित मद्रास प्रान्तके उस हिन्दी प्रचारक मासिककी ओर, जिसकी सेवाएँ, भारतके हृदय मिलाने तथा हिन्दी भाषाको राष्ट्रव्यापी बनानेके लिए हैं।

सचमुच भारतीय भाषा-समुद्रमें इन प्रचारकोंकी भुजाएँ ईसाइयोंके मल्लाहोंसे कम कीमतकी नहीं गिनी जा सकती। धार्मिक पत्रोंमें समन्वयका दम गनीमत है किन्तु मद्रास प्रान्तसे श्रीयुत रामचन्द्रजी शुक्लके सम्पादकत्वमें 'शुभ संदेश' जो सेवा कर रहा है वह कम मूल्यकी नहीं। मैं रिलिजन-पोलिटिकल ढंगसे काम करनेवाले पत्रोंकी उपयोगितामें 'भारत धर्म' साप्ताहिक और 'भारत मित्र' दैनिकका उल्लेख होना जरूरी है। शिक्षकोंके विषयमें मैं ग़रीब अध्यापकोंके मुखपत्र 'अध्यापक'की उपायोंकी कद्र करता हूँ। भिन्न-भिन्न विषयोंके पत्रोंमें प्रयागके मासिक 'विज्ञान'की सेवाएँ मूल्यवान् हैं। वैद्यकमें कई उपयोगी पत्र प्रकाशित हो रहे हैं जिनमें श्री किशोरीदत्तजी शास्त्रीका 'चिकित्सक' और 'धन्वन्तरि' उल्लेखनीय हैं। प्रोफेसर चतुरसेनजी शास्त्री 'संजीवन' लेकर आगे बढ़े थे

किन्तु उस अच्छे पत्रके पैर न जमे। बंगलाके पत्रोंका उल्लेख करते हुए यह कहना पड़ेगा कि आजसे तेरह-चौदह वर्ष पूर्व पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्लके सम्पादकत्वमें 'सुधानिधि' शोभाके साथ निकल रहा था, वैसे पत्रकी हिन्दीमें बड़ी आवश्यकता है। हिन्दी पत्रोंकी रुचि अब विशेषांकों-के रूपमें आगे बढ़ रही है। 'चाँद' और 'मनोरमा'-जैसे मासिकोंके तो वर्षमें अनेक विशेषांक निकल जाते हैं। विश्वास होता है कि यदि हिन्दी जनताने साथ दिया तो इन पत्रोंके विशेषांकोंका स्वरूप ही इनका स्थायी स्वरूप होगा। तो भी यह कहना पड़ेगा कि चटक-मटकके सिवा उच्च-रुचि मौलिकता, कला और सम्पादकीय कौशलके दर्शन हमें अभी अपने पत्रोंमें बहुत कम हो पाते हैं।

इधर गत बारह-तेरह वर्षोंसे समाचार-पत्रोंमें कविताएँ देनेकी चाल चल पड़ी है, और यह दुःखके साथ देखा जाता है कि राष्ट्र भक्तिके नामपर खून, फाँसी और कालापानीका जो नाम लिया जाता है, वे कविताएँ चाहे हिन्दी भाषियोंको खून, फाँसी और कालापानीकी सूरत न देखने दें किन्तु काव्यका जरूर खून कर रही हैं। तेजस्वी भावोंके लिखनेसे मतलब चमत्कारहीन और बिना कसक पहुँचका गद्य लिखना नहीं है। कविता न तो रसोंका ढेर लगाया करे, न भावों और कल्पनाओं ही का। उसमें राष्ट्रकी धमनियोंको पूर्णताकी ज्योति, प्रेमकी उन्मादकारिणी लहर और चरित्रकी तपोपूत आत्मा होना चाहिए, कविताओंको सदा जिन्दा रहना चाहिए किन्तु वे समाचारोंसे पहले ही मर जाती हैं और प्रायः अधिकतर प्राणहीन होकर ही समाचार-पत्रोंमें आती हैं। प्रोत्साहनका प्रारम्भिक युग निकल गया, अब तो प्रत्यक्ष सेवाकी तपस्याका युग है, होना चाहिए और सन्देश ही किन्तु वह अमर स्फूर्तिदायी और काव्यमय होना चाहिए, छायावाद हो परन्तु अस्पष्टताकी ओटमें बे-समझीको [illegible] न हो, नियमोंकी तोड़-फोड़ चाहिए, यथासाध्य आपके लिए अलग नियम बनानेमें खूब निरंकुश हो जाइए, किन्तु वाणी और अर्थको तो अछूता

रहने दीजिए, सब विधाओंके बन्धन टूट जाने दीजिए, किन्तु काव्यकी प्रथम काव्य-धारासे आनेकी आशा ही न हार छोड़कर न रख दीजिए। यह उनके लिए है जो मुक्ति नये युगके सन्देश-वाहक हैं जो नहीं लिखते जो केवल नवीनताकी पुष्टि करनेवाले तत्त्वोंकी आलोचना करते हैं या जनता देवताओंको अपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं सामयिक पत्रकि नाते उनसे क्या कहा जाय ? उनसे यही निवेदन है कि अपने युगकी समाप्तिके साथ आप आशीर्वाद दीजिए। चाहे वह आपकी कड़वी आलोचनाओंके रूपमें हो तरुण अपने जमानेका निर्माण अवश्य करेंगे क्या निर्माणमें प्रवृत्तियों का कोई स्थान नहीं ?

सम्पादन भाई बनारसीदासजी आदि सज्जन कहीं मुझे अपराधी न कहें, किन्तु कितना-सा हमारा 'जर्नलिज्म' है ? कहाँ है हमारे पास वह जो हमारी जन-संख्याके औसतसे अपना असर दिखा सके हमारे दैनिक हैं पर उनके पास न रिपोर्टर हैं न हमारे कार्यालयमें साहित्य है, न हमारा कमरा विश्वके आनेवाले विद्युत्-सन्देशों वायु-सन्देशों और अन्य सन्देशोंका आगार ही है। हम भले ही सिटीमें रहते हों परन्तु हमें सिटी-एडीटरकी जरूरत नहीं मैनेजिंग-एडीटर भी केवल नाम लेने भरकी चीज है, हमारा वह विस्तार कहाँ जिसमें कैम-वेम-सम्पादक, व्यापार सम्पादक समुद्र-सम्पादक शिक्षण और खेल-सम्पादक साहित्य-सम्पादक नाटक और संगीत-सम्पादक और आलोचक हों ? मैं आपसे पूछता हूँ हिन्दीमें हमारे इतने शक्तिशाली होनेका दिन कब आयेगा ? देशमें अंगरेजीका ज्ञान जरूरी नहीं किन्तु पत्र-सम्पादनमें हम अंगरेजीसे और तुलना नहीं कर सकते।

यह सम्पादन-कलाकी सैकड़ों भाषा है इसके सँभालनेका ज्ञान और विस्तारकी सूचना अंगरेजी ही है उसकी कार्यालयमें उसके जाननेवालोंको बड़ी रुचि रहनी चाहिए, अमेरिका छपाई व्यापारमें छठवाँ नम्बर रखता है, भारतमें हम अभी चौथे ही बाद रहे हैं हमारी

वैयक्तिक ग्रंथ-मालामें हमने आपके उपयुक्त सुधार नहीं किये। अँगरेजी पत्र कहता है 'मानमें मेरी समता कर? क्या हम इस चुनौतीका जवाब न देंगे? क्या हम अपने पाठकोंको यह कहने देंगे — भाई मैं इन बातोंको क्या मानूँ? मैंने अँगरेजी नहीं पढ़ी। विज्ञापनोंके अस्तित्वके विषयमें पत्रोंमें बहुधा विवाद न हो। उपदेश उदाहरणके सहारे मुखपर भी नहीं ठहरता हाँ नीतिका ख्याल रखिए, रुचियोंकी उच्चतापर ध्यान रखिए। विश्वास कीजिए अँगरेजीके शराबके विज्ञापनोंसे हिन्दी पत्र आज भी बचते हैं केवल दवाओं आदिके विज्ञापन मात्र हटाना एक न निभनेवाली प्रतिज्ञा है।

जगत्‌की भीतरके वादों और एशियाकी आवश्यकताओं और ज़िम्मेदारियोंको देखिए इस हलचलमें हिन्दीके पत्रोंका कौन-सा स्थान होगा? क्या अँगरेजी पत्रोंकी नकल करना धारा-सभाओं असेम्बली स्टेट कौंसिल नरेन्द्र-मण्डल स्वदेशी और विदेशी हलचलमें कहीं भी हमारे आदमी नहीं। कबतक? कठोर घटना-स्थलों, लड़ाईके मैदानों और राजकर्ताओंके गुप्त षड्यन्त्रोंकी खोज हमारे तरुण किस दिन आरम्भ करेंगे? किस दिन हमारा कोई तरुण चार कपड़ों बहुत थोड़ा जरूरतकी वस्तुओं और केवल एक सिपाहीकी तरह थोड़ा-सा धन लेकर, लड़ाईके समाचारोंकी जोखिम-भरी ज़िम्मेवारी अपने सिरपर लेकर किसी हिन्दी पत्रके कार्यालयसे विदा होगा? किस दिन हमारे पत्रकार राजशासनको ऐसा भूल जायेंगे कि देशकी ताकत देशवासियोंके हाथोंमें होगी और हमारे पत्रकार युद्धस्थलोंमें जाकर टेलीफोन तार और बेतारके तारका उपयोग कर, भारतमें सन्देश भेज सकेंगे? क्या ये सब गुलामके स्वप्न हैं? अब १२४ ए, १५३ ए और अन्य छोटी-मोटी धाराओंसे ऊब गये। किस दिन घोड़ेके सवारकी तरह तैयार चुस्त सामन्तोंकी तरह फुर्तीले, और अपने पर्वतोंकी तरह भूख-प्यास बर्दाश्त करनेमें पक्के होकर हमारे तरुण विदेशोंमें खबरें लाने जायेंगे और किस दिन उनकी भेजी हुई खबरोंके

अक्सर राजकर्मचारी हमारे कार्यालयोंमें पूछताछ करेंगे और तलाशियाँ लेंगे ? जापान अमेरिका इंग्लैण्डकी कहानियाँ पढ़ लीं। किस दिन हिन्दी पत्र अपने पत्रोंके कार्यालयोंसे देशके शासक मिलवा सकेंगे किस दिन कहा जायेगा कि अमुक रण-क्षेत्रका लड़ाका अमुकवार्ता सभाका सभापति अमुक वैदेशिक मन्त्री हिन्दी उप-सम्पादक था किस दिन हमारे तरुण युद्धस्थानमें लड़ाईके कप्तानोंसे सुनेंगे अच्छा एडीटर साहब बिना इजाजत आप अमुक सीमासे बाहर नहीं जा सकते। अपने संवाद सांकेतिक भाषामें नहीं भेज सकते और तबतक संवाद नहीं भेज सकते जबतक मैं देख न लूँ, मैं आपके संवाद और अखबारकी खाक परवाह नहीं करता जबर जितना जरूरत समझूँगा काटे दूँगा जितना जरूरत समझूँगा रोक लूँगा। इसके बाद वह फिर गरजकर कहेगा तुम्हारे अखबारकी प्रति मेरे पास पहुँचनी चाहिए, मैं देखूँगा संवाद भेजनेमें कोई चालाकी तो नहीं की गयी आपके एडीटर-इन-चीफने उसके दीपक देनेमें तो कोई चालाकी नहीं की।

हमारा जवान-तरुण पूछेगा 'और आत्मसंयमका या सख्तीका दण्ड ?' और उत्तर पायेगा। सख्तीका दण्ड लाइसेन्सका छिन जाना और जरूरत होनेपर शत्रुपक्षके कैदियोंके साथ रहना आज्ञाके भंगका दण्ड 'कोर्टमार्शल' बड़ी गम्भीर परिस्थिति होगी जो हमारे तरुणों-द्वारा अपने पत्रके प्रभावको विचारणीय बना सकेगी। यही हमारे तरुणोंकी बुद्धिकी कसौटी होगी जब वह घरके साथियोंसे स्वदेशसे बहुत दूर कठोर अनुशासनमें रहकर चार-पाँच कलमकी महान् साधनाको जन्म देगा क्या यह कभी होगा ? यह सवाल मैं बूढ़ोंके आशीर्वादसे चाहता हूँ मित्रोंकी संयुक्त शक्तिसे चाहता हूँ और तरुणोंकी बलिदानकी भावनासे चाहता हूँ।

मैं कई जरूरी प्रश्नोंकी चर्चा न कर सका यह परिमित समयके साथ ही मेरी स्मृतिका मेरे आलस्यका अपराध है मुझे तो न बोलना पड़ता यहाँ अच्छा था बोलते हुए एक बात मनमें रह जाती है····

जानक की, कलम उठाने मे
आपको आग की कमाने म
या खामोशी बयान म अच्छी
बात जो दी ज़ुबाँ हिसाब मे।

प्रिंसीपल पत्रकार परिषद्
भरतपुर
१९८०



साहित्यके चिन्तककी लाचारी

साहित्यका चिन्तक तो प्रायः प्रतिभा और प्रार्थनाका सम्मिलित नाम है। केवल कल्पनाकी भावना प्राणोंका निर्माण नहीं कर पाती केवल प्राणोंका अस्तित्व पुरुषार्थका दम्भ-सा लगने लगता है और केवल सूर्योंका कौशल पुरुषार्थके बल और 'मानव नहीं हूँ' रहीके ठीकसे बिना कुछ नया कहनेका यह पुराना लालच है जो मानव प्राणके आदिसे उसके हाथ पड़ गया है और सूक्ष्म गाम्भीर्यके अभावमें कल्पनाशीलके विभावसे आपामी सिलौनों-जैसी नयी चीजें पैदा करने लगता है। इसीलिए चिन्तक समय स्वरूप और सुमन्त्रिको विचारा भेदकर ही अपनी बात कहने निकल पाता है। परिस्थिति स्फूर्ति और संकल्प जब तीनों एक दूसरेसे मिल उठते हैं तब उनकी रगड़से नये विचार पैदा होने लगते हैं। उस समय विचार मानो लाचार हो उठते हैं कोई उन्हें बाधा दान कर सकता। उस समयके विचार भी विकारकी तरह इतने चापल और बेबस हो उठते हैं कि वाणीपर उतरनेके लिए भाषाकी गठरी नहीं ढूँढते केवल बिम्बोंको ही नहीं टटोलते वे ऐसे सम्बन्धोंकी कलमों और आधारोंपर उतरते हैं जो परिस्थितियोंके वेग और उनके नियन्त्रक आवेगको सँभाल लें।

दुनिया तो अपनी समस्त अच्छाइयोंके साथ एक सूखा हुआ जंगल है उपयोगिताके अहमासोंसे दबा हुआ। सूखे जंगलमें कभी-कभी एक हरी बेल एक तरफ बाँसपर दूसरी तरफ बबूलपर तीसरी तरफ टेसूपर और भिन्न-भिन्न वृक्षोंपर चढ़ती है। अनेक वृक्ष हरे दीखने लगते हैं। भिन्न स्वभावके वृक्षोंमें एक-से पत्ते लगे देखकर जंगलमें अचम्भा होता है किन्तु सूखे हुए मानवके वीरान जंगलमें इसीकी प्रतीक्षा करते हैं। भिन्न

स्वभावके लोगोंपर प्रतिभा एक अजाम उतरती है और अलगुआ-सा मन-होनापन लेकर जीवनको इतना हरा कर देती है मानो सारे रसको अनुकूल और प्रतिकूल स्वभावके लोगोंमें बराबर बाँट दी गयी हो।

भावनाके चिन्तनशील जब रस-मननमें लगे होते हैं तब योजनाके मननशील भी अपनी कुशलतासे कमी नहीं करते हैं। वे सोचते हैं कि साहित्यके निर्माणमें भावनाकी आवश्यकता नहीं है योजना ही से सब-कुछ हो जायगा। भावनाके प्रतिकूल योजनाका यह संकट चिन्तककी सबसे बड़ी कठिनाई है। योजनामें विचार नहीं आते भावनामें मूर्त नहीं उतरती यह बात नहीं है। किन्तु योजना ही में मूर्त उतरती है यह बात भी नहीं। भावनावादीने कहा 'द्रौपदी पाँच पाण्डवोंकी पत्नी थी।' उसने महाभारतकी उस कठिनाईको हृदयकी आँखोंसे देखा। योजनावादी कहता वह तो गान्धार देशकी हो ही नहीं सकती। जरूर तिब्बतसे आयी होगी। क्योंकि आज भी तिब्बतमें एक स्त्रीके अनेक पति होते हैं।

साहित्यिक इतिहाससे प्रेरणा लेता है किन्तु इतिहास लिखता नहीं। इतिहास वह चिन्तनशील लिखता है जो खण्डहरोंके पत्थरोंको पढ़ता है, शीलालेखोंमें नापा-जोखी करता है, समयके एक बिन्दुसे दूसरे बिन्दुकी दूरी देखता है और मानव जीवन और मानवज्ञानका समुचित सामंजस्य स्थापित कर पाता है। कलाका चिन्तक सीतापर भी लिखता है और राम पर भी कैकेयीपर भी और भरतपर भी। वह किस वस्तुपर नहीं लिख सकता? यदि फूलोंपर लिखे गये किसी काव्य-ग्रन्थका नाम सुनकर किसी बगीचेका माली किसी कविकी पुस्तक खरीद ले तो माली शान्त हो तो पछताकर रह जाये और अशान्त हो तो कविपर चार सौ बीसका दावा दायर कर दे कि उसने अपनी पुस्तकमें न फूलोंकी जातियाँ लिखीं न न कैसी जमीनमें लगती हैं यह लिखा। न भिन्न-भिन्न फूलोंके मौसम बताये न खाद बताया। अतः माली बेचारा दो रुपये दस आनेसे ठगा गया।

कलाका चिन्तक समाजसे इतिहाससे प्रायः तीन चीजें लिया करता है — कथानकोंसे प्रेरणा, नामोंसे प्रतीक और अपनी परिस्थितियोंसे परिणाम। अतः जब कलाका चिन्तक कुछ लिखे तब इतिहासके गौरव-गानका यश उसे भले ही दीजिए किन्तु यह स्पष्ट मानकर चलिए कि कलाका चिन्तक इतिहास नहीं लिखा करता।

कलाकार चिन्तक जब कुछ लिखता है तब उसे यह डर लगने लगता है कि मानो कलाकी रचना करके उसने कोई अपराध किया है और उसे लोगोंके सामने नहीं रखना चाहिए। चिन्तककी यह कठिनाई क्यों है आप जानते हैं? यही वह जगह है जहाँ सृष्टिके समस्त निर्माता अकेले हुआ करते हैं। जगत् भले ही नामकरण संस्कार करे और परिवार उत्सव मनाये किन्तु माता सर्दी-गर्मीसे ही नहीं नजर और छूतसे भी अपनी रचना छुपाया करती है। आत्म-विज्ञापनके इस प्रतिभाहीन युगमें आत्मसंकीर्तनके दास कलाके चिन्तकके इस संकोचको इस मौनको अयोग्यताका नाम दिया करते हैं मानो योग्यता और बेशर्मी एक ही सिक्केकी दो बाजुएँ हैं। जिस तरह वृक्ष सूर्य किरणोंसे रंग और वायुसे प्राण लेकर भी जमीनसे रस खींचा करता है उसी तरह चिन्तक आसमान-व्याप्त प्रकाश देकर भी जमीनकी खाकोंमें खोया करता है मानो पुष्प और फल उसके काव्य हैं और जमीनका रस उसकी भाषा-टीका। जिस तरह ईसामसीह अस्तबलमें पैदा हुए और कृष्ण कारागारमें उसी प्रकार चिन्तककी रचनाके लिए नन्दन कानन ढूँढनेकी जरूरत नहीं हुआ करती। किन्तु लोग तो हैं उन्हें पहाड़का चित्र बड़ा प्यारा लगता है। किन्तु प्रत्यक्ष पहाड़की चढ़ाईको देखकर उससे अरुचि और विरक्ति हुए बिना नहीं रहता। छायालोकका यह पलायन हमारी शहराती पीढ़ियोंमें बड़े वेगसे आ गया है। कभी संस्कृति कभी इतिहास और कभी रक्षक नामपर कोमलताके कायल होते हुए हम मानो प्रत्यक्षकी प्रखरताका सामना ही नहीं करना चाहते। तब तो किसी चिन्तकको यही बात कहनी पड़ती है

कि 'मनुष्यके हाथ नहीं' इसलिए उन्होंने अपने पैगम्बरों और अवतारोंकी मूरत मनुष्यकी बना ली। यदि मनुष्यकी तरह गधेका विकास हुआ होता तो उसने अपने आराध्यके रूपमें सुन्दर गधा ही आंका होता। प्रखरता और कोमलता चिन्तककी रचनाके दो सिरे हैं और चिन्तकका आकलन उन दोनों सिरोंको मिलाकर सुदृढ़ गांठ बांधता है। जब वृक्षोंपर बीमारों-पर और शवोंपर शल्यक्रिया करके ही उनके रगों और अस्थियोंको पहिचान लिया जा सकता है तब चिन्तककी आलोचनासे क्षुब्ध क्यों न होना। किन्तु यदि किसी माताके दरवाजेपर प्रसवके दिन ही बलात्कार बैठा दिया जाये, तो कैसा हो। अब स्वस्थ सकुशल रचना जिसमें घूमने लगी तभी आलोचना खोजती है। चिन्तक द्रष्टाके निर्माणमें लगे हुए सत्य पर किए जानेवाले आक्रमण सयानी आनेवाली वह आग है जिससे बातकी बातमें लहलहाते हुए फलदार पौधे नष्ट किये जा सकते हैं। अतः चिन्तक साहित्यकी सूक्ष्मों उसके संकल्पों और उसकी युग-निर्माणकारिणी प्रवृत्तियोंकी कठिनाइयोंको समाजमें यदि हम खोज किया करें तो मौलिक चिन्तकोंका आना हमारे बाद अभिशाप न होकर वरदान बन सकता है।

धापरापाटी, नागपुर



समयके सिरपर तेरा वन्दन अभिनन्दन

आपने मुझे अपनी साहित्य-संस्था सुहृद् संघके नये वार्षिकोत्सवका अध्यक्ष चुनकर जो कृपा दिखायी है उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मेरी सबसे बड़ी शिकायत आपकी संस्थासे यह है कि किसी साहित्यिक संस्थाका प्रायुली उठानेवाले नहीं रखना चाहिए। आपकी संस्थाके प्रधान मन्त्री श्रीयुत मोहेश्वरजीने मुझे इतना तंग किया कि मुझे मुजफ्फरपुर आना पड़ा और भाषण भी लिखना पड़ा और यह दो वर्ष एक ही साथ मनचाही नहीं। आपकी संस्थामें बातचीत करनेके समय साहित्यपर मैं क्या कहूँ समझमें नहीं आता तो भी कहना तो कुछ होगा ही।

आपने कभी सोचा है कि हिन्दीके ग्रन्थोंके एक हजारसे अधिकके संस्करण क्यों नहीं हो पाते। सच यह है कि जो कुछ हम लिखते हैं उसके लिखनेमें ही हमें इतना सन्तोष हो जाता है कि हम इस बातको देखते ही नहीं कि जिनके लिए हमने उसको लिखा था उनके पास वह पहुँचा या नहीं। जिन्हें केवल भाषाहीके साथ लिखना है वे भूमिका मात्र ही क्यों बढ़ाये हुए हैं। वे तो मानो भूमिपर रहकर भी स्वर्गवासी हैं और उन्हें साहित्यकी गतिसे नहीं अपनी कृतिसे ही सन्तोष हो जाता है। लोक जीवनकी समझमें न आ सकनेवाली भाषामें आनेवाला सन्तोष सन्तोष है या रचना। यदि सन्तोष ही उद्देश्य है तो पुण्यात्माओंको फिर भीतमें भी सन्तोष प्राप्त हो सकता है।

युद्ध हो रहा है। राजनीतिज्ञ अनेक वायदोंको लेकर नया जग बसानेकी बात सोच रहा है। पुराना जग टूट न जाये इसलिए नये जगका झूठा प्रलोभन देकर वह विश्वको बहकाना चाहता है। हर लड़ाईके बाद

गया बम बनानेवाले अपने मुनीमों-द्वारा अपनी राष्ट्ररूपी दुकानकी साख कमन्दपर जमाये रखनेका प्रयत्न करते रहे हैं। इस बदौलत व्यवस्थाको बीमारीके कीड़ेकी तरह विचार फैलानेवालोंके प्रधान एजेण्ट हुआ करते हैं हम साहित्यिक। राजनीतिज्ञोंके प्रभावोंसे पराजित हम अपने रोटी दाताओंके सामने पाठोंकी पुस्तक बनाकर बेचनेका रोजगार करने लगते हैं। पृथ्वीपर घूमते हुए पीछे और भटकते हुए भविष्यपर अपनी स्वार्थकी दृष्टि न रखकर यदि साहित्यिक राजनीतिके ही हाथमें बँधे तो विश्वको विचारदान देनवाले साहित्यकी उपादेयताको हमें दूरबीन लेकर खोजना पड़ेगा।

साहित्यमें कभी निकटसे और कभी दूरसे दो ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। एक स्वर है मैं कभी न बदलूँगा मैं परिवर्तन पसन्द नहीं करता दूसरी आवाज है, 'मैं क्षणिकताकी रमणीयताका अवतार हूँ मैं क्षण-क्षण बदलूँगा। क्षण-क्षण बदलनेवाली दुनियाका लेखा-जोखा रखकर मानव सभ्यताके विकासमें पत्रकार कलाको जन्म दिया। समयसे बँधी हुई सूचनाओं व्यक्तियों घटनाओं और समयसे न बाँधे जानेवाले सत्यकी तरह हमने विश्वकी घटनाओं, वस्तुओं व्यक्तियों संस्थाओं समाजों और संसारके गुप्त और प्रकट भेदोंको मनोविज्ञानसे तौलकर तथा सन्निकट स्वार्थ और सुदूर उपादेयताकी राजनीतिक धारणाओंसे छानकर और मानव विकासके उत्थान-विनमनका स्वरूप उनमें भरकर विश्वको साहित्यके रूपमें प्रदान किया। किन्तु चाहे [illegible] क्षण-क्षण बदलनेवाला साहित्य लिखें या शीघ्र न बदलनेवाला हमें विश्वके और मानव-स्वभावके स्थायी सत्यको आँखसे ओझल नहीं करना होगा।

सत्याग्रह और आदर्शको हमने कहीं दुराग्रह सम्प्रदाय और मूढ़ताकी सीमा तक जाने देने और स्वार्थ लेनेकी तरह दूर रखा और साहित्यकी हर पहुँचका हम आदर्शोंके हवाले करते गये। परिणामतः सत्यकी उपेक्षाका पाप हमपर बहुत बढ़ गया। अब उथल-पुथल होते हुए जगत्‌में

सत्यने ऐसी समस्याएँ हमारे सामने आगुन कर दी हैं कि हमें अपने आदर्शों-से यह कहना आवश्यक हो गया है कि वे आकाशके नक्षत्रोंकी तरह हमसे बहुत दूरीपर खड़े होनेके बजाय हमारी नित्यकी समस्याओंसे न घबड़ायें न मुँह मोड़ें।

सत्य हमसे कहता है, 'एक गरीब है जो भूखा जाता है एक अमीर है जो घूम रहा है। किन्तु सत्य 'यह ही नहीं कहता यह भी' कहता है। यह प्रेमके नामपर मक्खियोंको भिनकानेवाली दुर्गन्धित उन्मुक्तता जो हम ले रहे हैं वह किस गरीब और अमीरका झगड़ा है? वह स्पर्धा विवेक और ज्ञानके दोनों नम बन्द कर, सड़कपर खड़े कुत्तेकी तरह हमने अपनी ध्वनियासे जो आतंकपूरित और विकारमय कोलाहल उपस्थित कर दिया है और साहित्यके क्षेत्रमें गालियों और विकारोंके कुम्भीपाक निर्माण कर जो लुम्प पथ ग्रहण कर रखा है वह किस गरीबी और अमीरी का भेद है? इस क्षेत्रमें तो हम गरीब गरीब भी लड़ते हैं, गरीब अमीर भी लड़ते हैं और अमीर अमीर भी लड़ते हैं।

क्या कारण है कि सूर मीरा तुलसी कबीर—इन सन्तोंके गीत देश-के गाँवों तक पहुँच गये और कोटि मानव उन्हें गाकर मस्तक झुकाने लगे किन्तु हमारे आजके साहित्यिकके पूछे होने तक पड़ोसकी तहसील तक-के आदमी नहीं जानते कि 'यह भी कोई गायक है यह भी कोई कवि है। सत्य तो यह है कि विश्वके साहित्य विश्वके तीर्थ-स्थल और विश्वके ऐतिहासिक स्थानोंपर मानव धारणाओंकी जड़ जमी हुई है। और यह धारणाएँ अपना बहुत-सा अंश धार्मिक उदाहरणों व्यवस्थाओं उपदेशों और निर्णयोंसे ग्रहण करती आयी हैं। जिस तरह योरोपके साहित्यसे ईसाई धारणाएँ हटाना कठिन है वहाँ नास्तिकवादके रूपमें भी जिन लोगोंने चर्चाएँ की उनमें-से कितनी ही चर्चाओं और रचनाओंमें ऐसी योजनाओं ऐसे नामों ऐसी परम्पराओं ऐसे व्यवहारोंको शुभ बताया है जिन्हें आस्तिक ईसाई समाजने भी शुभ बताया था। उसी तरह पूर्वी एशियाके देशोंके

साहित्यमें-से कुछ धारणाएँ दूर नहीं की जा सकतीं और पश्चिम एशियामें कुस्तुन्तुनियासे करांची और उसके आगे तकके साहित्यमें-से मुस्लिम धारणाओंको धोकर नहीं फेंका जा सकता। पश्चिमके लेखक इसीलिए जब विश्व सत्य और विश्व धर्मोंकी आलोचना करते हैं तब वे यह कार्य समस्त धर्मोंकी धारणाओंसे ऊँचे उठकर नहीं करते। वे अपने धर्मकी धारणासे अपनी बुद्धिका माप बनाते हैं और उसी मापसे सब धर्मोंको मापकर अच्छाई या बुराईका निर्णय देते हैं। इसी प्रकार अन्य धर्मकी धारणाओंका प्रभाव होता है। यदि हमारे साहित्यमें भी हमारी सांस्कृतिक धारणाएँ स्पष्ट नहीं हैं तो वे बारीक दलीलोंके कारण थोड़ी देर स्थिर भले ही टिकवा लें किन्तु व मानव-मनपर अधिक दिनों तक नहीं ठहर सकतीं। हम नया जग नया जमाना बनाते समय धारणाओंमें भारी परिवर्तन किये बिना केवल बारीक दलीलोंके बलपर केवल उत्तेजना-भरे कभी तोलकी और कभी बेतोलकी दहाड़ोंके बलपर, साहित्यमें अनर्थ नहीं कर सकते और धारणाएँ बनानेमें तो हमें पवित्रताके बल बनकर अपनी ही हड्डियोंकी नींव पर नये युगकी दुनिया बसानी पड़ेगी। ब्रिटिश शासनने हमारे देशमें आकर पहले सुख-सुविधा और शासनकी उच्चताकी धारणाएँ बनायीं और अपने कोटि-कोटि प्रचारों और कार्योंसे उन धारणाओंको देशके कान-कोनेमें पहुँचा दिया। आज स्वतन्त्रताके विचार फैलानेवालेको उन्हीं धारणाओंसे लड़ना होता है। जो लोग देशमें नया युग लाना चाहते हैं उनमें-से चिन्तक उठें और जिनकी गति-विधिका अर्थदान करानेवाली नयी धारणाओंको जन्म दें तभी नयी विचारधारा देशकी जनताके द्वारा अपनायी जा सकती है।

साहित्यका भविष्य उसीके हाथमें होता है जिसके हाथमें देशका भविष्य होता है। देशकी स्थितिमें समाजकी मनोभावना-द्वारा बेचैनियों और आवश्यकताओंका जो स्वभाव-बन्धन होगा हमारे भावी साहित्यमें उसीका प्रतिबिम्ब दिखाई देगा। कभी नयी बात आयेगी कभी पुरानी बात

नया अर्थ लेकर आयेगी। कभी सत्यको सूक्ष्म भाषाके प्रकटीकरणका नया पथ लेकर आया करेगी और कभी उसी सूक्ष्मका वैभव रसोंकी तरंग-मालाओंपर हमारे सामने आयगा। यदि समाजकी उथल-पुथलको अवगत न कर सकनेवाली ध्वनि हमारी वाणीमें आये तो हम यह जाने रहें कि उसकी उम्र अधिक नहीं है। इसीलिए हम समाजके कोलाहलसे क्षण भर अलग रहकर सोचने और लिखनेका समय भले माँग लें किन्तु हम समाजसे दूर भागकर एकान्तका मरण खोजनेका नाटक न करें।

कुछ लोग कहते हैं कि साहित्यको अपने-आप चलने दिया जाये। साहित्यमें नृत्य भी रहे यह माना जा सकता है, किन्तु यह कैसे मानें कि नृत्य ही रहे। नृत्य कला तो है किन्तु गति नहीं यह सम्भव नहीं कि गतिशील समाज केवल नृत्य करनेके लिए छोड़ दिया जाये यानी उसे उद्देश्य रहित अपने-आप चलने दिया जाये। साहित्यको तो प्रकाश-स्तम्भ बनकर गतिदान करना ही होगा।

कभी-कभी बुद्धिके अनाचारवादको हम उनकी बलिष्ठतामें गम्भीर बनानेकी बात सोचते हैं। हम यह भूल जाते हैं कि हमने मन ही के खिलाफ यह शिकायत की थी कि उसने बुद्धिको अपने यहाँ 'रहन' रखकर उसे शान्तिशील नहीं बनने दिया।

जरा कविताको लीजिए। कविताका पहला काम कविकी समझ होना नहीं है कविता होना है एक अच्छी कविता होना है। ईंटोंका ढेर पत्थरोंका समूह और हमारे आस-पास सीमेन्टका कीचमकीच गीला हो जाना इन सबका एकत्रित नाम भवन-निर्माण नहीं। भवन-निर्माण इसका नाम भी नहीं है कि ईंट पत्थर और कोयले मनमाना ढंगसे टेढ़ा-मेढ़ा रखकर उसमें एक गुफा निकाल लें जो पहली ही वर्षाकी मार न सह सके। हम स्वयं उस गुफामें रहें और सारी पीढ़ीको उसमें आनेको आमन्त्रित करते रहें। हम अनेक सहस्राब्दियोंके मानव-विकासके अस्तित्व से इनकार नहीं कर सकते। हम अक्षरों शब्दों उपमाओं और सूत्रोंको

मनमाना ढंगसे उलट-पुलट रखकर साहित्य-विषयकी अपनी कठोर परायमों का और विचारात्मक क्षेत्रमें प्रकट होनेवाले अपने शीलाश्लीलेपनका न छुपा सकते हैं न उसे साहित्य ही कहला सकते हैं।

कविताको यदि हम उचित वर्णों उचित भावनाओं उचित स्वर मति उचित विन्यास और उचित पुरुषार्थमें नहीं बाँधते तो हम बोध हुए कवियोंकी मिथ्यापक सम्मुख अपनी पराजय स्वीकार करते हैं और नय युगकी धारणाओंके निर्णायक स्वर-परिचय न होनेके कारण उस तुकबन्दीके इस पदके स्वरूप बनते हैं कि

मैंने अपनी मौत अपनी आँखों देखी —

अथवा यह कि हमारा मरण संवत् १९९९ है, किन्तु वफनाये जान या दफन किये जानेका संवत् २०२० या २०४० होगा। हम इतने वर्षों मर्षित मृतक रहेंगे।

पीढ़ीमें हम लोगोंको यदि मान ही नहीं बन पायी तो भूली हुई याद की तरह हम कैसे याद आयेंगे। विज्ञापन बदलनेसे सत्य नहीं बदला जाता। किन्तु विज्ञापन बदलने से 'सत्य करम' से नहीं।

हमारा काव्य हमारी रचना स्वयं ही हमारी आलोचना है। हम युगके आलोचकोंके क्यों हाथ ताकते हैं कि वे हमें जिन्दा रखें? आलोचकोंपर युग लिखनेका उत्तरदायित्व है, पर वे हमें मनमाना लिखनेके लिए खरीदे हुए मुलाजिम नहीं हैं।

हम तो महफ़िली साहित्य लिखते हैं। चंदेन्द्र रियासती पैसावालोंको रिझाकर, उनकी रसोईपर मिलकती या सुधापर समर्पी इच्छाओंके वशीभूत जब उनकी तालियाँ सुन लेते हैं हम निहाल हो जाते हैं। तब हममें गाँवों और शहरोंमें एक साथ निवास करनेवाले भारतीय मानवके पास अपनी वाणी पहुँचानेकी इच्छा भी कब जागृत हो? और हो भी तो मरण-धारकी दिये गये उजागर दीपोंसे बढ़कर उसका मूल्य ही क्या है?

और अमीरोंसे घृणा करनेवाले [illegible] अमीरीका अनुकरण स्वयं का

करते हैं। अमीरोंके मार्गके कविने अपना कला-विलास ऐसी मनोभूमि पर किया था जहाँसे कुछ थोड़े-से आदमी उसे समझ लें। विचारोंकी बलिष्ठता और मनकी बलिष्ठताके कुछ ऐयाश-मादने उसे सरस मानवके पास नहीं जाने दिया। और आज हम जो लिखने लगे हैं, माना कि वह अमीरों और अमीरीको कोस-कोसकर लिखते हैं किन्तु लिखा वह ऐसी भाषामें है जो गरीब और साधारणकी समझमें न आ सके। तब समझमें न आनेके बाजारमें हममें और अमीरोंमें अन्तर कौन-सा रहा? हमने सोचा था कि अमीरके यौन-काव्यका प्रदीप तक न जाना ही अच्छा है। किन्तु यौन काव्य लिखनेमें हम तो नवाबोंको मात करने लगे। और हमारा क्रान्ति-काव्य भी इतना कठिन है कि जिसे क्रान्ति करनी है उसीके पास वह नहीं पहुँच पाता। हम तो आज भी बारीक-ख्यालोंके दोस्तोंके मनबहलावका साधन बनकर ही अपनी 'युग देवता'की उपाधि सार्थक कर लेनी पड़ती है।

साहित्यको यह भी पता है कि विश्वमें युद्ध हो रहा है? और चुम्बन और आलिंगनकी सौंध और उत्तेजनोंमें हमें यह भी याद है कि जिस समय हम तरुणी और वारुणीमें तल्लीन हैं उसी समय किसी भूमि-खण्डपर मानव, मानवकी श्वास-आकांक्षोंमें प्राण-दानके खेल खेल रहा है? कब युगमें बारूद व्याप्त है और रक्तका सरोवर लहरा रहा है, कब एक हुँकार और दूसरी चीत्कारपर युग-स्वर ठहरा हुआ है तब उस बारूद उस खून उस हुँकार उस चीत्कारसे खाली हमारी नवरसिनी वाणी-वनिता युग-वाणी कैसे बन गयी?

और यह भी क्या हमें याद है कि भारतके तीन तरफ समुद्र लहरा रहा है? यदि भारतके अतण्ड नरमुण्डोंके आचरणको आचरण साहित्य कहें तो हमारी साहित्य सगफ कभी भी साहित्य कहला सकेगी? जब कि उसमें तरंगोंका चीरते जहाजों बैठक तरंगोंकी मरजीपर डोलती नौकाके मल्लाहके और समुद्रकी तरंगोंके उत्थान और पतनके स्वर

सुनाई नहीं देते ।

चालीस करोड़ हम समाज हैं कि समूह हैं ? हमें पता है कि हमारे पड़ोसी तिब्बतमें कौन-सी बोली बोली जाती है और नेपालमें कौन-सी चीनमें कौन-सी और आस-पासके छोटे-मोटे देशोंमें कौन-सी ? हमारी पीढ़ी अँगरेज़ीके उच्चारण और शब्द-विन्यासमें हम कितने पटु हैं ? उस देशकी बोली हमें आती है जिस देशमें फैलनेका भारतीय मानवको अधिकार नहीं । और उन पड़ोसी देशोंकी सीमा जलवायु वासी और वैभवसे हम अपरिचित हैं जिनके साथ क़दम बढ़ाकर जीवनके स्वर मिला कर हम किसी दिन एशियाई साहित्यिक कहलानेका दम भर सकते हैं ।

बिहारसे पूर्वी एशियाका वैभव बहुत ही निकट है । यहाँसे बढ़ होकर अरब समुद्रसे लेकर उत्तर ध्रुव तक यदि हम साहित्यिक सपना देख सकें तो हम वह साहित्य देशको दे सकते हैं जिसकी उसे युद्धोत्तर कालमें बड़ी ही आवश्यकता पड़नेवाली है ।

जिनकी मूँछें अभी उगती आ रही हैं और जिनकी भुजाओंका पानी अभी मर नहीं गया व कविताके रसीले दुर्विपाक नरकम क्यूँ नज़र आ रहे हैं ? उनका क्षेत्र है फ़ौलादके इरादे लेकर एशियाके भिन्न-भिन्न देशोंमें चेतनामय सम्बन्धोंकी ओर क़दम बढ़ाना । और अपनी मानकी साधनासे विस्तृत और महान् एशियाको समझना और लौटकर इस देशको वह कोमल साहित्य देना जिसे पढ़कर वाल्मीकिकी सीता और व्यासके कृष्णकी तरह एक ऐसी पीढ़ी बनती जावे जो एशियाकी अमर पीढ़ी कहला सके ? जो महान् 'रसीला साहित्य' आप लिखते हैं उससे कहीं अच्छा नहीं दरम्यान नहीं निमक कहानियाँ लिखना सभी हैं । उनसे परा-जित होकर भी आपका रस पराजित नहीं होता ?

साहित्यके महामानव, समयके सिरपर सेहरा बन्धन और अभिनन्दन होते हैं और सिरपर मढ़ाते हुए हमारे भाइयोंमें वह स्मृति आते हैं कि जिसका मान और उपम-पुष्पकी ममता लेकर लोक-लोकसे तू आता और

पू सीटता नजर आये । साढ़े चार करोड़ अंग्रेजोंकी बोली विश्व भाषा
कहलाती है और १४ करोड़ोंकी हम मातृ भाषा तथा २२ करोड़ोंकी इस
राष्ट्रभाषाको बलीवपूजन कहा जाता है । इसलिए कि तुममें और मुझमें
यह दम नहीं है कि हम जिसमें अपनी वाणोंकी वाणी और अपने उसको
दम कहता है ।

कवि-सम्मेलन और अखिल साहित्यकी तालियों इधर उसासके रेल
किरायों और रखाव इन मद्दोंमें यथार्थ साहित्य इतना पकड़ा गया है
कि अन्य साहित्यिककी कीर्ति कोई सुनता ही नहीं । विवेकशील हिम्मत भी
अपन ग्रन्थोंकी रचनाएं चुपचाप कर रहे हैं मानो छुपाकर कोई अपराध
कर रहे हों और जिसके लिए जनताकी प्रशंसा और पुरस्कार पानेका
मानो उन्हें कोई हक न हो ।

फिर हम हैं राष्ट्रभाषाके हिमायत किन्तु राष्ट्रके प्रान्तोंकी भाषाओं
और उनके विद्वानोंसे न हमारी कोई पहचान न हमारा कोई सम्बन्ध ।
मानो हम वह कूप हैं जो अपन जीवनका सारा रस अपनी ही जड़ोंसे ले
लेन हमें सास्वाय भाषाओंकी वायुक सम्पर्ककी आवश्यकता ही नहीं होगी ।
यही कारण है कि मैथिली गुजरातकी राजस्थानी तथा अन्य जितनी
ही भाषाओंके कवि हमारी अकर्मण्यतापर बर्धमी पैदा हो गयी है । और
हम हैं कि चुप हैं । मानो उन भाषाओंके योग्यों और उनके साहित्योंके
प्रति की गयी अपनी उपेक्षाओंको या तो हम उचित समझ रहे हैं या इतने
असमर्थ हैं कि उनकी खाज-खबर नहीं ले सकते ।

जिसका मेरा रोजगार नहीं है लिखिक यदि मेरा स्वभाव नहीं है
गरज आपसे या ठण्डे पानीसे मैं तो प्रलय ही होता देखना चाहता हूँ । वह
प्रलय इससे उपार आये अंग्रेजोंके द्वारा भेजा जाये या हिन्दुस्तानके
धनिकोंके कारखानोंसे पढ़ा जाये यह कुछ भी मुझे स्वीकार नहीं ।
आपकी और केवल आपकी अंगुलियोंपर मेरा विश्वास है । इसलिए
अगर तो अथवा प्रलय किया जाये तो – वह सिर तो मेरा और आपका

विश्वासकी लाचारी

ही होना चाहिए। कौन कहता है कि हम कोटि-कोटि जनगण अपनी भाषाके 'मन्त्र' नहीं और हमारे सम्मिलनसे कोई पन्थ नहीं बनता, कोई पन्थ नहीं बनता।

गीता सफर भूमापर बङ्किमचन्द्र बन्दे बंगालमें दिए थे। हम तो है कि आज बंगालका भूखों मरना देख रहे हैं। हमारी उदासीनता क्या कह रही है? क्या मैं भाई कर्मयोगानन्द मुन्शीसे पूछूँ कि बंगालके भूखों मरते हुए भारतका साहित्य क्या अखण्ड भारतका क्रियात्मक उच्चारण कर रहा है? क्या हम साहित्यिकोंने कठिन और उपमामें न आनेवाली वाणियाँ छिपाकर देशकी समस्त भूख और जिज्ञासाको भी भूखों नहीं मार रखा है?

शासन १०० वर्षोंमें ११ की सदी पढ़े लिखे किये बाकी ८९ की सदी मूर्ख। पर हमने ऐसी भाषा लिखी कि उन ११ की सदी तक भी हमारी बात नहीं पहुँच पायी। ज्ञानके क्षेत्रमें हम जन-जिज्ञासाके लिए शासनसे भी अधिक कठिन साबित हुए।

नए साहित्यिक तरुण साहित्यिक तरुण चिन्तक! अब इतने तारे हाथ हैं धुन तर सामने। जो इतिहासमें भी अमर हैं उन्हें धुनमें मत खड़ा रहने दे और जो युगपर खड़े हैं उन्हें आगे बढ़नेके लिए बाध्य कर। हमारे युगकी साहित्य-साधनाकी पराजयका परिणाम है तेरी आजकी अनिमाहीनता तेरी आजकी पराधीनता। कलका युग तुझे किस तरह बनाना है, सोच और रास्ता निकाल, भोंडा मत न कर कि तू सब कुछ है। यदि जन अंक साथ हैं तो शून्य भी अंक है नहीं तो नहीं।

जमीन हवा पानी विज्ञान तक अन्तरिक्ष भूगोल, सेना व्यापार कृषि भाषा व्यवहार जंगल आराम गाँव और शहर सरोवर, नदी नद और समुद्र सबके सिरपर तेरी सत्ता चाहिए। सबका पता तेरी वाणीमें चाहिए।

भगवान् करें, हम अपनी जीवन-वाणी वाणीका अपने बल और अपनी बातसे अभिषेक और अभिनन्दन करनेमें सफल हों।

उस दिन हमारे आत्माभिमानके किलेका एक मज़बूत कँगूरा टूट गया — श्रीमती कस्तूरबा गान्धी नहीं रहीं। महात्माजीने इस देशमें जो क्रान्ति की वह जीवन और वाणीके बलपर। वाणीपर जो आता है मौन भाषा उसे पहले ही हममें गुनगुना उठती है। राष्ट्रके परम देवताकी वही मौन भाषा आज छिन गयी है! श्री महादेव देसाईको खोकर, बापूके उस परम तपीने अपना दाहिना हाथ खोया था आज 'बामांग' बिछुड़ गया। आगा खाँ महलके भाग्यमें राष्ट्रीय देवताका केवल बन्दीगृह होना ही नहीं, भारतीयताका शोक-भवन होना भी बदा था। बन्दिनी बाके प्रस्थानसे बन्दीगृहसे स्वर्ग तक की स्वर्ण-रेखा बन गयी है मानो अभी दूर तक वही भारतीय मानवकी कर्तव्य रेखा है और उसपर चढ़कर ही देशके ४० कोटि निवासी अपने मातृ वियोगका पथ अपनी मातृभाषा और मातृभूमिमें ढूँढ सकते हैं। यदि रक्तकी काली बूँदें हममें हों तो बाके भालपर, आँसुओंकी बूँदें ढूँढनेका प्रयत्न हम क्यों करें? यह क्यों न मान रहें कि उन्हें बन्दिनी मरना पड़ा।

ब्रह्मपुरा, मुजफ्फरपुर
१९४४



हिन्दी प्रचार, उसकी परम्परा जोखिम और गति विधि

हिन्दी प्रचार सम्मेलनके इस अवसरपर आपने मुझे स्मरण किया इसके लिए आपकी कृपाका आभार मानता हूँ। महाराष्ट्रमें हिन्दी प्रचार सम्मेलन इतना सफल हुआ कि यहाँ पिछले तीन वर्षोंके थोड़े-से समयमें ही हजारोंकी तादादमें हिन्दीकी परीक्षाओंमें विद्यार्थी बैठने लगे इसमें मुझे आश्चर्य है भी और नहीं भी है।

जब नेत्रोंकी भाषा होती है हृदयकी भाषा होती है बुद्धिकी भाषा होती है, आवश्यकताओंकी भाषा होती है, कविताकी भाषा होती है और मुसकराहट उदासीनता मुहावरे, कहावतें उचित शर्तें उत्साह उदारता मौन, और भावी मानव हृदयको व्यक्त करने ही का काम करते रहते हैं तब मानवोंकी मातृभूमि उनके देशकी कोई बोली नहीं यह सम्भव नहीं।

हिन्दी मेरी मातृभाषा भी है। अतः यह आडम्बर मुझे नहीं शोभता कि आज मैं आपके सामने हिन्दीके गुणोंका पहाड़ा पढ़ूँ। हिन्दीके गुणोंकी खोजका काम तो मैं आप मित्रोंपर छोड़ता हूँ। मुझे तो एक ही बात याद आती है जब गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानसके लेखक काशी के पण्डितोंकी संस्कृतकी परम्पराको छोड़कर अवधीमें लिखने लगे तब सिद्धान्तका बोझाका बैल अपनी बुद्धिके बैलकी पीठपर लादे रूढ़िके उपासक और नवीनताके महामारीकी तरह डरनेवाले संस्कृतके तत्कालीन पण्डितोंने सुनते हैं तुलसीदासजीको विद्वान् मानने और उनके हिन्दीमें लिखे साहित्य को याद देनेसे इनकार किया। उस समय लोक भाषाकी हिमायतमें यह दोहा तुलसीदासजीने बनाया—

का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँचु,

काम जो आवे कामरी का लै करिय कमाँचु।

स्पष्ट है कि संस्कृतकी तुलसीदासजीने क्षीमती वस्त्रकी उपमा दी और अपनी भाषाको कम्बल की। उन्होंने कहा क्या भाषा और क्या संस्कृत प्रेम सच्चा चाहिए, कम्बल काम आये तो कमाँचको लेकर क्या करना है?

राष्ट्रभाषाके पक्षमें संस्कृतका विरोध हुआ तो अँगरेजीका विरोध आ गया। उसपर मुझे कहनेकी इच्छा होती है कि सर्व-गुणसम्पन्ना संस्कृतको तो देशने कब चुपचाप छोड़ दिया किसीको पता भी न चला। हिन्दी अपनी इस विशेषताके कारण बड़ी ही नहीं कि उसे अपने साहित्यपर गर्व और ख्याति मद है। वह तो अपनी सरलताके कारण बड़ी है। और हिन्दीसे सरल भाषा राष्ट्रको प्राप्त होनेपर सिर्फ हिन्दीके मोहके कारण कोई भी हिन्दी-भाषी हिन्दीको राष्ट्रभाषाके पदपर बनाये रखनेकी मनुहार नहीं करेगा। जो साहित्यमें उन्नत और अलंकृता भाषाओंके रहते यदि हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनना पड़ा तो इसलिए कि देशकी जो सीमा जो घेरा एक बादशाहीके प्रभावमें लाया जा सकता था वहाँ हिन्दी ही ठहर सकती थी। क्षीमती वस्त्रोंसे भूमि पाटनेकी कल्पना महँगी और असाध्य थी। यहाँ तो तुलसीदासजीकी कामरी ही काम दे सकती थी।

महाराष्ट्र प्रदेशका भारतीय स्वतन्त्रताके इतिहासमें गौरवपूर्ण भाग रहा है। इसी प्रान्तमें छत्रपति महाराजने हिन्दू-पद-पादशाहीकी स्थापना का उद्योग कर समस्त भारतको संगठित करनेका उद्योग किया और यहीं लोकमान्य तिलक पैदा होकर अपने कष्टोंसे वह ज्वाला जगायी जिससे समस्त देशने स्वाधीनताके पक्षमें पूर्ण स्वाधीनताके पक्षमें बोलना सीखा।

हमारे उद्योग हमारे स्वातन्त्र्यके उद्योग लगभग साठ वर्षोंसे हो रहे हैं। किन्तु उनमें हमें पूर्ण फल नहीं मिल रहा। हम अलग हृदय

मिलानेका काम अँगरेजीसे लेते हैं। उस भाषाको देशवासी नहीं जानते। कुछ गिने-चुने जानते हैं। और देशवासी भिन्न-भिन्न भाषाओंमें बँटे हुए हैं। हमारे अखण्ड हिन्दुस्तानकी पूरी आबादीका अपना समस्त राष्ट्रने एक भाषामें मिलकर कभी सोचा ही नहीं।

इस देशके महापुरुषोंको विशेषतः महात्मा गान्धीको इस बातकी याद आयी कि राष्ट्रको वाणी प्रदान की जावे। बोली बन्द हो घुटनेवाले मूकप्राय राष्ट्रकी भाषा खोली जावे। ऐसी भाषा जिसे उत्तरसे दक्षिण तक अधिकांश लोग जान सकें। बोली बन्द होना तो मरणका लक्षण होता है। जीवनका लक्षण तो बोली ही है। अतः अखण्ड हिन्दुस्तान कितना भी सम्पन्न हो उसका अभिज्ञान एक बोली है, एक भाषा है राष्ट्र भाषा है।

यह आश्चर्यकी बात है कि महाराष्ट्र प्रदेशमें राष्ट्रभाषा इतनी शीघ्र फैल गयी। किन्तु 'महाराष्ट्र' में यह आश्चर्यकी बात नहीं भी है। शताब्दियोंसे भारतीय स्वराज्य और स्वराज्य भावनाके पहरेदार, महाराष्ट्रसे बढ़कर इस बातको कौन समझता कि एक राष्ट्रकी एक बोली भी होती है। यही कारण है कि महाराष्ट्रमें राष्ट्रभाषा इतनी तेजीसे फैलती जा रही है। और इसलिए मैंने कहा कि मुझे आश्चर्य है भी और नहीं भी है।

राष्ट्रभाषा आज और कलकी गढ़ी हुई नहीं है इसके प्रचारका कार्य महात्मा गान्धीने किया। कामचलाऊ [illegible] हम लोगोंने ही नहीं किया 'प्रचारका' न नहीं किया न जाने क्यों प्रचारक शब्द मुझे कभी अच्छा नहीं लगा इसमें हृदयहीनता तर्कहीनता और आवश्यकताकी ईमानदारीका अभाव दीखता है यह अंगरेजोंके प्रोपेगैण्डिस्ट शब्दका अनुवाद है जिस बातको हम उठा लें उसकी कमजोरियोंपर परदा डालकर, उसकी उचित और अनुचित सत्य और आरोपित अच्छाइयोंका गुण गान करते रहना उन्हें फिर-फिर दोहराना और अपने इस काममें हार

न मानना — मैं यही अर्थ प्रचारक शब्दमें पाता हूँ। आत्मशक्ति बढ़ाते भारतीय देशभक्त टेरेंस मैकस्विनीको भी आयरिश स्वतन्त्रताके 'प्रचारकों'के खिलाफ शिकायत थी किन्तु हिन्दी प्रचारकत्वासे नहीं रही। भारतीय संस्कृतिके अमर लोगके सम्मेलनकी वाणी बनकर ही हिन्दी बढ़ी है और भविष्यमें भी उसका यही काम हो तो उसका राष्ट्रवाणी बनकर बढ़ना सार्थक हो। वैदिक युगके ऋषियोंमें एक वाणी रही थी किन्तु उनका भगवान् क्षीरसागरमें भगवती लक्ष्मीके साथ शेषशय्यापर विलास करने लगा तब ऋषियोंके कामको आगे बढ़ानेके लिए सन्त उत्पन्न हुए उन्होंने भगवान्‌को क्षीरसागरसे बाहर निकालकर भक्तोंमें भक्त गरीबोंमें गरीब मानवोंमें मानव कष्टभोगियोंमें कष्ट-भोगी बन जानेके लिए बाध्य किया, सन्तयुगके भगवान् नामदेवकी टूटी झोंपड़ी बाँधते दामाजीकी मनाजकी कमी पूरी करते और क्षमा-क्षमा न करते लोक-हृदयका तादात्म्य बनानेके अपने मिशनमें सन्त दक्षिणसे उत्तर और उत्तरसे दक्षिण पश्चिमसे पूरब और पूरबसे पश्चिम आते-जाते रहते। छत्रपति शिवाजीकी सेनाओंने और पेशवोंकी सेनाने नर्मदा लाँघकर कुछ थोड़ी ही बार उत्तर हिन्दुस्तानकी यात्रा की होगी किन्तु सन्तोंकी यह वाणी-यात्रा दक्षिणके तीर्थोंसे उत्तर के तीर्थोंकी ओर और उत्तरके तीर्थोंसे दक्षिणके तीर्थोंकी ओर कितनी ही बार कृष्णा कावेरी ताप्ती नर्मदा यमुना और गंगा लाँघती रही है। इस समय भाषाका निर्माण भाषाका उपयोग भाषाका लेन-देन इन सन्तोंके द्वारा होता रहता था उन्हीं दिनों हिन्दीका निर्माण हुआ है। इसके बचपनके दिन सन्तोंकी जानकी गोदमें दुलारसे बीते हैं सन्तोंकी कृपाभार झेलते ग्रहण तारुण्य पाया है और सन्तोंकी अखिल भारतीय सार्वभौम अखण्ड भारतकी वाणी बननेका इसे अवसर प्राप्त हुआ है। अब लोक भाषा राष्ट्र-वाणी के सम्पादनके लिए एक सम्पर्क ही आवश्यकता होती है उत्तरसे दक्षिण और पूरबसे पश्चिम। इसीलिए 'रघुपति राघव राजाराम' की धुन लगाते सन्त गान्धीके ही प्रयत्नोंसे

राष्ट्रभाषोंमें पुनः प्राण-प्रतिष्ठा, राष्ट्र-निश्चय और संचालन पाया। मेरी प्रार्थना है, इस प्रचारकर्ताको सम्पूर्ण बदल दें। यह सच है कि भाषाके शब्दोंका भय अब देनेमें बोझ नहीं लगता। किन्तु परिस्थितियोंमें पड़कर मानवकी तरह ही मानव-भाषाके शब्द भी अपना महत्त्व खो बैठते हैं। 'राम' और 'सत्य' — इन दोनों ही शब्दोंमें पवित्र शब्द इन दोनों साधनाओंमें उत्तम साधना कौन-सी? किन्तु 'राम राम सत्य है' कहिए कि राम और सत्य दोनों मानव सवारोंके रहते या अर्थवत्ताका संकेत अमंगलका प्रभाव हुए बिना नहीं रहता। प्रचारक शब्द भी अब आया हुआ है। इस उन्नत महत्ता प्रदान करनी होगी। राजनीतिक छाया पड़कर इस शब्दने अपनेको भयंकर पतित बना लिया है। महाराष्ट्रके एक विनोदी लेखकने अपने एक मराठी प्रबन्धमें एक ऐसे पात्रका वर्णन किया है जिसे कुत्तेसे चिढ़ थी। एक दिन उसके यहाँ कोई कुत्तेका पिल्ला खिलौना बच्चोंके लिए ले आया। उस विनोद पात्रने इसलिए कि यह कुत्ता बिल्ली-जैसा दीखने लगे उस खिलौनेकी दुम घिसना शुरू किया। परिणामतः वह कुत्ता रहा नहीं और बिल्ली हो न पाया। प्रचारकका हो गे प्रचार शब्द पवित्र न रहा। इस पर मन्त्रजलका अभिषेक करना होगा। प्रचारकता कहाँतक जाती है इसका एक उदाहरण सुनिए। सन् १९२१ की बात है। कांग्रेसने उस वर्ष कौंसिलोंका बहिष्कार किया था। उन्हीं दिनों हमारे प्रान्तमें नागपुरमें हिन्दू मुसलिम झगड़ा हो गया। एक महाशय हमारे मित्रोंमें-से ही एक महाशय उस समय कौंसिलमें खड़े होनेकी तैयारी कर चुके थे। अपना मेनिफेस्टो भी उन्होंने छपवा लिया था। ज्यों ही दंगा करते हुए हिन्दू मुसलमानकी भीड़ उन्होंने नागपुरकी गलियोंमें देखी उन्हें अपना मेनिफेस्टो याद आ गया। वे बड़ी उदारतापूर्वक दंगेकी एकत्रित भीड़को अपना मेनिफेस्टो बाँटने। यह बात उस समय अखबार तकमें छपी थी। वे मेरे मित्र थे, मैं उनका नाम नहीं बताऊँगा। गरज यह कि कीचड़से कीच नहीं धुलेगा। उसे तो जलसे ही धोना होगा। राष्ट्रभाषाके प्रचारकके उन्नत

पर राष्ट्रवाणीका गौरव ठहरा हुआ है। वह राजनीति और सामाजिक संघर्षकी कड़वाहटोंमें अपना मत रखकर भी सन्तो-सीमा अलिप्त रहे। राष्ट्रवाणीके एकतारोंसे बाहर उसके पैर अन्य किसी स्वरपर विचलित न हों। उसकी आँखोंमें आदर्श उसकी मुट्ठीमें मनचाही सफलता और उसके पैरोंकी गतिमें राष्ट्रकी वाणीका उन्नत-पथ नजर आये। हिन्दू मुसलमान पारसी ईसाई कोई भेद उसमें न हो।

हिन्दी प्रचारका असर समस्त देशपर हो रहा है। यदि हिन्दी कवियों और रसखान उनके पदोंको अपनी वाणीमें जगह दी है तो राष्ट्रकी भक्तिका मुसलिम कवियोंमें भी ईमानदारीसे आचरण हुआ है। आप शायद यह कहें कि यहाँ राष्ट्रवादी बोलता कि वह मुसलमानोंके गुणगानके बिना ही नहीं रह सकता, मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि आजके कितने ही उर्दू कवि ऐसी कविता लिखते हैं जिसमें फारसी गुलिस्तान ढूँढनेकी जगह रह गयी है। मौलवी मकबूल हुसैन अहमदपुरी अपना एक गीत लिखते हैं

बंसीधर महाराज हमार
हृदय-कुंज में बंसी बजाना।
सब सखीं के राजा हो तुम
प्रेमगीत से मन को रिझाना।
तुम सब प्यारों के प्यारे हो
आओ प्रीत की रीत सिखाना।

मेरे हाथमें तो पुस्तक ही है।[1] कहिए तो मुसलमानों-द्वारा भावुक मुसलमानों-द्वारा लिखे गए हिन्दीके इतने उदाहरण सुनाऊँ कि यहीं आप सुनते रहें।

---

१ इस समय श्री चतुर्वेदीजीके हाथमें श्री गणेशप्रसाद बरवाकी 'उर्दू भाषाकी एक नयी धारा' नामक पुस्तक थी जिसे प्रयागकी हिन्दुस्तानी एकेडमीने सन् १९४१ में ही प्रकाशित किया है।

प्रचारक समाजमें विश्वासपात्र देशके आदरणीय और प्रथमिको मानस भाषा और समाजका एक श्रेष्ठ घटक हों। इस परिपत्रमें कौन-सा परदा है जिसे न हटा सका। आप तो मुझसे कुछ सुनना चाहते थे। मैं आ गया। भारतके अध्यक्ष थी काका कालेलकर जैसी कलाकार भी हैं। वे आपका मार्ग-प्रदर्शन करेंगे ही। आप यह न भूलें कि जितना और राष्ट्रभण्डारमें अनुसार न होते हुए भी आप राष्ट्रकी भाषा का उत्थान और प्रचार कर रहे हैं। इस भावनाका मन नहीं। निर्मल भावना द्वारा पौरुषपूर्ण कार्य जाता है। समुद्रमें यदि ज्वारसे ऊंचाई छूटी किनारे गिरकर तरंगोंमें करता नौका बचाते हुए किसी नाविकका करुण गीत सुनकर मालूम होकर दौड़ जाय है और ऐसे काम [illegible] सुनकर [illegible] नौकामें कूदनी पड़ने लगे अथवा नाविकका गीत सुनकर अपना [illegible] बढ़ाकर और मन टूटकर नावका बोझ कायम छोड़ जायगा तरंगोंपर कूदकर अपनी बहादुरीको कायम दिखाना सभी तो समस्त यात्रियोंके प्राण न बचना दूसरा अपनी पवित्र भावनाने भी यह पराजय हुआ। इस तो केवल अपनी तरंगिणीको मात्रा सुननी चाहिए, और अपनी बुद्धि और बपल बान्धाजन होना और तरंगोंके रुखका सामना करते हुए नौकाको सुरक्षित उस पार पहुँचाना चाहिए। मैं इस परिपत्रका हमारा सद्भावनाके साथ उद्घाटन करता हूँ कि भारतके द्वारा राष्ट्रवासी राष्ट्रभाषाका साथ उसका अस्तित्व उनका अपनापनमात्रको भाषा बन सकती क्षमता सुरक्षित रहे। भगवान् भारतके इस संघर्ष कामको सफल बनायें।

पञ्चमता प्रचार सम्मेलन
कन्नौर
१९४?



हिन्दीका पत्रकार

स्वागत समितिके सभापति श्री श्रीप्रकाशजी, मान्य सम्पादक बन्धुओ तथा मित्रो

मैं तो बिस्तरसे उठकर इस मंचपर आ गया हूँ। श्री पराड़करजीने आपको बतला ही दिया है लगभग नौ महीनेसे मुझे अध्ययनका मौका नहीं मिला है। मैं तो सामने कोरा कागज लेकर चला आया। इतना समय ही नहीं था कि मैं कुछ लिख पाता। ११ अक्तूबरको मेरे पास तार भेजा गया, १२ को लखनऊसे मेरे पास इन्दौर भेजा गया, १३ को मैं चल दिया। १४ को दिन भर चलता रहा और १५ को आपके यहाँ आ पहुँचा। ऐसा आदमी सम्पादक सम्मेलनके सभापतिके पदसे आपसे क्या कहे? सन् १९२७ में भरतपुरके पत्रकार सम्मेलनका भी मैं सभापति था। उस समयका भाषण भी मुझे घरपर नहीं मिला जिसे मैं देख पाता। मैं सोचता हूँ कि बिना कुछ तैयारी किये मैं बीमारीसे उठकर आ ही क्यों गया? मेरी झिझकका पहला कारण यह है। दूसरे मैंने ही फरवरीमें लेख लिखकर तरुण मित्रोंको एक स्थान देनेकी बात कही थी। इसीसे मन उदासीनता भी प्रकट की किन्तु बारम्बारी तरफ पराड़करजीने अवश्य आनेका तार भेज दिया और मैं आपके सामने उपस्थित हो गया।

सच तो यह है कि मुझे बातूनकी आदत है और बोलना। काम करनेवाला आदमी कभी कामका ढोलना नहीं पीटा करता। दूसरे, मेरे एक विद्वान् मित्रका एक कथन भी आज ही सुबह मेरे कानों तक पहुँचाया गया। वे स्वयं कान्यकुब्ज हैं। उनका कथन है कि मार्ग नत्रीजिया और

सम्पादक किसीके समझाये नहीं समझा करते। इसलिए उनके संघर्षकी बात कहना बेकार है, उनके सामने यापन देना न देना बराबर है। किन्तु मैं तो पढ़ा और विश्वासके साथ आपसे कुछ बातें कहना भी चाहता हूँ।

समाचार-पत्रका अस्तित्व पहले स्पष्ट चाहे नया हो किन्तु संवाद और घटनाओंका एक स्थानसे और एक युगसे दूसरे स्थान और दूसरे युग तक पहुँचानेका काम पुराना ही है। यही कारण है कि प्राचीन युगमें एक आता दूसरे भागमें कितनी दूरीपर रहे किन्तु उन आत्माओं और उनके द्वारा वर्णित घटना-समूहोंको लोग जानते थे। जब धीरे धीरे समय बदला तब उनका स्थान कथाकारोंने लिया और उनके बाद अपने वर्तमान युगमें सूचनाओंके संग्रह परिस्थितियोंके ज्ञान शिकायतोंके प्रकटीकरण और ज्ञानके सम्वर्धन विकासके लिए समाचार-पत्रोंका उपयोग होने लगा।

चीज चाहे कितनी सुन्दर और उपयोगी हो युगके अनुकूल होनेके लिए उसमें परिवर्तन होते ही रहेंगे। यदि हम चाहें कि पुरातनका मोह करें तो उतरे हुए आमोंकी तरह उतरी हुई वस्तुएँ गलने जानेपर अपरिवर्तनशील रहनेपर देश समाज और साहित्यकी स्वास्थ्य-हानि करने लगेंगी। साहित्यशिल्पी तो एक शोधक है जो नवीनसे नवीनतर विचार शोधपूर्वक समाजको देता रहता है। समाचार-पत्रोंका वर्तमान स्वरूप भी आत्मसात सूचनासंग्रह घटना प्रकटीकरण और जनताकी बातों दूसरोंका वर्तमान सुधारा हुआ स्वरूप है।

जहाँतक मुझे मालूम है सन् १७०२ ई० में इंग्लैण्डमें मन पत्रकार शब्दका व्यवहार किया। किन्तु 'जर्नलिस्ट' शब्दके लिए 'पत्रकार' शब्द सम्पूर्ण अर्थोंका द्योतक नहीं मालूम होता। यह सच है कि 'पत्रकार' शब्दके अन्दर अखबारोंका सम्पादन करनेवाले तथा अखबारोंके लिए लेख तथा संवादपत्र लिखनेवाले और विशेष संवाददाता यह सब आ जाते हैं। किन्तु यथार्थमें तो युगकी घटनाओंके निष्पक्ष संचालक आलोचक

और मैं उनको 'पत्रकार' कहूँगा। पत्रकार को सदैव ही कागज लेकर लिखना जरूरी नहीं है। नियन्त्रण, शील और मस्तिष्कका उपयोग करना उसकी विशेषता है। इस मानीमें 'पत्रकार' शब्द छोटा पड़ता है। साथ ही अपने ज्ञान-भण्डारके द्वारा नवीन युगका निर्माण भी उसकी जिम्मेदारी है, जिसपर यह 'पत्रकार' शब्द मौजूँ नहीं होता। किन्तु इससे अधिक उपयुक्त शब्द मुझे सूझ भी नहीं पड़ता।

विदेशमें तो पत्रकार-कला अपने लिए महान् स्थान बना चुकी है किन्तु हिन्दी पत्रकार-कला नहीं। हमारी दशा बहुत शोचनीय है। हमारे देशमें अँगरेजीके अखबार लगभग एक करोड़की तादादमें खपते हैं। बम्बईके प्रसिद्ध ऐंग्लो-इण्डियन दैनिक 'टाइम्स ऑव इण्डिया'ने तो यह भविष्यवाणी करनेका भी साहस किया है कि आगामी कुछ वर्षोंमें अँगरेजी पाठकोंकी तादाद लगभग तीन करोड़ तक पहुँच जायगी। बंगला, मराठी और गुजराती आदि भाषाओंके पत्रोंके ग्राहकोंकी तादाद दस हजारसे ऊपर कई गुना बढ़ गयी है। ये पत्र अपने प्रान्तीय जनमतका नियन्त्रण करते हैं और अपना शासन तथा अपनी संस्थाओंका भी। किन्तु हिन्दी समाचार-पत्रोंकी अवस्था इससे बिलकुल भिन्न है। संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, बिहार आदि उन सभी सूबोंमें जहाँ हिन्दी भाषा-भाषी जनता रहती है, हिन्दी समाचार-पत्रोंका विस्तार कुछ हजारों तक ही है। क्या कोई हिन्दीका समाचार-पत्र 'टाइम्स ऑव इण्डिया'की तरह यह दावा, यह भविष्यवाणी कर सकता है कि बाद ही विशाल पन्द्रह करोड़की आबादीकी हिन्दी जनतामें दो करोड़ जनताके पास हिन्दी पत्र पहुँचा सकेंगे? मुझे दुःखसे कहना पड़ता है कि अखबारोंके कार्यालयों-की अपेक्षा हिन्दी-पत्रों और पत्रकारोंकी हालतके मामले हमारे समाजके बीच अत्यन्त बहुत असमान हैं। ये दो विचार-बिन्दु हैं — हिन्दी संसारमें हिन्दी-प्रान्तोंका नेतृत्व और उसमें सम्पूर्ण हिन्दी संसारकी दशा, पालन और नियमन-भावनाका अभाव, यानी प्रान्तीयताका अभाव। मेरे

कुछ मित्रोंने कुछ भागों साहित्यिक मित्रोंने इसे हिन्दी संसारका शुभ कहा है और उसका राष्ट्रके प्रति स्नेहभावका ईमानदारीकी उज्ज्वलता बतायी है। किन्तु मैं इस विचारसे सहमत नहीं हूँ। न प्रान्तीयताको बुरी बात मानता हूँ। किन्तु प्रान्तीय कमजोरियोंका राष्ट्रीय बल नहीं कहा जा सकता। जब समूचे राष्ट्रके समस्त प्रान्त राष्ट्रीय उत्थानकी दौड़में कभी हों तब कुछ दिशाओंमें हमारा पिछड़ रहकर राष्ट्रीय-विकास में बाधक और अन्य प्रान्तोंपर इस प्रान्तके प्रयत्नोंपर बातोंका ही पड़ना न हमारी उत्तमता कही जा सकती है न राष्ट्रीयता। मुझे तो इस बातका दुःख है कि माननीय पण्डित रविशंकर शुक्ल माननीय पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त और माननीय श्री श्रीकृष्ण सिंह तथा उनके मित्रोंने शायद ही कभी मिलकर सोचा हो कि इन तीनों शासनोंकी संयुक्त शक्ति को समस्त हिन्दी संसारके अगाध आचरण और संगठनका शुभ काम करना है। बुरहानपुरसे भागलपुर तक और हजारीबागसे पंजाब तक एक दृष्टि रखकर शासनमात्री मनोवृत्तिकी हम गहरी कमी महसूस करते हैं। और जब मुख्य ही इसपर ध्यान नहीं देता तब जनतामेंसे सामान्य कहाँसे आये? इसी मनोवृत्तिके अभावमें साहित्य और समाचारपत्रोंमें वह वजन नहीं मालूम होता जो मराठी गुजराती बंगला तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओंके पत्रोंमें मालूम होता है। क्योंकि प्रधान मन्त्री मेरे भाई माननीय खेर साहब शासनकारी ही नहीं ग़ैरकांग्रेसी संघके मराठी पत्रोंको भी ध्यान देकर काम किया करते हैं जो सर्वथा उचित और स्वाभाविक है और उत्तम शासनके लिए आवश्यक है। इसी तरह अन्य हिन्दी-भाषी सीमाके बाहरके प्रान्तोंके शासनोंकी हालत है। महाराष्ट्र प्रदेशमें तो उनका अपना कोई अंगरेजी दैनिक ही नहीं है। बंगालमें आनन्द-बाजार पत्रिका का प्रचार और प्रभाव सुना जाता है। और पर-भिन्न बंगाली तक उस बड़ी तादादमें पढ़ते हैं। मद्रासियोंकी [illegible]पर भार उनकी भाषाके पत्रोंको रखा हुआ पार्टीमें और उन पत्रोंका

सिम्बालटपर शासनमें चरचा होने पायेगी। किन्तु ऐसे मध्यमार्गी हिन्दी-संसारमें देखनेको मिलेंगे जो अंगरेजी पत्रोंके लिए प्रातःकालसे बेचैन रहते हैं किन्तु भूले-भटके या मजबूरीकी सुविधामें मुफ्त आये हुए हिन्दी दैनिकों तथा अन्य पत्रोंके महीना आवरण नहीं खोलते और कदाचित् इस मध्य-युगमें वे रद्दीके सदुपयोगकी बहुमूल्य सीमामें स्थान पाते हैं। मैं बिहारकी बात नहीं जानता किन्तु युक्तप्रान्तके और मध्यप्रान्तके कुछ स्थानोंसे मुझे ऐसी खबरें मिली हैं।

यह बात विश्वासपूर्वक कही जा सकती है कि आज प्रान्तोंमें जो जनप्रिय सरकारें स्थापित हैं और धारा-सभाएँ काम कर रही हैं उनके मतदाताओं तक अंगरेजी नहीं हिन्दी पत्रकारकी कलम पहुँची थी। किन्तु जो उपेक्षा हिन्दी पत्रोंकी आज की जा रही है उसे देखकर यह कहना पड़ेगा कि हमारा नेतृत्व अपने ही बलवान् साधनोंके प्रति उदासीन है। यदि हम हिन्दीके पत्रों और पत्रकारोंके प्रति शासन नेतृत्व और जनताको सावधान और सहायक करें तो हमारे सामने हिन्दी-प्रसारके नवप्रयत्नका चित्र आ सकता है।

हिन्दी पत्रोंकी खासकर समाचार-पत्रोंकी जो दैनिक प्रकाशित होते हैं तार समाचार भी एक कठिनाई है। समाचारोंकी एजेंसियाँ अंगरेजीमें तार भेजती हैं। जापान इंग्लैण्ड जर्मनी अमेरिका इन कहीं भी आप यह तमाशा नहीं देख सकते कि उन देशोंमें भाषामें समाचार न आवें। परिणामतः अंगरेजी दैनिक जल्दी ज्यों तार-समाचारोंकी शब्दलिपि छाप देते [illegible] हैं केवल वाक्यके अर्द्धविराम पूर्णविराम संयोजक या उप-योजक घटा-बढ़ा या बदलकर। किन्तु बेचारा हिन्दी पत्रकार अनुवाद करने बैठ जाता है और तारवालोंकी भीड़में अंगरेजी पत्रोंके पीछे रह जाता है। इस बातकी सुधारकी ओर जननायक बिलकुल ध्यान नहीं दे पाते। यह बिलकुल स्वाभाविक अवस्था है।

लोकप्रिय शासन प्रान्तोंमें स्थापित हो जानेके कारण समाचार-पत्रों-

स्त भी स्वतन्त्र और उन्नत होना चाहिए। इसके पहले कांग्रेसका काग्रेसका पूर्ण प्रचारपत्र अथवा प्रोपगैण्डा शीट था। किन्तु अब यह अनुभव करना चाहिए कि प्रान्तकी समस्त जनता हमारे मन्त्रि उसकी प्रजा है और जो पत्र या पक्षपातहीन पत्र समस्त जनताके र कायदके मन्त्रिमण्डलका सभा अभिप्राय है वही पक्षपातहीन पत्र देस समाचारोंका गैरकांग्रेसी जनताके साथ भी होना चाहिए। कांग्रेसी अलग सम्पादकीय स्तम्भमें विरोधकी बातोंपर अपनी मुक्ताभोगी के लिए स्वतन्त्र रहें किन्तु स्कीम नीति और चरित्रकी रक्षा करते विरोधमें प्रकट होनेवाले जनमतको पर्याप्त स्थान देना चाहिए। हमारा म जनताका बाचा होता है। यहां विज्ञापन फीसदी १० भी न हो लिये जनताम कठोर उपरान्त आवश्योंको मौन नहीं करनी चाहिए। हां र और नाम-अमीर पत्रोंका स्वभाव नहीं होना चाहिए।

हमने बहुत वर्षो तक खून पसीने और काले-पानीके गीत गाय और स्वतन्त्रता मिलने तक हमारी यह परम्परा जारी रहेगी किन्तु एक बात हम बरदाश्त न करें। यदि हमने देशाभिमानपर जोर न दिया और म ब्रिटिश विरोधको ही मात्रा बनी तो ब्रिटिश शासित अधिकार के दिन हमने-न फिरसे ही देशघातक हो जायेंगे क्योंकि ब्रिटिश उनके देशाभिमानको गैरसरकारीमें कोई मूल्यकी वस्तु नहीं ठहरता। र तथा उज्ज्वल देशाभिमानमें विदेशी शासनका कठोरतर विरोध स्वीकार ही रहता है। हम देख रहे हैं कि थोड़े दिनोंके कांग्रेसी शासनमें टिश शासनके साथ जो थोड़ा मेलजोल हुआ उसमें हमारे मार्ग न जाने वया किरण लगा और न जाने क्या-क्या कदम भरा। हमें देशाभिमान नीचे उतरनेपर किसीको भी क्षमा नहीं करना है।

जब कि प्रिय सरकारें प्रान्तोंमें कायम हुई तब देशी भाषाकी सभा र एजेंसियोंका आयोजन हम क्यों न करें? और हमारी सरकारें इस ममें सहायक क्यों न हों? यदि अंगरेज़ यहांकी कम्पनियोंको ईस्लैण्ड

की सरकार भारतवर्ष तथा अन्य देशोंकी जहाजी कम्पनियोंमें स्पर्धामें बने रहनेके लिए उनका टोटा भरकर सहायता देती है तो हमारी प्रान्तीय सरकार समाचार एजेन्सियोंका टोटा क्यों न भरे ? ऐसा होनेके पश्चात् देशी भाषाओंके दैनिक पत्रोंको बहुत बड़ा सहारा मिलेगा और वे भी इस देशकी बड़ी भारी सम्पत्ति कहलाने लगेंगे ।

आजकल दैनिक साप्ताहिक मासिक आदि पत्रोंका संचालन भले बन गया हो किन्तु वह अभीतक व्यवसाय नहीं बन पाया है। व्यवसायका-सा लाभ उठाना और लखपति हो जाना इस धन्धेके भाग्यमें नहीं है। जिस दिन यह कला अथवा यह व्यवसाय पूरा खुल जाकर चार-पाँच फासदी सालाना भी निश्चित लाभ देनेकी योग्यता प्रकट करने लगेगा उस दिन देशके धनिक इस व्यवसायमें अपना लाखों रुपया लगा देंगे और उनकी — धनकी और कीर्तिकी दोनों प्रकारकी दूकानदारियाँ अपने मुनीमोंके बलपर बड़े मजेसे चलने लगेंगी। किन्तु संकट कुमति, मनहरबन्धी तकाजों और दारोमदारके बलपर चलायी जानेवाली यह कला आज तो कम ही कही जा सकती है। अभी धनकी सीमाको वह नहीं लाँघ पायी। अब इस उपयोगी सहयोगी और समयके सन्देश-वाहक उपकरणके साथ जनता और शासनकी बलवान् सहानुभूति होनी चाहिए।

समाचार-पत्रसे सरकारी महसूल वसूल करना सामयिक ज्ञानको दण्ड देना है और देशी भाषाके समाचार-पत्रोंसे अधिक सरकारी कर वसूल करना इस देशके ग्रामीण तक पहुँचनेवाले ज्ञानके झरनेमें रुकावट डालना है। किन्तु हो यही रहा है। यदि कोई एक पैसेका अखबार निकाले और २५ फीसदी कमीशन अपने एजेन्टोंको दे तो भी एक पैसेवाले डाकखानेके टिकिट ही उसे अपने अखबारपर लगाने पड़ेंगे। यह तो १०० फीसदीसे ऊपरका सरकारी महसूल हुआ। विलायतमें दो पैसेके दैनिक निकलते हैं। ज्ञान-वर्धन और विषयोंकी सम्पूर्णताकी दृष्टिसे वह पूरी

गया है। व एक आनेका निकलने चाहिए। किन्तु दो पैसेके अखबारको एक पैसेका डाकखानेका टिकिट लगाना पड़ता है और इस तरह ५० प्रतिशत सरकारी करके रूपमें चुकाना होता है। भारत सरकारका काम है कि वह समाचार-पत्रोंके लिए इससे भी बहुत सस्ते टिकिट चलाये या केवल अखबारोंके टिकिट बनवाये और जिनसे गाँव ग्रामीणों तक सस्ते और सुविधाजनक ढंगसे पहुँच सकें। ज्ञान फैलाने और उसपर मनन किये जानेका यह कर समाप्त होना चाहिए, और वह इस तरह कि भारत सरकार अपना काम छोड़कर सस्ते टिकिटों-द्वारा अखबारोंसे ज्ञानका प्रचार देशके गाँव-गाँवमें होने दे।

उस लेखकके कथनको मैं मानता हूँ कि आक्सफोर्डका गौरव और कैम्ब्रिजकी कीर्ति योग्यता और प्रतिभाशील पत्रकारत्वको जन्म नहीं दे सकती। किन्तु ज्ञानकी आवश्यकतासे इनकार नहीं किया जा सकता। एक खास मात्राका ज्ञान उससे ऊँचा हो तो भी पत्रकार-कलाके लिए दुष्प्राप्य न होगा। यह तो आवश्यक है। इसलिए सर्वप्रिय शासनोंके वर्गमें उचित पाठ्य विषयोंके साथ विश्वविद्यालयोंमें सम्पादन-कलाका शिक्षण देना चाहिए, और उपाधि भी देना चाहिए। यह विषय खास जर्मनीमें अभी नहीं सुझाया गया। तो भी हमें इस देशमें अब आरम्भ करके देखना चाहिए।

आजकल जापान एक बात बड़े मज़ेकी सीख रहा है। अबतक अनुसार प्रसिद्ध पुरुषोंकी कीर्तिकथा-गायनकी रस्मी-प्रथा जारी रखता है जबतक वे पत्रकारके या शब्द भी पत्रकारका नहीं मानते किन्तु वर्नाक्युलर दुनिया यदि पत्रमें दो कड़वी बातें छप जायें तो पूरा ५००की मानहानिकी नोटिस हाजिर है। सच तो यह है कि मानहानिकी नोटिस का कारण है यदि कोई समाचार-पत्र निकालें तो फिर पत्रोंके अस्तित्वकी आवश्यकता ही न रह जाये। मैं व्यक्तिगत आक्रमणको बुरी बात मानता हूँ और मानता हूँ एतराजपर पालोचनात्मक रूपमें अथवा द्वेषपूर्ण

वास्तविक रूपमें म्युनिसिपैलिटीका कूड़ा-कचरा ढोया जाना पसन्द नहीं करता। किन्तु शासन संस्थाओं और जन-सेवकों-द्वारा जन-सेवाके पथमें किये गये कार्योंकी उदात्त और निर्भीक चर्चा आवश्यक है। दफा ५ की नोटिस कई संयोगमें हमी जनवाणीको कुचलनेका प्रयत्न है।

इसी समय मुझे गरीब हिन्दी पत्रकारकी गरीबीका स्मरण हो आता है। कम वेतन अधिक श्रम रातका जागरण और साधनहीन कठिनाइयोंके बीच पत्र चलाते हुए यदि किसी 'तीसमार खाँ' धामक धनिक अथवा महाजनकी त्योरी चढ़ गयी और गरीब पत्रकारको अपमान या कारावासके दिन देखने पड़े तो हिन्दी पत्रोंमें ऐसा संगठन नहीं कि संकटमें पड़े हुए किसी पत्रकार-बन्धुकी रक्षा कर सकें या उसके बीमार पड़नेपर सहायक हो सकें या उसके जेल जानेपर उसके घरकी सहायताका आयोजन कर सकें अथवा उसके मर जानेपर उसके बाल-बच्चोंकी ओर देखनेवाला कोई हो। गरीब पत्रकारके बाल-बच्चोंका घर-घर तो क्या अनाथालय ही हो सकता है। इस अवस्थाको हम शीघ्र बदलना चाहिए। यह पत्रकारोंके आर्थिक संगठनसे ही हो सकता है।

पत्रोंके अस्तित्वके मार्गकी एक बड़ी बाधा है धनियोंके छोटे धर्मान्धताकी जिद अथवा शासन-नीतिका सहारा लेकर निकलनेवाले साम्प्रदायिक तथा अन्य सामयिक पत्र। ऐसे पत्र निकलते ही बढ़िया कागज लगा देंगे अच्छे चित्र दे देंगे। काफी चटक-मटक दिखा देंगे और सामान्यतया नुकसान किये बिना पत्रका मूल्य घटा देंगे। परिणामतः मूल्य घटाकर चटक-मटक लानेके लिए वे स्थायी पत्रोंको बाध्य करते हैं। ऐसे पत्र चल तो सकते ही नहीं थोड़े दिनोंमें मर जाते हैं किन्तु प्लेगके कीड़ोंकी तरह खुद मरकर अस्तित्ववालोंको भी मरण-स्पर्शी मार सीखते हैं। अतः पत्र-जगत्‌पर हमारा नियन्त्रण होना चाहिए, कि बिना साधनोंकी अथवा साधनोंवाली खतरनाक धर्मान्धता छोटीसी

और सरकारोंकी एकाधिक सीमामें कुछ रुकावट की जा सके।

हिन्दी संसारका एक बहुत बड़ा भाग मध्यभारत और राजपूतानेके देशी राज्य हैं जहाँ हर सौ या पचास मीलपर शासन बदल जाता है। ये रियासतें प्रायः निर्भीक समाचार-पत्रोंसे घबराती हैं और उनका प्रवेश-निषेध कर देती हैं। अपने राज्य विरोधक पत्रका प्रकाशन भी यह रियासतें करती हैं किन्तु वह विचित्र तरीकेसे। ये अपने यहाँसे अपने राज्यसे या कुछ समाचार-पत्रोंका निकलना रोका है प्रकाशित हो सकता है किन्तु ऐसे पत्र जो राज्यके शासनकी आलोचना नहीं कर सकते राज्यकी सीमामें या उससे बाहर अपनी बिक्री नहीं बढ़ा सकते। उनके अलावा एक समाचार-पत्रोंको यह सरकारें कुछ हजार रुपया सालाना सहायता देती हैं और अपने राज्यकी पाठशालाओं आदिमें भी उन पत्रोंके जानेकी सुविधा कर देती हैं। ये पत्र अधिकांश अन्याय सामने या अपने शासनकी आलोचनाके लिए निर्भीक न हो राज्यकी देख रेख में हुई कठपुतलियों तरह हैं। इनके द्वारा कष्ट भोगती और पिछड़ी हुई रियासती जनताको वाणी नहीं फूट सकती। उस जनतामें शासनके अधिकारकी प्यास और भूख पैदा नहीं हो पा सकती। राज्यकी सीमाके बाहरके संचालक सज्जन यदि वे चाहें भी शासनपर नहीं छाप सकते क्योंकि वहाँका शासन प्रजामत और प्रजासत्तापर अवलम्बित नहीं है, अभी या वह निरंकुशता सरकारीपनपर चलाया जा रहा है जिसके अनुसार चलना ही न्याय है। अतः ब्रिटिश भारतके पत्रों और पत्रकारोंकी जिम्मेदारी है कि वे रियासती जनताको भूलने न पाएँ और दैनिक 'हिन्दुस्तान' और 'अर्जुन' की तरह तथा 'नवजीवन' और 'नवराजस्थान' की तरह स्वतंत्र होकर भी और अधिक प्रयत्न करके भी रियासती जनताका साथ दें। हम हिन्दी संसारको अविभाज्य मानें तभी हम रियासती जनताके प्रति अपना कर्तव्य पूरा कर सकते हैं।

मैंने भरतपुर सम्मेलनके अवसरपर सपना लिया था कि युद्धके समाप्तमें हमारे हिन्दी पत्रोंके संवाददाता भी युद्ध-स्थलोंमें हों। आज युद्ध हो रहा है और आप देख ही रहे हैं कि हिन्दी पत्रोंके संवाददाता विदेशके युद्ध-क्षेत्रोंमें दिखलाई नहीं देते। हमारे तरुण यहाँ बेकारीमें भूखों मरेंगे निश्चित मौतका खतरा ले भूख मरकर भले लेंगे किन्तु साहस करके मरना पसन्द नहीं करेंगे। जो लोग ग्रेजुएट होकर जूतेकी पॉलिश करने तकका साहस करते हैं उन्हें मैं तो प्रशंसनीय भी कह सकता। मेरी नजरमें यह काम समझकी उपज भावनाओंमें शुमार नहीं। किसी पराधीन देशमें तरुणाईके लिए उपयोग नहीं है पर यह खतरा और भयंकरताओंके साथ लेते और उससे देशके व्यवसायग्रस्त और समाजकी महान् उपक-पुरुषमें सहायता मिले। मेरी समझमें नहीं आता कि हिन्दीके तरुण विश्वविद्यालयके ज्ञानकी डिग्री ऐसा क्या साबित करते हैं। न युद्धमें घूमकर विदेशोंसे स्वदेशको खबरें देते अखबारोंके लिए कष्ट उठाते और सन्देशवाहकके नाते पत्रकारका इतिहास बनाते नजर क्यों नहीं आते? इस दिशामें हमारी तरुणाई चुप न रहे। इस जागरणकीसा होना चाहिए।

अन्यान्य प्रान्तोंमें ही नहीं बल्कि उपनिवेशोंमें और विदेशोंमें जो भी हिन्दी पत्र निकाल रहे हैं उनपर हमारी नजर होनी चाहिए और हमसे उन्हें प्रोत्साहन मिलना चाहिए। दक्षिण अफ्रीकामें हिन्दी पत्रोंके निकालनेका आयोजन भी भवानीदयालजी संन्यासी तथा अन्य मित्रों-द्वारा होता रहा। जापानमें हमारे बिहार-निवासी देशभक्त डॉक्टर सहाय एक अंग्रेजी हिन्दी और जापानी पत्र चलाते रहे जिसका नाम वॉयस ऑव इण्डिया था। पत्र निर्भीक था। भारत सरकारने उसे रोक दिया किन्तु हम लोगोंने उसे प्रोत्साहन क्यों नहीं दिया उस समय तक जबतक कि वह ब्रिटिश भारतमें आता रहा? मेरी विनय है कि शासनके दण्ड देनेके पहले ही हम अपने विदेशमें बसे हुए हिन्दी पत्रकारोंको अपनी उपेक्षाका दण्ड न दें। वे तो सदैव ही हमारे हामी चाहिए।

अब एक बात और। यद्यपि सन्तवर विनोबाने एक बार अपने प्रवचनमें कहा था कि यह नहीं सोचना चाहिए कि यदि स्वतन्त्रताकी सेना किसी दिन महाराष्ट्र प्रदेशके नागेगाँव नामक गाँवसे होकर आयी थी तो वह फिर भी नागेगाँव ही होकर आयगी और अपने लिए कोई दूसरा रास्ता नहीं लेगी। कैसा सुन्दर संकेत है! स्वतन्त्रताकी जगदीश्वरी किसी कवि और कलाकारकी अपेक्षा ज्यादा मौलिक है। इसमें सन्देह नहीं कि अखबार न तो तोप या तलवार है जो रक्तपात करे न शासन है या विद्रोह-सभा है जो गहरे परिवर्तन और उथलपुथल करे। किन्तु समाचार पत्र जनता और घटनाओंका नियन्त्रक और संचालक तो है ही। हम सावधान रहें कि न जाने किस रास्ते होकर भारतकी स्वतन्त्रता आ जायगी। अनेक आदर्शवादों और सम्प्रदायोंके बीच हमारा कठोरतर आदर्शवाद स्वतन्त्रता के आवाहनको तैयार होना चाहिए। हिन्दूकी भिन्नताके साथ या हिन्दकी भिन्नताके परे यह पथ तो स्वयं स्वतन्त्रता ढूँढेगी। किन्तु हमें नवप्रभातकी तैयारीमें उदयाईका समस्त श्रम अनुभव करते हुए चौकन्ना रहना चाहिए कि देशके परिवर्तनको प्राप्त कठिन परिस्थितियोंमें हमारे प्राण और हमारी दूरदर्शिताका दिवाला न निकल जाये। हम वह दे सकें जो समयकी माँग हो और जिस देशके बाद स्वतन्त्र भारतकी पीढ़ियाँ अपने देशको चमत्कार पसारार पथ पर सकें।

जैसा कि मैंने कहा कि मैं तो विना तैयारीके बीमारीके बिस्तरसे उठकर चला आया हूँ अतः समाचार-पत्रों, पत्रकार बन्धुओं और उनकी विभिन्न परिस्थितियोंका विवेचन न कर सका, इसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ।

अब मैं अपनी बात कह चुका। आलोचक मित्रों तथा स्वागत-समिति को अनेक धन्यवाद।

२८वें हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अवसर पर
अ. भा. हिन्दी पत्रकार परिषद्के
सभापति-पदसे दिया गया भाषण
१९१८



एकसठवीं वर्षगाँठपर

बरार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनने जो सम्मान मुझे दिया उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। मैं आपसे क्या कहूँ, मुझे तो उर्दूके बहुत-से शाइरकी याद आ जाती है। जब आप तरह-तरहकी चर्चा करते हैं तो बताइए कहाँ छिपूँ।

इस तरह आज का संकटका समय मेरे लिए उपस्थित है। श्रीमती गंगादेवी [illegible] श्री प्रभुदयालजी अग्निहोत्रीने श्री प्रयागदत्तजी शुक्ल और भाई [illegible] क्या-क्या नहीं कह डाला। तीस वर्ष पहले जब इसी तरहका एक संकट मेरे ऊपर आया तो मुझे वह दिन याद है राजद्रोहका कैदी जबलपुर जेलसे छूटा था। यह चार मार्च १९२२ की बात है। बड़ा-सा समूह मुझे ले चला था। भाई गोविन्ददासजी उस समारोहके नायक थे। राजा गोकुलदासजीकी सजी हुई गाड़ीमें चार घोड़े जुते हुए थे और बाबू गोविन्ददासजी कार्यकर्ताओंके साथ मुझे लेकर जा रहे थे। जनतामें जाना था सन्देश सुनाना था और जाने क्या-क्या करना था।

बाबू गोविन्ददासजीके साथ गाड़ीमें बैठे-बैठे मुझे सूझा कि अंग्रेजोंके अत्याचारसे निकला तो राष्ट्रीयता और निष्ठाका व्याख्यान आ गया। और भाई गोविन्ददासजी तो केवल सुपरिन्टेण्डेण्ट ही दिखाई देते थे। जेलके दरवाजेपर जेलवालोंने मुझे वे चिट्ठियाँ दीं महीनों पुरानी जो [illegible] मुझे नहीं दी थी। बैठे हुए उसके लिफाफेपर कुछ लिखना शुरू किया था। जो लिखा था चार मार्च १९२२ को जबलपुरमें सुनाया था। और आज १८ अप्रैल १९५ को आपको भी सुनाऊँ ऐसा

ही कुछ कठिन प्रसंग उपस्थित होता है। मैंने लिखा था उस सारे स्वागत समारोह और मुझे बन्दी करके ले जानेके दृश्यको यह मानकर कि बेंमरेजका जेलखाना बाहर भी क्योंकर ज्यों जेलखाना बन गया है। पंक्तियाँ ये थीं :

ध्वजपति जय घोष के हाँके गहे,
कोटने ये हार सर्पों-से लगे
छोड़कर मानस 'देश उपासना'
बन्धु तुम किस तुच्छ पूजा को लगे,
बँध चली ममता कभी जंजीर-सी
यह परिस्थिति का 'गुलहखाना'[1] बना
फिर चढ़े आत्मीय मैं बन्धन हुआ
स्नेह भरे प्रहार दीवाना बना
कठिन शिष्टाचार का कगार लगा
मोह कैसा है कि ताला पड़ चला
कामना के सन्तरी तक का सबक
दो दलों के द्वार पहरा पड़ चला
था कहाँ 'सन', अब सदैव विजय की
बढ़ रहे हैं रश्मियाँ चुभने लगीं[2]
थी दर्दीले घाव, अब मन मर हुए
हृदय कहता है कि सिर घुनने लगो।
दूर था, और जो भी कोस भर,
हाय वह आराध्य अँचल पथ हुआ

1. पाँडिचेरी जेलको जनमें गुलहखाना कहते हैं।
2. जेलमें चतुर्वेदीजीको उनकी धार्मिक भावना वाली हुण्डी चलानेके लिए दिया गया था जो मनमें चार दर्जन ही। वह हुण्डी तीनेके कामसे लायी जाती थी और दिन-भरमें चार दर्जन गमला सहज होता था।

छोड़ दो मुझको, दया होगी बड़ी
मुक्ति क्या यह तो बड़ा बन्धन हुआ।

सौ तीस वर्ष पुरानी तालीम फिरसे नहीं कहनेको जी चाहता है। भारतकी तालीमें कहूँ तो

वे तुम जानो और दिल, वे आपस का काम।

मेरी इकसठवीं वर्षगाँठ मनाकर आप मेरा सम्मान कर रहे हैं या अपनी इच्छाओंका ? आपने भाई मेहताजीको अध्यक्ष बनाया। मध्य प्रान्तीय सरकारके उद्योग-मन्त्री अध्यक्ष हों इससे आपको प्रसन्नता होना स्वाभाविक है। किन्तु मुझे इनके साथकी अनेक पुरानी घटनाओंमें एक याद आती है।

सन् १९२१ की जनवरीमें मैं श्रीयुत स्वर्गीय गंगाधर रावजी चौबे और भाई मणिकलालजी कोचरके साथ नवीन प्रान्त महाकोशलकी प्रथम कांग्रेस कमेटियोंके निर्माणके लिए सिवनी गया था। मेहताजी वहाँ वकालत करते थे और सर्वश्रेष्ठ वकीलोंमें थे। यह भी सुना कि उस समयके ज्यूडिशियल कमिश्नर बनाये जानेवाले व्यक्तियोंकी फेहरिस्तमें कभी-कभी एक नाम भी मेहताजीका भी लिया जाता था। फिर मेहताजी मिले फरवरी १९२१ में। महात्मा गान्धीने महाकोशलका दौरा प्रारम्भ किया। मैं वर्धा गया महात्माजीको लेकर जबलपुर आया। स्वर्गीय भाई जमनालालजी बजाज महात्माजीके दौरेकी व्यवस्थामें नायककी तरह साथ थे और स्वर्गीय महादेव भाई देसाई सब शब्दको लिखनेके लिए। नागपुरसे राष्ट्रभाषाका दल साथ चला तो सिवनीमें मैंने मेहताजीके यहाँ सबके ठहरनेकी व्यवस्था की।

सिवनीसे आगे जबलपुरकी ओर चलनेके पश्चात् मुझसे कैफियत की गयी मास्टर हो मैं कि मेहताजीने वकालत नहीं छोड़ा है अतः उनके यहाँ महात्माजीको क्यों ठहराया गया ? मेरा निवेदन था कि आन्दोलन अभी शुरू ही हुआ है। मेरा विश्वास है कि मेहताजी जल्दी सब आचरण

जेलमें वे अपनेको बादशाहीयतकी गद्दीपर बढ़ाये बिना न रहेंगे। किन्तु मित्रोंको इससे सन्तोष न हुआ और मैं चुपचाप रह गया। ११ मई १९२१ में मैं गिरफ्तार हो गया और बिलासपुरमें सजा हो गयी। दिसम्बर १९२१ में मेहताजीका एक कार्ड मुझे मिला। लिखा था "महात्माजीको मेरे यहाँ ठहरानेपर आपको मार सहनी पड़ी यह मुझे अभी-अभी मालूम हुआ। मैं इस कार्डके द्वारा आपको सूचित करता हूँ कि मैंने वकालत और उससे सम्बन्धित सारी आकांक्षाएँ छोड़ दी हैं पुराने बातोंका परित्याग कर दिया है और अब सम्पूर्णतः कांग्रेसके कार्यमें उतर आया हूँ। मुझे नहीं मालूम था कि मेरे एक मित्रको मेरे कारण अपमानित होना पड़ा। यदि मुझे महात्माजीकी प्रतिज्ञाका पता होता तो उनके ठहरनेकी अपने बँगलेके बाहर ही व्यवस्था करता। भाई माखन लालजी अब तो गहरे पानीमें उतर आया हूँ विश्वास करो इस पथसे लौटना अब मेरे लिए सम्भव नहीं है। अब मेरे कारण तुम्हें कभी अपमानित नहीं होना पड़ेगा।' पत्रपर पता लिखा था माखनलाल चतुर्वेदी कैदी धारा १२४ ए और २० बी पोलिटिकल प्रिजनर, डिस्ट्रिक्ट जेल बिलासपुर।

सो अब मेहताजीको आपने आजका अध्यक्ष चुना है। इनसे वचन ली थी कि वे मुझे कभी अपमानित न होने देंगे और वे ही आज घेरकर मालाएँ पहनाने बैठे हुए हैं।

यों मुझसे तो हानि भी हुई है। वहीं जेलमें उन्हीं दिनों (१९२१में) हिन्दीके मधुर और गौरवशील कवि पूज्य सैयद अमीर अली 'मीर'ने बमबमड़ राज्यके दीवान होते हुए सजा होनेपर मुझे बधाई भेज दी थी और राज्यकी दीवानीसे हटाये जाकर उन्हें एक बीड़ीके कारखानेमें साधारण-सी मैनेजरी अपने मरण समय तक करनी पड़ी थी। तो यह मालाओंका बोझा मेरी हारोंका ही बोझ भर हो गया है। ये मालाएँ मेरी हारकी प्रतीक हैं।

बड़ोंसे मैं आशीर्वाद चाहता हूँ, छोटोंको मैं आशीर्वाद देना चाहता हूँ और इस समस्त समारोहमें मैं ईमानदारीसे अनुभव कर रहा हूँ कि ये पुष्प साहित्यपर भले चढ़ रहे हों, मुझपर बिलकुल नहीं चढ़ रहे हैं। उन सुहृद् चरणोंपर भले चढ़ रहे हों, जिनका आशीर्वाद मुझे प्राप्त है, जिनकी प्रेरणा मुझे मिलती रही है। उन्हींके चरणोंपर ये पुष्प हैं। मेरा वास्ता इन पुष्पोंसे बहुत कम है। समाज और साहित्यिकोंके ये पुष्प मुझपर नहीं, मेरे द्वारा साहित्यपर और गुरु-चरणोंपर पहुँच रहे हैं। ये पुष्प उन चरणोंपर चढ़ रहे हैं जिनकी उर्मियोंकी दुनिया हरी है, जो मस्तकका पानी धरतीपर उतारते हैं या राष्ट्र और मानवताके मस्तकोंपर मस्तक उतारकर एक देनेवालोंकी दुनिया बनाते आये हैं।

मैंने साहित्यकी सेवा की? मैंने कौन-सी सेवा की? अपनी उमंगोंकी भावारियोंमें 'तड़प उठना' बचपन मुझे सेवाके एहसानसे लाद दिया। मैं लिखे बिना रह ही नहीं सकता था अतः लिखता गया और जो छप गया है उससे अधिक बिना छपा जो कूड़ा-करकट पड़ा है वह क्या तिथियों-जैसा इतिहास है? घटनाओं-जैसा जन-जीवन है? परिस्थितियों-जैसा आविष्कार है? चोटी-जैसा अनन्त भूतकाल है? जी नहीं, यह सब कुछ नहीं, तुम्हारी भावारियाँ हैं, जो रीझ उठीं तो स्नेह और समर्पण कहला गयीं और खीझ उठीं तो विद्रोह कहला उठीं। विकारोंके संस्कार! जबतक जन जीवन नियन्त्रणकारी साहित्य बनते रहेंगे और जबतक जनमें आहुति, मानव प्रकृति और मानव-भूमें ज्योंकी त्यों उतरती रहेंगी तब तक अपनी सूरतपर आप फिदा होनेवाले प्रेमीकी तरह मानव कला और साहित्यकार ठगा रहेगा, बिका रहेगा। अलगावकी पूजाकी इसी भावनाके भ्रममें यदि आप मुझपर पुष्प चढ़ाकर ले दौड़े तो प्रभु, बार यह मेरा अपराध न मानिए।

साहित्य सेवा? कलाका बड़ा अटपटा स्वभाव है। मूर्ति और चित्रको देखिए, यही आयाम लिये हैं कि दुनियाके किसी कोनमें जगह भेजिए

सभी पढ़ सकेंगे। जिसमें आया हुआ आख्यान और मूर्तिपर उतरी हुई करुणा-विगलित नारी, किसी देशमें ले जाइए, सब पढ़ लेंगे सब समझ लेंगे।

संगीत और नृत्यको लीजिए काव्यका वह क्रियाओंपर उतरना एक संयम और सूक्ष्म विवेकोंका पाठोंपर, मुद्राओंपर चरणोंपर जीवन और कहरके साथ संगीतकी भावनाओंमें घुलकर तालकी तरंगोंपर यों उतर पड़ना जब देखिए कि जिस देशके संगीतपर नृत्य और गान उतरा है उस देशकी सीमा तक नृत्य और गानको समझने और पहचान होनेकी आनन्दमयी पहचान उतर पड़ी है। राष्ट्रकी सीमा तक इसका कोई रक्षक नहीं चाहिए कि इसे लोगों तक पहुँचाये इसकी कोई वकील नहीं चाहिए कि लोग अनुगत हो उठें।

किन्तु समस्त सीमाओंको रखकर भी साहित्य अभागा और वह जब मैंने लिखा — काव्य है, कहानी है नाटक है उपन्यास है पद्य-काव्य है किन्तु सब, ये सब कितने मोहताज कि भाषाके सीमान्तके बाहर इनसे भाषामें इनकी कोई पूछ नहीं जबतक इनका कोई पढ़नेवाला नहीं जबतक इनका अनुवाद न हो जाये। साहित्य देश-व्याप्त होनेके लिए ही अनुवादका मोहताज है, तब उस समय क्यों न होगा जब उसे विश्व-व्याप्त होना हो।

मेरे कहनेका मतलब यह था कि चित्र और मूर्ति बनाते तो कलाकारोंकी बरीक विश्व-व्याप्त होती नृत्य और संगीतमें समर्पित होते तो कलाको बरीक राष्ट्रीय देश-व्यापिनी होती। साहित्यिक पंथमार्गी होनेमें तो अनुवादकी लाचारियोंमें भाषाके बन्दी-खानेमें बन्द एक बन्दोंका ही पथ ही मैंने ग्रहण किया और वहीं न सका। रह-रहकर किसी चिड़ियाका एक पैर मेरे लाचारियोंमें पानीहासीको तरह लाता रहता

जानत की कलम उठाने ने
कायथ ली नाम की बनाने ने

थी ख़ामोशी बयान से अच्छी
बात जो हो, कहीं ठिकाने से।

मुझसे आप पूछें तो मैं तो आपके गुणगानका गायक हूँ। यदि सुहृद् और सज्जनोंका स्नेह प्रभुका समर्पण और राष्ट्र-प्रभुका चरण वन्दन कभी हो गया हो तो मुझपर मुझके जीवन पारायणका गौरव लेकर न दीजिए मेरा पारायणका अधिकार ही बस है। जीवन-पारी तो मेरा आराध्य है।

वर्षगाँठ समारोह मकोला
१९४८

कवि-कुल-गुरु कालिदास

कालिदासपर इतना साहित्य लिखा गया है तथा विदेशके अनेक देशोंके अनेक विद्वानोंने कालिदासपर इतने शोध कर रहे हैं और आज भी कर रहे हैं कि उन अधिकारियोंके कार्योंको देखते हुए मेरा कुछ कहना निरा बचपन मालूम होता है। श्री तुलसीदासजीका यह वचन प्रसंगको यथा-पूर्ण कहनेका बल देता है कि —

मम जानत प्रभु प्रभुता सोई,
तदपि कहे बिनु रहा न कोई।

अतः मैं भी इस कठिन विषयपर कुछ कहनेको प्रस्तुत हूँ किन्तु बहुत डरकर ही कहना चाहता हूँ। विद्वानोंमें यह विवाद है कि महाकवि कालिदास या तो ईसाके १०० वर्ष पहले हुए या ईसाके १०० वर्ष पश्चात् इनके कालमें और उनके स्वदेशी और परदेशवासी यह माननेके लिए बाध्य हैं कि महाकवि ईसाके पूर्वकी तीसरी शताब्दीके बाद अथवा ईसाके पश्चात्की ५टी शताब्दीके पूर्व हुए। विद्वानोंने यह भी चर्चा की है कि महाकवि कालिदासका जन्म उज्जयिनीमें हुआ अथवा कश्मीरमें और उनका अधिकांश मत उज्जयिनीके पक्षमें व्यक्त हुआ है। इसी तरह उनके ग्रन्थोंकी फेहरिस्त बनाते समय, जैसा कि होता आया है किसने ही ग्रन्थोंको महाकवि कालिदासरचित ग्रन्थ कहा गया है। किन्तु अधिकांश विद्वान कुमारसम्भव और रघुवंश महाकाव्योंके, शाकुन्तल और विक्रमोर्वशीय नाटकके मेघदूत और मालविकाग्निमित्र इन रचनात्मक काव्योंके और ऋतुसंहार नामक संग्रहके रचयिता ही महाकविको माना है। 'रघुवंश'-जैसे महाकाव्यमें महाकविने रघुवंशका ही वर्णन किया है।

रघुवंश नाम भी वाल्मीकि रामायणसे लिया गया है। वहाँ वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डके तीसरे अध्यायके ९वें श्लोकमें कहा गया है कि —

रघुवंशस्य चरितं चकार भगवान्मुनिः ।

इसी तरह उस बालकाण्डके १०वें अध्यायके ११वें श्लोक में —

कुमारसम्भवश्चैव धन्यः पुण्यस्तथैव च ।

लिखा गया है। इससे स्पष्ट व्यक्त होता है कि रघुवंश और कुमारसम्भव दोनों नाम और उनके कथानकोंकी प्रेरणा वाल्मीकीय रामायणसे प्राप्त की गयी है। यों सच तो यह है कि भारतीय जीवनमें जिन-जिन ग्रन्थोंका बहुत बड़ा महत्त्व है वे हैं वाल्मीकीय रामायण, श्रीमद्भागवत तथा महाभारत। कथाके वर्णनमें जो आकर्षण, जो क्रम, जो प्रबन्ध-बन्धन और जो विशालता चाहिए उसका सम्पूर्ण रूप वाल्मीकीय रामायणमें दिखाई देता है। वाल्मीकिने अनुष्टुप्-जैसे छोटे-से छन्दको जितना रसग्राही, व्यवस्थाबद्ध और प्रभावपूर्ण बना दिया है, उससे उनकी चतुरताका ही पता नहीं चलता, उनकी कमनीय रसग्रहण शक्तिके दर्शन हुए बिना भी नहीं रहते। समाज-रचनाकी दृष्टिसे मानव विकारों (स्त्री और पुरुषोंके रूप, उनके द्वेष, प्रेम, आपसमें होनेवाली खटपट) और नारीके असहाय आँसुओंको आप वाल्मीकीय रामायणमें देख सकते हैं। वहाँ आप नगर, पर्वत, नदियाँ और समुद्रका भी वर्णन पायेंगे। वे यदि ऋषियोंके आश्रमोंकी याद रख सकते हैं तो ऋतुओंके उतार-चढ़ावके वर्णन-जैसी बातें और युद्धके वर्णन-जैसी अप्राप्य वस्तुओंको भी नहीं भूले। लगता है अलंकार, उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक और वक्रोक्तिको द्वारा प्रदान करनेवाली प्रतिभा उनकी कलमपर खेलती रहती थी। सुन्दर काण्डके तीसरे अध्यायमें लंकाका वर्णन अयोध्यासे कम गौरवके साथ नहीं किया गया है। रामायणमें राजनीति है, समस्याओंका प्रयत्न है, यात्रा है और बीच बीचमें नित्य व्यवहारमें आ सकनेवाली सुभाषित रत्नोंकी छटा। इसलिए कला-सम्पन्न महाकाव्योंके इस महान् उद्गमकी गंगोत्री पाकर कवि-कुल-

पर कालिदास-जैसे महाकविने कथाकी इस पवित्र अन्तर्कथामें स्थान नहीं दिया ऐसा कौन कहेगा कौन सुनेगा और कौन मानेगा। कालिदास-ने तो अपने रघुवंश काव्यमें महाकविके इस ऋणको स्वीकार भी किया है किन्तु जब रघुका वंश कालिदासके हाथों पड़ा है जब उनकी कलमकी नोकपर आया है तब मानो उसका इतिहासत्व धुल गया है और निखरकर काव्य रस सम्मुख खड़ा हो गया है उस समय लगता है कि प्रत्येक कथा मानो किसी कलाकारकी मुहताज है कि यदि वह छू दे वह जीवंत हो दे वह उसे ममतासे देख ले तो वह कथा मानव-रुचिमें शताब्दियों जीने और अमर रहनेका प्राण पा ले। प्रत्येक वर्णन पढ़ते समय हमें यह न भूल जाना चाहिए कि लगभग १५०० वर्षोंसे २००० वर्षों पहलेकी समाज-रचना किस तरहकी थी तभी हम महाकविकी रचनाके साथ रसग्रहण करनेके साथ ही उसका न्याय भी कर सकेंगे।

यों तो यह वही उज्जैन नगरी और भगवान् महाकालके दर्शनके लिए कोटि-कोटि नर-नारी दर्शनार्थ आते हैं तथापि उज्जैनके समारोहों मकानों खिड़कियों ललनाओंकी नायक-नायिकाओंकी क्रीड़ाओं और घर-घरसे अमर की गुणगाथा वर्णन तो कालिदासके पास ही मिल सकता है। सिद्धवर (अब स्वर्गीय !) श्री वृन्दकिशोर चतुर्वेदीका यह कथन बहुत प्यारा मालूम देता है कि— रघुवंशमें इन्दुमतीके स्वयंवरका वर्णन करते हुए कालिदास ने अवन्तिनरेशका एक बहुत सूक्ष्म किन्तु भावपूर्ण वर्णन किया है। तीक्ष्ण धातुवाले विचार-चक्रवाके मध्यकटिप्रदेशवाला अवन्तिनरेश एक प्रतीत होता है मानो विश्वकर्माने अत्यन्त तपस्वी सूर्यको यन्त्रपर रखकर काट-छाँटकर सुन्दर बना दिया है। वही कहते हैं कि मेघदूतमें कविका अवन्तिका प्रेम उमड़ पड़ा है। मेघदूतमें वह श्लोक है जिसमें कि अवन्तिका अर्थात् उज्जयिनीके बाजारका वर्णन है। उन्हींके शब्दोंमें उसका अनुवाद है —

'बाजारमें दुकानोंपर लगे हुए मोतियोंके असंख्य हार करोड़ों शंख सीपियाँ एवं कान्तिवाली पन्नोंकी मणियाँ और मूँगोंके ढेर देखकर यही

प्रतीत होता है कि समुद्रके रत्न बाजारमें आ चुके हैं। समुद्रमें केवल जल-ही जल रह गया है।

किन्तु मेघदूत काव्यमें तो कवि-कुल-गुरुने उज्जैनको निहाल कर दिया है। महाकविके समयमें उज्जैन बड़नगरकी सड़ककी ओर लगभग चार कोस तक बसा हुआ था। वे कहते हैं 'हे मेघ तुझे उत्तर दिशाको जाना है क्योंकि तू अलकाका जानेवाला है। उज्जयिनी पश्चिममें है। टेढ़ा मार्ग होनेपर भी बिना उज्जैनके महल देखे हुए तू आगे मत बढ़ना।" कविका कथन तो है कि —

"विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि।"

आगे उस नगरमें रहनेवाली नारियोंकी बिजलीकी चमकसे चकित हुए चंचल कटाक्षोंके नेत्र-रसका यदि आनन्द न लिया तो तेरा जन्म ही व्यर्थ होगा। राजा लक्ष्मणसिंहजीने इन दो पंक्तियोंका अपने मेघदूतके अनुवादमें इस तरह लिखा है —

चंचल चितवन नारी नयनान क
बिज्जु छटा चकचौंध भरे छिन।
जो न लख्यो तव लोचन तैं,
इक लाहस देह धरहि फिरे तिन।

इस तरह यदि अवन्तिका अर्थात् उज्जयिनीने कालिदासको अपने पास रखकर अपने महान् सौभाग्यका अर्जन किया है तो महाकवि कालिदासने भी उस महानगरीका वर्णन करके अपनी लीला भूमिके ऋणको बहुत अच्छे रूपमें अदा किया है उस कालिदासने जिसने देश काल और पात्रसे अपने कृतकी कोई तिथि वार, नक्षत्र व्यक्ति और स्थानके भौगोलिक ऐतिहासिक और समयके कोई चिह्न पीछे नहीं छोड़े हैं कि जिनपर ज्यों-ज्यों शोध और ज्ञान बढ़ता जाता है विद्वानोंमें मतभेद बढ़ते जाते हैं। इस समय हिमालय और गंगाके समान कवि-कुल-गुरुने अपनी

क्रीड़ा-भूमि अवन्तिका पुरीको बहुत ही अच्छे शब्दोंमें अमर कर दिया है। ऐसा लगता है मानो मानस-भूमिकी इस पवित्र नगरीकी धूलमें-से जिसके कनको आज भी कालिदासकी सुगन्ध आती है। और पौरांगनाओंका रूप चाहे कश्मीरमें सुषमा-मय हो चाहे हिमालयकी ठण्डी तराइयों और सिन्धुकी घाटियोंमें किन्तु महाकवि कालिदासने तो उज्जैनकी पौरांगनाओंका वर्णन करके मालवनारियोंकी विमल रूपगर्विता छविको अमर बना दिया है।

जिन दिनों मैं बिलासपुर जेलमें सन् १९२१ में बन्द था उन दिनों एक दिन स्वर्गीया श्रीमती सुभद्राकुमारीके पति स्वर्गीय ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान जबलपुरसे अनेक पुस्तकोंके साथ राजा लक्ष्मणसिंहजी-द्वारा अनूदित कालिदासका शकुन्तला नाटक भिजवाया। मैं उन दिनों अस्पताल वार्डमें रखा जाता था। रातमें पढ़नेके लिए कुछ समयके लिए लालटेन दी जाती थी। उन दिनों वहाँके डिप्टी कमिश्नर एक अँगरेज सज्जन थे उनका नाम था मी डेवर। वे रातको कभी बिलासपुर जेलमें चले आया करते थे तो उस दिन भी आये। मुझसे पूछा क्या पढ़ रहे हो? मैंने उनसे कहा 'शकुन्तला' पढ़ रहा हूँ। उन्होंने अँगरेजीमें कहा It is a little bit Unnatural [illegible] उनके इस कथनसे धक्का लग गया। उनसे पूछा क्यों? मी डेवरने कहा 'भला किसी मछलीके पेटमें भी कोई अँगूठी मिल सकती है?' मैंने अनायास उत्तेजित होकर कहा आप मर्चेण्ट आफ वेनिसको भूल गये। भला कोई अपने रुपयोंके बदलेमें किसीके अंगका मांस काटनेको तय कर सकता है? मि० डेवरने कहा शायद वह युग ही ऐसा था जिसमें लोग ऐसी बातें लिखते थे। मैंने निवेदन किया कि मछलीके पेटसे हाथी निकलनेकी बात तो कालिदासने नहीं लिखी। मुझे तो यह बहुत स्वाभाविक मालूम होती है। किन्तु आज मैं मि० डेवरकी प्रशंसा करता हूँ कितने भारतवासियोंने कालिदासके ग्रन्थोंको पढ़ा होगा? हमारी पाठ्य-पुस्तकोंमें कालिदासपर कितने प्रान्तोंमें पाठ रखे गये हैं। मि०

देखने कालिदास पढ़ा हो या। और इसी समय कहूँ कि हमारे देशकी अध्ययनकी सूची देखिए कि हमारे देशके विश्वविद्यालयोंके स्नातकोंमें भी शायद ऐसे बहुत कम हों जो गेटे और शेक्सपियरको न जानते हों और जो कालिदास और भवभूतिको जानते हों।

सरल सन्तोषके लिए मान लें कि कालिदास ईसाकी पाँचवीं शताब्दीमें पैदा हुए। रघुवंशमें उन्होंने इक्ष्वाकुवंशके राजघरानेका ही वर्णन किया है। आदिकवि वाल्मीकिने जिस इक्ष्वाकुवंशमें सीता और रामका विशेष वर्णन किया है उसी वंशके नामके महाकाव्यमें कालिदासने पीढ़ी-दर-पीढ़ी उस वंशका विशेष वर्णन किया है किन्तु जब हम वाल्मीकिके काव्यसे उद्भूत कालिदासकी रचनापर विचार करने लगते हैं तब जहाँ हमें भूगोल इतिहास और सांस्कृतिक चरित्र विषयकी अनेक जानकारियाँ मिलती हैं वहीं हम कालिदासकी रचनासे मिलनेवाले आनन्दको सर्वथा भूल जाते हैं। मानो उस समय सन्तोषसे कहनेको हो पड़ती है कि आजसे १५ ० १६०० वर्ष पहले तक हमारी संस्कृतिमें काव्य इतना आनन्द दे सकता था जितना कि कालिदास और उनके समयके आस-पासके कवियोंकी रचनाओंसे मिलता है। जो प्रतिभा इतनी शताब्दियोंके बाद भी बूढ़ी नहीं लगती उसकी उत्तमताके विषयमें सन्देह कैसे हो सकता है। कालिदासकी रचनाओंको पढ़कर ऐसा लगता है मानो वे किसी व्यक्ति अथवा कुछ व्यक्तियोंसे अत्यन्त प्रभावित होकर लिख रहे हों और वे व्यक्ति पुराने जमानेके न होकर उनके जमानेके ही हों। अचरजकी बात तो यह कि भारतीय-साहित्यमें कालिदास कविके नामके सिवा अन्य किसी रूपमें अवस्थित नहीं। यद्यपि यह सुना जाता है कि वे राजा विक्रमादित्य अर्थात् चन्द्रगुप्त द्वितीयके राजदूत भी थे। महाभारतके शान्ति पर्वमें स्पष्ट ही लिखा है कि—

सर्वे त्यागा राजधर्मेषु दृष्टाः
सर्वा दीक्षा राजधर्मेषु युक्ताः।

मग्ना त्रियो राजधर्मेषु बोध्याः,
सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टाः ॥

परन्तु कालिदास की रचनामें कुमारसम्भव पढ़ते समय—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य
स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥

पृथ्वीके मानदण्ड नगाधिराज हिमालयका वर्णन कालिदासकी वाणीमें सुनते यह ध्यान ही नहीं रहता कि हम किसी राजनीतिज्ञका लिखा वचन पढ़ रहे हैं। यद्यपि कालिदासकी रचनाओंमें, उनके हर ग्रन्थमें ऐसे वचन हैं जिन्हें नीतिकारोंने उनसे उद्धृत किया है। और जो लोगोंकी जीभपर हैं जैसे रघुवंशके वचन —

पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते

अथवा कुमारसम्भवका यह वचन—

न केवलं यो महतोऽपभाषते,
शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ।

अथवा मेघदूतका यह वचन —

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

या शकुन्तलामें कही हुई यह वाणी—

सहजं किल यद् विनिन्दितं
न खलु तत् कर्म विवर्जनीयम् ।

यों कालिदासकी रचनाओंमें ऐसे स्थल जहाँ-तहाँ भरे हैं परन्तु मानवकी नाद बहुत व्यापक करनेवाली शोभामें जब इन्दुमतीकी मृत्युका वर्णन किया जाता है और राजा अजके विलापको हम पढ़ते हैं अथवा जब राजा दिलीप कामधेनुकी पुत्री नन्दिनीको चराने जाते हैं तब

कालिदासकी प्रतिभापर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। इसी तरह जब इन्दुमतीके स्वयंवरका वर्णन कालिदास करते हैं तब किसके दाक्षिण्यकी पुकारपर मानो उनका हृदय बोल उठता है।

तब अंगराजके ऊपरसे दृष्टि हटाकर इन्दुमतीने कुमारी सुनन्दासे कहा — आगे चलो। ऐसा नहीं कि राजा सुन्दर न था ऐसा भी नहीं कि उसकी वह सुन्दरता इन्दुमती भले प्रकार देख न पायी हो पर (बात केवल इतनी है कि) लोगोंकी रुचियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं।

मृत्यु, विलाप सन्देह — इन सबके बीचमें हम इनको बहते देखते हैं और रस-धीरा धारी बिना ठहरे आनन्दका कोष उँडेलती चली जाती है। कालिदासने दाम्पत्यके दोनों अंगोंका वर्णन किया है — पुरुषार्थका भी एवं प्रेमका भी और इतिहासके भाग्यवान् पात्रोंमें-से अविनश्वर रसकी धारा बहने लगती है। कालिदासके नाटकोंमें इतिहास खोया जाता है किन्तु वे प्रथम और अन्तमें नाटक हैं। कालिदासकी वाणी अपने-आपमें एक अद्भुत वेणी बन गयी है। वहाँ हास्य अवन्मेकी तरह नहीं टूट पड़ता विलाप रस्म अदायी करने नहीं आता और परिणाम अन्तमें छिपाकर रहनेके लिए नहीं रखा जाता। कालिदासकी रचनामें क्षमा है कलाबाजी नहीं। किन्तु शृंगार-रसका इतना मस्त गायक संस्कृति और धीरजके किनारोंके बीच स्नेहकी धाराको बहाकर ले जाता है, यह देखकर अचम्भा हुए बिना नहीं रहता। प्रायः यह होता है कि परिस्थितियाँ कविको रचनाके छोरमको खाती जाती हैं। लगता है मानो परिस्थितियोंमें पड़कर कविकी वाणीका तेज उतर गया है किन्तु कालिदास का तेज कहीं भी उतरा नहीं लगता। कालिदासने अपने पात्रोंके चरित्रों- में परिवर्तन नहीं किया। लगता है मनुष्यके जीवनको सम्पूर्ण ही ग्रहण किया है उसे विरलोंमें विभाजित नहीं किया है। मानव-जीवनके अत्यन्त पारखी कालिदास इसलिए कहे जायेंगे कि मानव और मानवीय मनोभावोंको व्यक्त करनेमें उन्होंने अनेक मनोदशाओंका वर्णन किया है। आज भी

यदि कण्वके आश्रमसे विदा होती शकुन्तलाका कोई वर्णन पढ़ता है तब उसे शकुन्तला और उसका सौन्दर्य याद नहीं रहता वह बूढ़े कण्वके बहते हुए आँसुओंमें डूब-डूब जाता है। सच बात तो यह है कि उन लोगोंने भी कालिदासको खूब समझने और उनकी कलाको परखनेका प्रयत्न किया है जो संस्कृत भाषा बिलकुल नहीं जानते। इंग्लैण्डमें रूसमें जर्मनीमें कहाँ उनकी कलाके पारखी नहीं! कलाकारकी खूबी किसी स्थितिको अनुभव करनेमें तो है ही, उससे अधिक तो उस अनुभवको कागजपर उतारनेमें है। संगीतकी तरह जब कलाका रस स्वरों और व्यंजनोंके वाहनोंपर बैठकर श्रोता या पाठकके मनमें नयनमें और जीवनमें हिलोर सी उठाने लगता है तब उसके हाथसे भावना आप-आप छूट-छूट पड़ता है। उसे भान ही नहीं रहता कि वह ईसाकी पाँचवीं शताब्दीमें है या विक्रमकी बीसवीं शताब्दीमें। मेघदूतको छोड़कर कालिदासकी रचना रसनाका सरस नहीं। उसकी सुकोमल और अति मधुर बनता है। ऋतु-संहारमें ऋतुओंपर परिस्थितियोंके आरोप हैं बहुत मीठे बहुत मोहक सम्पन्न मादक। किन्तु कुमारसम्भवमें जब वे अपने देवता शिव और पार्वतीका वर्णन करते हैं तब लगता है कि कालिदासको अवकाश नहीं है कि सौन्दर्यके सिवा और किसी वस्तुकी ओर आँख उठाकर भी देख सकें। जिस तरह कहा-सुनीके बाद आत्म-ग्लानि और क्षमायाचना बिना बुलाये चली आती है और जैसे कुरूपके भावरी हिरनोंका पता आँसुओंसे देने लगाई है उसी प्रकार स्थितियोंका परिवर्तन उनको रस भावनाको घन घन घोलता पल-पल उफनाता-सा रहता है। सच भी है यदि कविकी वाणी रमण अभिभूत नहीं है तो तिथि-वार-अवसरोंकी बात और भावी-भावनाओंके ग्रहण-क्रियाका भय ही क्या रह जाता है?

यद्यपि पश्चिमोंने कालिदासकी उपमाओंको श्रेष्ठ बताया है। उनके उदाहरण उनकी कविताएं निःसन्देह भरे हुए हैं। मुझ तो उनको रचना-के पात्रोंके साथ समस्त जीवनको निबाहते हुए भी कवि कुल-गुरु जो

सहानुभूति दिखायी है, बहुत प्रिय लगती है। लगता है मानो अपने पात्रोंके स्वभाव-वत्सल अपनी कलमको उन्होंने अपने पात्रोंकी जीभ तक बना दिया है। यह भी कम गर्वकी बात नहीं कि शृंगारके परम गायक होकर भी उनके नीति-वचन और सूक्तियाँ उनका प्रकृति वर्णन और बस्तियोंसे नगाधिराजों तक उनकी कविताकी आश्चर्यजनक पहुँच, शकुन्तला-जैसी विश्व-देवताका निर्माण, मेघदूतमें मानवात्मा महाकाव्य। स्वयं उनके द्वारा विभिन्न छन्दोंका उपयोग, इनको देखनेके बाद ऐसा लगता है कि कालिदासकी रचनाएँ अध्ययन मात्र नहीं हैं, वे अपनेमें युगके ज्ञानकी विस्तृत कल्पनाओं भी लिये हुए हैं। इससे वे जगर-कोयलसे ऊपर विश्व-कोष-जैसी बन गयी हैं। उधर भारतने तीन उत्सव मनाये हैं जिनसे हम भारत-वासियोंके स्वभावका प्रकटीकरण होता है। पहला है बुद्ध जयन्ती, दूसरा है स्वतन्त्रता संग्राम अर्थात् १८५७ की क्रान्ति और तीसरा यह कालिदास उत्सव है। रूप है इसका सम्बन्ध मालवाकी प्रसिद्ध नगरी उज्जयिनीसे है। इस तरह विश्व-कामनामें भारतके इस मध्य भागमें इस मध्यदेशने कालि-दासके रूपमें हिस्सा लिया।

कालिदास उन दिग्गजोंमें आते हैं जिनमें छोटी-मोटी परिस्थितियोंमें छोटे-मोटे कवि तुकें जोड़ते, तुकें मरोड़ते और तुकें तोड़ते दृष्टिगोचर होते हैं। इस तरह कालिदासकी महत्ताका एक सिरा उन्हींकी कविताके कारण संसारके कोने कोनेमें व्याप्त होता है तो उसका दूसरा कोना भारतके समस्त देशमें व्याप्त उनकी रचनाकी लोक-प्रियताके रूपमें देशमें एकता स्थापित करते हुए उन छोटे-छोटे कवियोंकी झोंपड़ोंके सामने नरा है जो आज लिख रहे हैं, लिखना सीख रहे हैं और इस तरह भारत-मेदिनी तथा मध्यदेशके विभिन्नताओं और भूखण्डोंको गौरवान्वित कर रहे हैं। कालिदास की रचना यह भी सीख करती है कि हम देशकी रचनाका कोना समग्र अध्ययन और अनुभवको रचनाके प्यालोंमें भरकर अध्ययन और अनुभव प्रदान करता है न कि दोनोंके मत्त होकर बोरस हो पड़ना। अतः कालि-

उसका उत्सव मनानेवाली पीढ़ी आज जब कालिदासकी ओर मुड़े तब उसके अध्ययनपर, उसकी पहुँचपर मानव-मानवी पशु पक्षी तथा पौधों और लताओंके प्रति रहनेवाली उसकी सहानुभूतिकी ओर एक बार नजर जरूर डाल ले। वह अपने विलासों और कौशलोंको विरहके छिछोरेपनसे पराजित होने देनेके बजाय कालिदास-कालीन रसमें क्यों न डुबोये ?

यह सच है कि उसके युगमें रचनाओंका रूप भी बदलेगा किन्तु पृथ्वीमें यदि प्रति वर्षके मौसममें उगनेवाली घासें हैं तो कभी भी बूढ़े न होनेवाले सूर्य-चन्द्रमा भी हैं। मैं कालिदास-उत्सवके आयोजनको देखना परम सौभाग्य मानता हूँ और इसकी ओर देश तथा विदेशका ध्यान खींचनेवाले संयोजकोंकी भूरि भूरि प्रशंसा करता हूँ।

कालिदास समारोह, उज्जैन
१९५८



अभिभाषण

स्वागतकारिणीके सभापति महोदय, प्रतिनिधिगण और बहनो तथा भाइयो!

आपने मुझे अध्यक्षता देकर शायद अपना एक वर्ष बरबाद कर लिया। मेरा स्वास्थ्य कैसा रहता है, आप जानते हैं। इधर एक वर्ष मेरा स्वास्थ्य बहुत ही खराब रहा। आपके सहयोगका बल पाकर ही शायद मेरी कमीकी पूर्ति हो जाये। साहित्यके सभापतिपदपर बैठनेका बल तो मुझमें नहीं है, उसके दरवाजे तक आपकी आज्ञासे आ गया हूँ। आपकी इस कृपाके लिए धन्यवाद।

संस्कृतिकी माँग है कि जीवनको देखते समय हम स्मरण रखें कि मृत्युका अपमान नहीं हुआ, रोगियोंकी उपेक्षा नहीं हुई, संकट-ग्रस्तका उपहास नहीं हुआ, निर्बलताके प्रति हम उद्दण्ड नहीं हुए और सूली तक चढ़ती बलि-भावनाकी ओरसे हमने भयभीत होकर आँखें नहीं मूँद लीं।

रवीन्द्रको खोकर हमने शताब्दियोंकी प्रतिभाका वैभव संचय खोया, भारतीय साहित्यका शान्त धाम खोया, भारतीय भाषाका विश्व-सन्देश, जिसके बोलनेवाला मानो स्वयं भारतवर्ष खो दिया। हमने प्रसाद और प्रेमचन्दको खोकर जो कुछ खोया वह एक वर्षकी कसक नहीं है, भय है कहीं एक सदीकी कसक न हो। सूरदास और मीराकी मिठासको हम तीन शताब्दियोंमें नहीं जीत पाये, प्रसादकी मिठासका निखार हमसे न जाने कैसे लौटा जा सकेगा? और प्रेमचन्द? हमारे देहाती जीवनको नागरिक जीवनके साथ मिलाकर सम्पूर्ण राष्ट्रपर एक बानीका अभिषेक करनेवाली हमारी लोक-कथा धारा रुक गयी। और जिन दिनों हरिहरकी

स्थापत्य-समिति टूट और बन रही थी उन्हीं दिनों हमने अपनी भाषाका एक राष्ट्रीय कवि खोया जिसपर हमारी वाणीको उन दिनों अभिमान था है। जब देशभक्तिपर प्रथम चलाना करनेपर कठोर संकटोंको न्योतना होता था। इस वर्ष हमने पण्डित माधवरावजी सप्रेके बरद शिष्य और हिन्दीके प्राण-साधक रायपुर निवासी पं० रामदयाल तिवारीको खोया। प्रतिभाकी असमयमें अकालके पहले ही यमकी आखमें पकड़ लिये जानेवाले ईश्वरचन्द्रको खोया—अपन उत्तम साहित्य-सेवक और प्रकाशक श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमीके पुत्रको। इन्दौर राज्य मालवा और मध्यप्रान्तके सुधी साहित्यिक और लोकोपकारी श्रीयुत सूरजमलजी जैनको खोया। बुन्देल-खण्डकी भजनोंसे हिन्दी-साहित्यको गौरव-पूरित करनेवाले श्री घासीराम व्यासको खोया। और बुन्देलखण्डके गौरव तथा हिन्दके सुकवि द्वारका प्रसादजी 'रसिकेन्द्र' को खोया। इसी वर्ष हमने साहित्य और राष्ट्रसेवी श्री कन्हैयालालजी पोद्दारको खोया। आइए, इन और उन सबको हम श्रद्धाके फूल चढ़ायें जो हमसे बिदा हो गये हैं।

यह वर्ष संसार भरके लिए संकटका है। अपने अपने आदर्शों और देशोंकी रक्षा करनेके लिए देशकी महान् जातियोंने अपने सिर संकट न्योत रखे हैं। विश्वमें सत्य घुट उठा है रक्त बह उठा है। सिर सस्ते हैं ईमान महँगा हो गया है। प्राण हथेलीपर हैं और शान्तिका शब्द मानो प्रलय कोलाहलमें भी भाग निकलना चाहता है। यदि साहित्य जीवनसे विपरीत कोई वस्तु नहीं है तो हम इस अधिवेशन और इससे बाहर जाते-जाते देख रहे हैं कि आज वे सुविधाएँ हमारे पास नहीं हैं जो यहाँ एकत्रित हो जायें यहाँ सम्मेलन बहुधाम करें। और इनके सम्पर्कमें पड़े आपके द्वारा लाया हुआ यह सभापतित्वका सम्मान भावावेशकी तरह केवल कठोर कर्तव्य और दायित्व ही रह गया है।

इस वर्षके हमारे सम्मेलनके अध्यक्ष महोदय अपने भावनोंकी रूप रेखाका डोलती समय और अपने आगमन और आपाधापी घड़ियोंको दूर

फेंककर देशके भिन्न-भिन्न स्थानोंपर जाकर हिन्दीका अलख जगाया — और हिन्दीके राष्ट्रभाषा-स्वरूपपर अपना मत व्यक्त किया। मुझसे यह सेवा कैसे बन पड़ेगी? अतः यह मंच ऐसा लगता है, मानो मैं अपने स्वास्थ्य और अपनी कठिनाइयोंको देखते हुए इसके कामका न होऊँ।

वस्तुतः साहित्यके पीछे अनिवार्य चला आ रहा है। जगत्के ऋषियोंने लोक-जीवनमें फेर-फार करनेके लिए जो कुछ कहा वाणीके द्वारा वही वाणी संगृहीत होकर साहित्य कहलायी। साहित्यमें दो धाराएँ रही हैं। एक वे हैं जिन्होंने बहुत कहा है और तुलसीदासजीने जिनकी ओर — 'तदपि कहे बिनु रहा न कोई' कहकर संकेत किया है। वे ज्ञानके धनी। दूसरे वे हैं जिन्होंने बहुत सहा है। वे अनुभवके धनी। ज्ञान अपने प्रति सजग होता है और अपनी प्रखर पहुँचसे अक्षरोंमें भी अपनी सीमा-बद्धताकी लाचारी व्यक्त किया करता है। अनुभव अपने अभिमतमें अपनी सीमा खो चुकता है अतः वह बोल चाहे बहुत कम पाये संगीतकी तरह उसके आनन्दमें विराम नहीं होता। ज्ञानियों-का हम विद्वान् कहते हैं। अपने-आपको खोये हुए मनीषियोंको हम सन्त कहते आये हैं। शब्दोंमें बंध जाते हैं और चाहे वे शब्दके ही बन्द क्यों न हों अपनेको आगे रखे बिना वे अपनी आकार रख किसीमें सिद्ध नहीं कर पाते। संगीत है आवाज ही है स्वर ही किन्तु शब्दका मुहताज नहीं। वह शब्दको काफी पीछे छोड़कर अपनेको पाया हुआ-सा आगे बढ़ता है और क्योंकि अस्तित्वकी तरह उसका आनन्द नाम रहित होता जाता है। इसी ढाम मिलकर जगत्को जो कुछ दिया है उसे हम साहित्य कहते हैं। विश्व-निर्माताकी तरह साहित्य निर्माताकी कुछ जिम्मेदारियाँ और माताकी तरह निर्माताके पयस कुछ लाचारियाँ भी हैं। किन्तु इस मातृत्व और निर्माणृत्वसे आगत कलाकार जैसे ऊब पड़ा है। अब साहित्यिक कह रहा है कि उसे लालन-पालन और जीवनकी देखभाल निभानेके लिए छोड़ दिया जावे मानो वह विचार

धनके तपोमय जीवनसे ऊब गया है और उसे विश्राम चाहिए। विश्राम चाहिए — इसलिए कि उसकी स्पर्धामें विश्वकी तीन शक्तियाँ खड़ी हुई हैं।

एक इंजीनियर है जिसने सिद्ध किया है कि उसके आविष्कारोंकी प्रभुताके द्वार कलाकार असहाय है। मशीनसे बने खाद्य पदार्थ मशीनसे निकलनेवाले ग्रन्थ मशीनसे सुनाई पड़नेवाला संगीत मशीनसे चलनेवाला संवाद मशीनसे पर्देपर फेंके जानेवाले अभिनय इन्हें साहित्य-निर्माताके सामने रखकर इंजीनियर मानो गर्वित बोल उठा है कि कहाँ है साहित्य? क्या अपनी कलम मेरे पास रेहन रखने और मेरी मशीनोंपर कभी थमने और कभी बेदाम रोने-हँसनेके सिवा उसका कोई कर्तव्य बाकी है? इंजीनियर यहीं नहीं ठहरा। उसने अपने विनाश स्वरूपको युद्धोंके रूपमें व्यक्त कर मानव और उसके साहित्यको चुनौती दी है कि वह केवल उसकी मरघटोंपर कतार बनाकर मर जाने और मरनेको त्यौहार कहते जानेकी चीज मात्र है।

दूसरा है राजनीतिज्ञ। उसने संधि और विग्रहके क्षेत्रोंकी तरह, साहित्य और साहित्यिकोंके वेतन और खरीदनेके हाट बना रखे हैं और बाद वाली 'हरम'के ताने-बानेसे बनी अपनी चादरके नीचे विश्वकी कलमोंको बाँध देनेका आयोजन किया है। उसकी आज्ञा है कि लिखो वह जो मैं चाहूँ और वह न लिखो जिसे मैं न चाहूँ। वह फ़ासिस्ट है, वह नाजी है वह साम्राज्यवादी है वह बाल्शेविक है। वह क्या नहीं है, वह क्या नहीं हो सकता? 'कहते हैं फ़ीस लीजिए और वाह कीजिए' का स्वर — राजनीतिक और आर्थिक हाटमें बिके गरीब साहित्यिकके लिए परम सत्य साबित हो रहा है।

तीसरा है मनोविज्ञान। मानव पढ़ा हो या बेपढ़ा प्राणी होनेके कारण, मनोविज्ञानके परम उपहारों यानी हर्ष शोक घृणा मद मोह प्रेम और द्वेषसे उसकी मुक्ति नहीं है। मनोविज्ञानका दावा है कि यदि कलाकार

अन्तर्द्वन्द्वोंको नहीं छिपेगा और जीवनके विकारोंसे उत्पन्न गुत्थियोंसे भी सुलझा सकेगा तो उसका विश्वकी समस्याओंको सुलझाकर जीवित रहना कठिन हो जायगा। कलाकारके पास है तो क्या यदि वे मनोविकारोंके सुधारक कौशल नहीं है? अतः मनोविज्ञान कलाकारको अपने एक मित्र समझता है।

क्या इंजीनियर राजनीतिज्ञ और मनोवैज्ञानिकका सामना हम इसे बाध्य कर ले जायेंगे कि हमारे कलाकार ऐसे समय कचोती भावनाएँ, रसीली कविताओं और विकारकी मस्तियोंसे भिनभिनी रचनाओंको लेकर साहित्य-सृजन करते रहें? सृष्टिके धनी साहित्यिकने पशु और पक्षियों पास हुए और पत्ते पहनते हुए मानव प्राणीको अपनी सूझोंसे अपना भाग्य-निर्माण करनेके लिए आत्मावलम्बी बनाया। क्या आजका साहित्यिक यह कहना चाहता है कि मरी सड़ी हुई दुनिया कुछ ऐसी बेतरतीब बन गयी है कि इसका बोझ अब मुझसे नहीं सँभलता और कोई आकर अब इस कायदा सँभाले?

तब क्या कलाकार विश्वको इस विनाशके लिए धोखा देना चाहता है कि जिन पुरखेके नामोंके पीछे चलकर विश्व इतनी दूर तक आया और बड़ी मानवने-मानवकी विकारों-भरी परम्पराकी भीख माँगना चाहता है जो शताब्दियों गुमराह करने और आज संघर्षके दोष-अवधीरमें छोड़नेके अपराधपर विद्ध उसे गोली क्यों न मार दे?

पर बात यहींतक नहीं है। विकारोंका रसभरकर वसूल करनेवाली भावनाको हम साहित्यिकोंने प्रेमका नाम दे रखा है। और नारी इसमें विश्वको देखनेमें भर अपनी अतृप्त वासनाको साहित्यका नाम देकर भुलानेके प्रयत्नमें है। कहना कठिन है कि वह सुलझती है या और अधिक जागृत हो उठता है। नारी बेचारी रमणी ही नहीं वह दुखी भी है, माता भी है किन्तु कलाकारकी उपासना रमणी बनकर चलकर रह गयी है। क्या यह प्रेमके मन्दिरमें प्रतिमाके सुकोमल आविष्कार हैं जो सृष्टिके

बागमें पुष्पोंकी तरह असहाय सिसक-सिसककर युग-युगान्त बिताते मस्तक पर धुन रहे हैं या यह हमारा वह साहित्य सृजन है जो हमारी तरुणाईको दासू बनोंकी ओर पतनोन्मुख कुत्सित भावना सिद्ध कर रहा है ?

कदाचित् साहित्य यहीं आ ठहर गया होता । वह तो आगे बढ़ा बढ़ना उसका स्वभाव जो है । चाहिये कि स्वप्नमें बाजारमें उसने अपनी पोटलियोंका सामान बेच दिया और प्रतिभाके चाकरपनके सपने सिंगारके लिए, कागज कलम और अन्य खरीद लाया । इधर रचना तैयार हो चली उधर दाता और प्रकाशकोंकी तलाशमें उसका मन घूम चला । धन साम्राज्य और प्रभाव मानो अपने इस प्रतिभा-जीवी गुलामकी प्रतीक्षामें थे । झट हाजिर मिली बोली समझ लगी और इसने अपनी पूँजी अपने मालिककी मनोभावनाओंके हाथ बेच दी । उस समय कुछ मनस्वियोंकी कलमें यदि ऐसी हुई कि वे धनिक कहर या राज महलपर बिकनेसे इनकार कर दें और अपना कोमल या प्रखर चिन्तनके निरत वैभवको मानव-विद्रोह और मानव-विकास आपूर करनेके काममें लायें तो बिकी हुई कलमका धनी विरुद्ध इनकार करनेवाली कलमके खिलाफ षड्यन्त्रकी रचना करता है और ऐसा कुछ लिखता है जिससे आजाद कलम दण्डित हो सके । यह वैभवशालीको कोटिकी गुलाम मुनीमके नाते निर्भय कलमोंके लिए, उस कारागारका पहरेदार बन जाता है, जिसे विश्वकी सरीखाक कम्बख्त न हो उठने देनेके लिए वैभवशील शक्तियोंने बनाकर रख छोड़ा है ।

जंगलमें आग लगनेपर पूरा जंगल जलनेसे रोकनेके लिए लगी हुई आगके पासका जंगल इसलिए काटकर फेंक देना होता है जिससे उस दूरीको लाँघकर लगी हुई आग सारे जंगलको भस्म न कर पावे । अधो-मुखी साहित्यकी भड़कीली आगके साथ भी हमें यही व्यवहार करना होगा । उस आगको बहानेमें अत्यधिक निकट पड़नेवाले कुछ साहित्यको हमें स्वयं काटकर फेंक देना होगा । उस साहित्यका एकमात्र कसूर यह

है कि यह साहित्य और समाजमें लगी हुई सवनाशकताकी आगके बहुत निकट है और ऐसा भड़कीला है कि जिसके कारण लगी हुई आग बढ़ सकती है।

प्रतिभाशील साहित्यिकका पथ कडुवा भी तो है। किसी साधनाशील कलाकारपर प्रतिभाहीनताके आक्रमणका यह उचित समय होता है जब अपने क्रान्तिमय विचारोंके कारण धनिक उससे बिगड़ उठते हैं और उसे साधनहीन रखकर दारिद्र्य प्रदान करते हैं। शासन उसे कर्मियोंसे ऊपर पाकर सन्देह करता है और ऐसा कोई कष्ट नहीं होता जो उसकी सूझके प्रगमनपर उसे दिया न जा सके। ऐसे समय कलाकारके ऐसे साथी उसे अकेला छोड़ देते हैं जो अमीरीके आदी हैं और प्रभावशीलोंका शिकार करते फिरते हैं। इस तरह राज अमीर और अधिकारी लेखक गरीबीका गर्व करनेवाले प्रतिभाशीलके सम्मुख नाते एक ओर होते हैं और अधिकारी धन और लेखनके बहकावे हुए कुछ भयभीत और कुछ प्रतिभाहीन अनुयायी दूसरी तरफ। क्रान्तिमय तेजस्विताका हनन इन्हीं शक्तियोंके बीच होता रहा है। जब अकेले पड़ गये तब कलमसे क्रान्तिकी उपासनाके कुछ धीर राहगीर पतित होकर बिकनेपर लाचार हुए। जो शेष रहे उनके अस्तित्वके प्रति हम लोग इतने उदासीन कि साहित्यिक चर्चाओं और दलोंमें उनका कोई स्थान नहीं उनका कोई नाम नहीं उनका कहीं नाम नहीं।

हम नहीं जानते कि आजका कलाकार मकानमें रहता है कि कारागारमें। उसे रोटियाँ मिलती हैं कि नहीं मिलतीं। उसके परिवारकी जिम्मेदारियाँ भी उसपर हैं या वह पशुओंकी तरह गैरजिम्मेदार है!

यदि कलाकार तेजस्वी है और झुकना नहीं जानता तो उसका साहित्य नवरसोंमें-से किस रसमें भी लिखा जाता है, क्योंकि महामानव, हम उसकी हर कृतिमें दोष निकालते हैं।

हम ऐसे कलाकारोंकी कृतियोंका स्वागत पहले जान-बूझकर समाधी

उतरे तो दूसरा गद्दीपर चढ़े। यही कारण है कि बड़प्पनके खिलाफ तरुणाईका विद्रोह होता है। उच्च कलाकार तो ज्यों-ज्यों अपनी कृतमें भीगता जाता है वह स्थानोंको रोककर खड़ा ही नहीं होता अपने ममस्वी कलाकारका आशीर्वाद समझकर पीछे आनेवाली पीढ़ी उन स्थानोंको अधिकार समझकर नहीं कर्तव्य मानकर सँभालती चली आती है। साहित्य उस समय पहियाँ जीतने-हारनेका मैदान नहीं होता।

जिनकी मति चुक गयी है, कृतिके पक्षमें न कैसे उठे रहेंगे। इतिहास-के मुहाफ़िज़खानेमें उनका स्थान सुरक्षित है। हाँ यदि उनकी कृति अतिमोला है तो वह उनकी पोढीके सिरपर होवो। उन्हें शिकायत नहीं होना चाहिए कि उनकी पीढ़ी, उनकी कृतिके प्रति उदासीन है।

कुछ नवीन चाहिए—यह अत्यन्त प्राचीन माँग है। यदि इसका अब मति है तो ठीक है। मति नहीं है तो आरत है। और आरत सदा ही भली नहीं होती।

व्यक्ति-पूजामें कभी-कभी प्रतिभाहीनताकी पूजा होती है। जब कूछ मूठके नामपर आती है, लोग उसे सरलतासे त्याग देते हैं किन्तु जब यह सिद्धान्तके नामपर आती है तब न त्यागें तो प्रतिमा कटती है और आत्माभिमान अपमानित होता है और त्यागें तो समाज नाराज होता है।

एक जमानेमें पूजा और नमाज़को एक कहनेवाले सन्त हमारे यहाँ थे। आज हिन्दी-उर्दूको एक कहनेवाले गुणी हमारे यहाँ हैं। पहले एकके कहनेसे दूसरेको बन्द नहीं करना पड़ता था आज दोनोंको बन्द कर तीसरे की बात कही जा रही है।

जब हम अपनतर आक्रमणशील भाषाओंकी चर्चा करते हैं तब ईंट का जवाब पत्थरसे देनेक लिए लपकते हैं। क्या कोष-हृदयके छन्द-बन्द करके भाषा और देशका अपकल्प हम स्थापित करेंगे?

आजका कलाकार इसलिए बेचैन है कि कुछ शब्द अपना मूल्य बढ़ाये बैठे हैं कुछ धारणाएँ अपना मूल्य बढ़ाये बैठी हैं। प्रेम शब्दको लीजिए।

सत्तासे अन्त तक सब उसके हकदार ! उस गरजका भय सबके मन कोनमें ही रह गया है। सेवाकी धारणाको लीजिए। कोटि-कोटि साधनोंसे भरे राज और वैभवयोगमें थोड़ा-सा सतोगुण दीखा थोड़ी-सी उदारता दीखी कि उसे हम उसे ईश्वर सिद्ध करने और साधारण जन सन्तत्व-साधनामें मर गया और हमने माना कि यह तो उसे करना ही था।

'मानस' में सीताको वनके योग्य न बताते हुए, वनके योग्योंमें यह भी बताया—

के तापस तिय कानन जोगू
जिन तप हेतु तजा सब भोगू

यानी – जिन्होंने तज दिया उनका तो रोजगार था और जो सम्पूर्ण भोगोंके बीच थोड़ा-सा छोड़े – यह छोड़ना उनका ईश्वरत्व है। जिस वर्गिका हमने समाज बना रखा है उस वर्गिका तो हमें साहित्य चाहिए ! पांवके मापका ही तो जूता चाहिए सो लायें कलाकार और बनावें !!

कलाकी कुछ धारणाएँ अपना मूल्य गँवा बैठीं। जैसे नृत्य। आनन्द मय और कला-साध्य होनेपर भी वेश्याका धन्धा ! गायन – उससे या उमराओंके या चरित्रहीन स्त्रियाँ ! अभिनय – नाच कूद करि कोम – फिसाद ! चित्रकारी – कहीं गुनाह कहीं उपेक्षा !

अभिनय ? – बनावटी जीवन है। जीवन भर कृत्रिम और बनावटी जीवन बिताते आयेंगे राजनीतिज्ञका चालबाजका स्वार्थीका धार्मिक ठग का किन्तु दान-कर अभिनयमें गुण्डाम अभवर या गृहपर ऐसा बन गए कि नकली जीवन बन गया !

हिन्दी संसारमें प्रकाशन लेखकका यमदण्ड है। अन्य देशोंमें रचनाओंके माध्यमसे ग्रन्थ परिचित होते हैं हमारे यहाँ ग्रन्थके जीवनोंके नामसे ग्रन्थ परिचित होते हैं। प्रकाशनने प्रथम दिन लेखकको प्रकटी कम्पनी व्यापारी बनकर जिस पुस्तकको मुफ्तमें दान लिया वही अब

बिक निकली तब उसका मूल्य किससे कौन वसूल करे ? उधर प्रकाशककी भी कठिनाई है। वह स्वयं नहीं जानता कि कौन-सी पुस्तक बिक निकलेगी। लेखक जगत्में अपनी कलमके बलपर साधन सम्पन्न है हमारे यहाँ कलम लेखकका अभिशाप हो रही है। हमारे लेखकको यह विश्वास नहीं कि उसके श्रमका कोई मूल्य चुकायेगा। सम्मेलनमें हम अनुभव करें कि हिन्दीकी प्रतिभाके भयंकर शत्रु वे हैं जो गरीब कलाकारका साहित्य मुफ्तमें चाहते हैं। वे ही लेखकको निराशा देते हैं कि कलाके चिन्तनको वह भूखकी ज्वालाकी आँचमें अपना धुन दिलके लिए कुपथ्यसे बढ़कर कुपथ्य समझे। हम शीघ्रसे शीघ्र हिन्दीके कलाकार की कलमका मूल्य चुकाने योग्य हों — यह प्रयत्न होना चाहिए। और ऐसी धनराशि एकत्रित होनी चाहिए जिससे हिन्दीके कलाकारके साथ ईमानदारीका व्यवहार करनेवाली प्रकाशन संस्थाओंका निर्माण हो सके।

हिन्दीके राष्ट्रभाषा होनेका उत्तरदायित्व यह भी है कि हम साहित्य सम्मेलनको केवल अ० भा० प्रचार सम्मेलनसे उठाकर उसे अखिल भारतीय संस्कृति साहित्य और कलाका सम्मेलन बनायें जहाँ हम प्रान्तीय भाषाओंके प्रतिभाशील मनीषियोंको आमन्त्रित कर सकें और उन भाषाओंके कलाकारोंकी कला-कृतियोंका अनुवाद अपने यहाँ प्रकाशित कर सकें।

हिन्दीके जो साहित्य-प्रेमी अपनी आत्माभिमानके आन्दोलनके कारण आज जेलमें हैं उनकी सुध लेना भी हमारा काम है। जिन्हें हमने कुछ कहा या उनका शासनने तिरस्कार नहीं किया। जिनका शासनने तिरस्कार किया है केवल उसी तिरस्कारपर हम अपने कलाकारोंको न भुला दें। जेल यातनाओंमें जितने ही साधन-सम्पन्न हैं। वे अपनी चिन्ता स्वयं कर लेंगे। किन्तु जो साधनहीन हैं उन्हें हिन्दी जगत्के प्रान्तोंमें प्रान्तोंद्वारा सहायता पहुँचानेका आयोजन क्या हम नहीं कर सकते ? हमें जानना चाहिए कि जितने गरीब साहित्य-सेवियोंके बाल-बच्चे आज

ऐंचा-तानके हो रहे होंगे।

करीब साहित्य-प्रेमियोंके लिए अध्ययनके साधन उपस्थित करनेकी ओर भी हमारा ध्यान जाना चाहिए। हम यह हिसाब क्यों न लगावें कि हिन्दी जगत्‌में कितने पुस्तकालय हैं और उनके पठन-पाठनकी सामग्री किस श्रेणीकी है तथा हिन्दी पुस्तकोंके रखनेमें वे किन धारणाओंसे प्रभावित हो रहे हैं? इस ओर ध्यान देनेसे सम्मेलनके लिए सम्भव होगा कि वह हिन्दी जगत्‌के उचित प्रकाशनोंको उचित स्थानोंमें उचित समयके अन्दर दिखला सके और इस तरह लेखकोंकी प्रत्यक्ष सहायता करनेमें सक्षम हो।

हिन्दी जगत्‌में कितने ही विश्वविद्यालय हैं तथा कितने ही रियासती और प्रान्तीय शासन हैं। यहाँ पाठ्य-पुस्तकोंका निर्णय करनेवाली समितियाँ हैं। विचार-विनिमय न होनेसे अद्भुत हानि होती है। मुझे एक घटनाका यहाँ उल्लेख करना चाहिए। सन् १९३९ की बात है। काशीमें मैंने पुस्तकों और पत्रोंकी वह सूची देखी थी जिसे युक्तप्रान्तीय सरकारकी टेक्स्टबुक और लाइब्रेरी कमिटीने स्वीकार किया था। उसमें मैंने देखा कि सारे युक्तप्रान्तके लेखकोंकी कितनी और युक्तप्रान्तके प्रकाशकों-द्वारा प्रकाशित पुस्तकें तथा यहींके सामयिक तथा मासिक इस प्रान्तके पुस्तकालयोंके लिए स्वीकृत किये गये थे। मैंने एक प्रदेश सज्जनसे जिनका इस सम्मेलनमें भी प्रभाव रहा है पूछा कि आप लोगों छोड़कर अन्य हिन्दी प्रान्तीय प्रकाशकोंको और विशेषतः मध्यभारत मध्यप्रान्त और कुछ बिहारके प्रकाशकों और पत्रोंको तो आपकी प्रेफरेन्सल स्थान ही नहीं मिल पाया और मध्यप्रान्तकी ऐसी कमिटियोंमें समस्त हिन्दी संसारका अधिकतर ख्याल रखा गया है। तब उन्होंने अपनी विवशता और दुःख प्रकट किया। किन्तु एक दूसरे सज्जनसे जब मैंने यही बात पंचायतमें कहा तब उन्होंने मामला कुछ महत्त्व न देते हुए टाल दिया। हमें इन सब बातोंकी याद भी नहीं रही। ये सिफ़ारिश भगवान देनेवाले एक प्रधान

समाचार, श्रेष्ठ कौशल और निष्पक्ष न्यायकी वह अपेक्षा करता है। उसे मालूम पड़ गयी है कि वह बिना नाम लिये इधर-उधरसे चीजें उठा ले। वह अपने पाठककी योग्यता, आवश्यकता और अपने आदर्शकी दृष्टिसे नहीं किन्तु अपने हाथ पड़ी हुई सामग्रीकी दृष्टिसे सम्पादन करता है। वह अखबारके बेचनेवालेको २५ सैकड़ा कमीशन दे देता है और लिखने वालेकी सुध लेनेका उसे अवकाश नहीं। वह जनताकी बातोंमें निष्णात है किन्तु बहुत थोड़ी तादादमें बिकता है। पत्रकार अपनी इज्जतका दावा बोझ अपनेमें रखे हुए है क्योंकि अपने पत्रकी इज्जतके साथ उसने अपनी इज्जतको नहीं मिला दिया है।

हमारे पत्रकारका अपना पुस्तकालय नहीं है। वह रोटी खरीदकर ला सकता है जो रोटी उसे अपने चौकेसे थालियों तक पहुँचानी होती है। किन्तु उसका मस्तिष्क ग्रन्थों और साहित्यके साथ पढ़ाईसे युक्त नहीं रखा जाता।

पत्रकार अभी भी भाषामें भावोंको अनुवादपर जीना चाहता है किन्तु वर्तमान लेखक, वर्तमान कलाकार, पहलेके साहित्यसे यह चाहता है कि वह अपनी योग्यता सिद्ध कर उच्चता व्यक्त करे, आवश्यकता दिखावे, नम्रता दीखे और तभी और केवल तभी जन-मनको उत्थानकारी भावनाकी वाणी कामसे लाय। ज्ञान हीनताकी कैसी मनुहार? ध्यान देने की प्रार्थनापर भी कोई चीज हो तब तो ध्यान दिया जाये।

मैं जानता हूँ मैं उदार हो गया हूँ। किन्तु मैं लाचार हो गया हूँ। विश्वमें समाचार-पत्र चौथी या छठी रियासत कही जाये और हिन्दीके पत्र पुस्तकालयों और विद्या-संचालकोंकी अपेक्षा हलवाइयोंकी दुकानोंपर बांधकर बिकें—इसे मैं बरदाश्त नहीं कर पा रहा हूँ।

देशी भाषाके समाचार-पत्रोंकी नगण्यताके फैलनेका अपराधी ठहरानेका साहस भी है क्योंकि वह विदेशी है। तार अंग्रेजीमें आते हैं और अनुवादके बाद छापकर अंग्रेजी पत्रकी स्पर्धामें खड़ा होना कठिन

है। शासनके विज्ञापन शासन अपने कीर्ति-गायक मुसीम पत्रकारोंको देता है। यह पक्षपातहीन शासन सिद्ध नहीं होना चाहता। यह शहरोंसे दूर स्थानोंपर आनेवाले कागजपर बढ़े हुए रेलके महसूलके द्वारा यह सिद्ध होता है कि शासनकी नीतिमें शहरोंके अमीरको कागज सस्ता और गाँवके गरीबको कागज महँगा पहुँचता है। राजस्थानमें साहित्यके वितरणकी असुविधा और हफ्तेमें एक बार डाक बँटना इनसे भाषाके पत्रों-के क्षेत्रमें महान् संकट है। जहाँ अनेक पत्र हैं और रेडियो हाजिर है वहाँ डाक दिनमें कमसे कम तीन बार और जहाँ एक जगहका अकाल है वहाँ डाक हफ्तेमें एक बार—मानो एक षड्यन्त्र है जो एक तरफ देशी भाषाके पत्रको मार डालेगा और दूसरी तरफ ग्रामीण जनताको समाचार अन्धकारमें रखेगा।

पत्रोंका सांस्कृतिक ह्रास भी हुआ है। त्यौहारों उत्सवों संस्कारों पर्वों मुलाकातों कलाकारियों खण्डहरों दस्तकारियों मन्दिरों यात्राओं प्रकृति सौन्दर्यों अजायबघरों खेलों स्थापत्य साहस्य परम्परा-पूर्णों और अपनी सभ्यताके उत्थान-पतनपर हम बहुत कम लिखते हैं। इसीलिए हमारे पत्रोंको जन-मन अपना-सा नहीं समझ पाता। अपनी चिट्ठियों और पत्रिकाओंसे भाषाके रक्षक पराक्रम और कुशाग्रबुद्धिसम्पन्न प्राप्त होनेवाले शब्दों और अन्य कार्यालयोंसे आलमारी संवादोंको आप हम तुच्छ करते हैं और रोजमर्राके संवादोंका पक्ष-पोषण करके हम अपने पाठकोंको गंवाते हैं।

हम शासन, सत्ताधारी संस्थाएँ और प्रभावक व्यक्तियोंसे बराबरीके स्तरपर नहीं मिलते। मानो हम दुराव करते हैं या दायें या बायें कहीं मिल जायेंगे। यही कारण है कि प्रभावक दलों और शासन-व्यवस्थामें हिन्दी समाचार-पत्र अपना भाग्य-निर्माण नहीं कर रहा। पराधीन 'केसरी' मुखपत्रमें 'जन्म-भूमि' मद्रासमें 'आन्ध्र पत्रिका' बंगालमें 'आनन्द बाजार पत्रिका'—ये अपनी सीमाको लाँघकर स्वतन्त्र बने हैं

है। यहाँ पत्रकार कला गर्वित है कि जन मनपर उसका शासन है।

तिसपर इन कठिनाइयोंके बीच यदि हम गर्वित हैं तो इसलिए कि पराड़करजीका कुशल 'आज' का उत्तम सम्पादन किया और हम हैं कि उनके आनन्द बाद आज न अपनी गतिविधि नहीं बदली। संकटोंके बीच भी 'प्रताप' अपना पथ ग्रहण किये हुए है, वर्तमान उसके गति पथका साक्षी है। मोहन मूलचन्दजी अग्रवालने दैनिक 'विश्वमित्र'के तीन संस्करण करके तीन राजधानियोंसे प्रकाशित किया है — भारतकी पुरानी राजधानी कलकत्तासे, नयी राजधानी दिल्लीसे और देशकी औद्योगिक राजधानी बम्बईसे। इससे हिन्दी पत्रकार कलाका गौरव बढ़ा है। मूलचन्दजीके धनका सदुपयोग हुआ है और वह पैमानेपर हिन्दीका एक प्रयोग परिणामपर चला है। हिन्दुस्तान जनताके पत्र बहु आयेके अपने लक्षणोंसे अधिक युक्त है। उसे हिन्दुस्तान टाइम्स अंगरेजी दैनिकके समान साधन भी प्राप्त हैं। 'अर्जुन' भी जनताको बहुमानसे गौरवशील रहा है। भारत की राजधानी उत्तरदायित्वका बोझ अधिक है। 'दैनिक' दक्षिणपथका सहारा है। उसके मरने और जागनेका दोष हिन्दी पत्रकार-जगत्‌की त्याग भावनाका आधार है। पंजाबमें हिन्दी मिलाप सूझ और लगनसे अनुप्रुत है। 'विश्वबन्धु' ईमानदार आत्म भावनाका निम्न उदाहरण है। जबलपुर अधिकार की कलम शासनसे जूझकर संकटोंके बीच चलती है। पराड़करजीका नया दैनिक 'संसार' हिन्दी जगत्‌की परीक्षा है कि वह उनके उच्च सन्तुलित जीवनके आदर्शोंके प्रति कितनी सजग कितना सहायक है। मेरे बिहार प्रान्तमें भी 'नवभारत'की दाखिलयाँ मानो साधनहीनता और प्रतिकूल परिस्थितिके असम्भवसे जूझकर अपना अस्तित्व सिद्ध कर रही हैं। लोकमान्य तिलकसे एक बार किसीने पूछा कि यदि स्वराज मिल गया तो उसके बाद आप क्या करेंगे? उन्होंने तत्काल जवाब दिया था कि मैं किसी कालेजमें गणितका एक अध्यापक होना चाहूँगा। यदि हमारी सरकार ध्यान करे यह सत्य था और चाहे मुझसे

पूछें कि तू समय किसका क्या करेगा ?— तो मैं कहूँ — कि स्वर्गीय पत्रकारोंकी स्मृति 'प्रताप' की ओर समस्त हिन्दी जनताका सहानुभूतिक चित्त प्रेरित करना चाहूँगा।

यह उन दैनिकोंका चर्चा है जिनका मुझे पता है। हिन्दी अन्यतम अंगरेजी पत्रोंमें मैं केवल 'मुख भाषा' के सम्पादनमें हिन्दी समाजका सम्पूर्ण आत्मगौरव प्रतिबिम्बित देखता हूँ। अन्य अंगरेजी दैनिकोंमें मैं 'हिन्दी जगत्' के प्रति ममता नहीं पाता। जिन दैनिकोंकी मुझे जानकारी नहीं उनके प्रति अपने अज्ञानका अपराध मैं स्वीकार करता हूँ।

जिन दैनिकोंके साप्ताहिक प्रकाशित होते हैं उनकी चर्चा छोड़कर वर्तमान साहित्यिक श्रीयुत हरिकृष्णजी प्रेमीके सम्पादकत्वमें वेंकटेश्वर समाचार बम्बईसे निकल रहा है। प्रयागके इण्डियन प्रेसके 'देशदूत'में पूर्वोंकी कमी नहीं सम्पादनमें चातुर्य है। लखनऊका 'स्वतन्त्र भारत' बहुत सम्मानित प्रचारित होता है। कलकत्तेसे निकलनेवाला 'सन्मार्ग' पुस्तकाकार। बलवान् दर्पण था वह दैनिक संघर्षमें बन्द हो गया। अजमेरका 'नवज्योति' और जयपुर राजस्थान के राजस्थानमें इतिहास निर्माण करनेकी क्षमता दिखलाती। पटनाका 'नवशक्ति' इसके कुल-मिल ढाँचे पर आश्रम बनता है। 'हुंकार' बिहारके स्वामी सहजानन्दजीकी आवाज है। बनारसीजीकी 'जनता' बिहारकी जनता आवाज थी बन्द हो गयी। परिस्थितियोंका रक्त-पुत्रमें कलकत्तेका 'विचार'-जैसा अच्छा पत्र बन्द हो गया। पटनेके 'योगी' की धारा अपना पथ रखकर सफल प्रवाहित है। रघुनाथ 'आर्यावर्त' हिन्दीमें गर्मीमत था किन्तु अब भारत कहाँ और रघुन कहाँ? ग्वालियरमें बहुबार निकलकर तपस्विनी पुरुष एक ने जाना पश्चात् सिद्धिपरीक्ष जीवनका ही काम था किन्तु न आधार प्राप्त हुए भी बन्दी है और 'लोकमत' बन्द है। इन्दौरको प्रजा मण्डल पत्रिका इसका नाम सब स्वस्थ करे वो वह निर्भीक जनवाणी। बम्बईका 'प्रभात' अपने सूबाकी साहित्यिक वाणी भी है और राष्ट्रीय भी। दरभंगाका

'मिथिलामिहिर' मिथिलाकी प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृति और साहित्य-साधनाका प्रबल उद्योत है। कलकत्ताकी 'जागृति' की वाक्यप्रियता और निर्भीकता पत्रक परिश्रका मूल्यम है। जोधपुरका 'स्वराज' रियासती प्रजाकी मध्यभारतीय आकांक्षाको निर्भीक व्यक्त करता आ रहा है। 'आर्य मित्र' पुष्पकान्त (आगरा) से 'आर्यसेवक' मध्यप्रान्त (होशंगाबाद) से 'आर्य दिग्विजय' और 'आर्य मार्तण्ड' अजमेरसे निकलकर आर्य-जगत्‌के सन्देशवाहक हैं। श्रीयुत हरिशंकरजी शर्माके सम्पादनके दिनों 'आर्यमित्र' अपनी साहित्यिक कीर्तिके उच्च शिखरपर था। 'किसान' 'हुंकार' (पटना) और 'कृषक बन्धु' (लखनऊ) कृषकोंकी निर्भीक वाणियाँ हैं। 'अग्रदूत' (रायपुर) 'प्रजाहितैषी' (बालाघाट) 'अंकुश' (लखनऊ) 'लोकमत' (नागपुर) और 'सावधान' (अर्द्ध साप्ताहिक नागपुर) मध्यप्रान्तके जन जागरणके सजग पहरेदार हैं। 'शुभचिन्तक' का सम्पादन अब वर्मीजीने किया है और 'अग्रदूत' श्री केशवप्रसाद वर्मा एम० ए० की कलमसे लिखा जाता है। रियासतोंसे निकलनेवाले पत्रोंमें देवासका 'मालव' महाराज और राजके कार्यों और सत्कार्योंका सच्चा वाचक और वाहक है। 'जयाजीप्रताप' ग्वालियर राज्यकी सीमामें हिन्दी कलाकारोंको प्रोत्साहन देता है किन्तु रियासती पत्रके होनेसे नीरसता तो बच नहीं सकता। 'वीणा' प्रकाश अपनेमें साहित्यिक सुस्वाद भी रखता है। कलकत्तेका 'समाज सेवक' मारवाड़ी समाजका पत्र है। यहाँका इण्डियन ग्रुडट हिन्दीमें योग्य व्यापारिक पत्रोंका मत्त्व जानता है। डा० हेमचन्द्रकी साप्ताहिक 'विश्ववाणी' अन्तर्राष्ट्रीय दैनिक नहीं वस्तु भी बन्द हो गयी। कलकत्तेका 'विश्वबन्धु' अच्छा प्रयत्न है।

हमारे मासिकोंमें साहित्य सन्देश 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' 'हिन्दी हिन्दुस्तानी' 'सम्मेलन पत्रिका' 'शिक्षण पत्रिका' और यदि धीमर उसको भविष्यमें भी दूर रह सके तो हमारी मध्यभारतीय हिन्दी साहित्य समितिकी 'वीणा' तथा मद्रासका 'हिन्दी प्रचार समाचार'

और वर्धाकी राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका 'राष्ट्रभाषा समाचार'—ये सब क्षेत्रोंमें व्याप्त हैं। जिनके सामने निश्चित आदर्श है, जिनका पथ प्रखर प्रकाश है, और जो अमर साहित्य प्रदान करने या राष्ट्रभाषाकी सच्ची सभी बातें अपने पाठकोंके सामने रखनेके लिए अपने चरित्र व्यवहार संस्थाओंके प्रतिनिधित्व तथा सम्पादकोंकी योग्यताके कारण अपनेको उच्च परम्परामें बाँधे हुए हैं। 'साहित्य सन्देश' हिन्दीके विभिन्न अध्ययनशीलोंके आदर्श पत्र हैं। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' 'हिन्दुस्तानी' और 'सम्मेलन पत्रिका' हमारी शोधक सामग्री हैं। 'हिन्दी' हमारे देश और भाषाकी सांस्कृतिक उच्चताका प्रभावशाली प्रकाशन है। 'शिक्षण पत्रिका' नयी पीढ़ीके निर्माणमें बालकोंके पालकोंके लिए अनमोल बोल है। यह विचार पत्रिका भी है व्यवहार पत्रिका भी है। 'सरस्वती' अपना साहित्यिक योग्य-स्थानमें महान है। 'हंस' 'विशाल भारत' और 'विश्ववाणी' क्रियाशील प्रतिभा और क्रियात्मक हिन्दी अपनेके निर्माणमें हमारे ऊँचे प्रयोग हैं। कहानीके जगत्में प्रेमचन्दजीने 'हंस' के द्वारा जो नया कहानी रूप धाराके जो पथ में देख सका उनमें 'माया' कहानी और 'नयी कहानी' का आयोजन प्रशंसित है। 'भूदान' अपने विषय चिन्तनमें तथा सम्पादनके कौशलमें हिन्दीकी एक मूल्यवान् निधि है। 'दीपक' पंजाबमें हिन्दीका प्रचार करनेवाले अबोहरके तपस्वी स्वामी केशवानन्दजीका उज्ज्वल प्रकाश है। 'आरती' (पटना) का साहित्यकी साधना और नवीन धाराके समयका उज्ज्वल आयोजन कहना चाहिए। हिन्दीके धार्मिकोंमें या मेरीपुरीके 'युवक' की पूर्ति हिन्दी भारी उठाई न कर सकी। अजमेरकी 'त्यागभूमि' बिहारकी 'गंगा' मध्य भारतकी 'वाणी' (भरतोन) मध्यप्रान्तीय 'प्रभा' और श्रीशारदा लाहौरका 'मार्गी' और कानपुरकी 'प्रभा' ऐसी पत्रिकाएँ थीं जो अपने क्षेत्रोंमें हिन्दीकी सांस्कृतिक उन्नतिके लिए याद आये बिना नहीं रहतीं।

'कल्पवृक्ष' हिन्दीमें मानस पूजाका विमल पत्र है। 'कल्याण' इस

देशमें विदेश जानेसे बढ़ती हुई नास्तिकताकी वृद्धि रोककर हिन्दोंमें हिन्दू समाजकी सांस्कृतिक सिद्धि देखनेका एक वरदान है। 'विक्रम' मध्य भारतका उज्ज्वल साहित्यमुखी आयोजन है यदि वह आक्रमण करनेके सस्ते लालचसे सदैव बचा रह सके। मधुकर बुन्देलखण्डकी संघटन प्रणित बनकर वहाँके साहित्यका भारतीय भारतीको भेंट करनेका सफल प्रयत्न है साथ ही नयी-नयी योजनाओंका पथ करनेमें बहुत बेचैन भी। 'आगामी कल' (कलकत्ता) सामयिक साहित्यिक नवीन प्रश्नोंका नव आयोजन था सम्पादक बनकर ? पत्र बन्द है। युगान्तरकारका प्रदीप एक छोटे-से कालमें रहकर युगका संकेत ग्रहण करनेवाली धारा बनकर रहा। इसकी तरह वह तेजस्वी विचारधाराका निखरता स्वरूप सम्मुख लाता रहा। राष्ट्रभाषा समाचार श्रीमन्नारायणजी अग्रवालकी भावुक योजकी पत्रकारिताका स्वरूप बनकर निकला और सौभाग्य है कि उसने मनस्वी आनन्द कौसल्यायन-जैसा तपस्वी बुद्धचर्या और यति पत्रका समन्वयशील सम्पादक पाया। बालक बालसखा शिशु—ये पत्र हमारे बाल-साहित्यके भूषण हैं। 'बालक' इस पत्रमें वस्तुतः उठकर प्रत्यक्ष बन गया है। माधुरी साहित्य-सन्देश व गौरवकी मानो पूरक वस्तु है। 'हंस' एकमात्र उच्च श्रेणीका ? मासिक है—अंका उच्च और सुरुचियोंसे भरा हुआ। युक्तप्रान्तीय सरकारी कृषि-विभागको गर्व बहुत करता है। 'आर्य महिला' हिन्दी भाषी स्त्रियोंकी आजकल एकमात्र योग्य पत्रिका है। 'हंस भारती' अब सब भाषाकी अन्तःप्रान्तीय परम्पराका माध्यम है जिसपर प्रायः हिन्दी वाला ठहरा हुआ है। 'मधुप' बघेलखण्ड और रीवाँके साहित्यिक मिलनका नया आयोजन है।

पूजा और प्रतीक्षाका यह आवश्यक भाग समाप्त होनेपर अब हम फिर विचारकी ओर मुड़ें।

समाचार-पत्र प्रतिष्ठानके नाते हमारे यहाँ अभी व्यापार नहीं बन पाये। गिने-चुने अपवादोंको छोड़कर पत्रकारके पल्ले अभी कोई

अमीर नहीं हुआ। इसलिए भी छोटे और बड़े समाजों जहाँ भी सामयिक पत्रोंका संचालन करते हैं अभी उस पथ ही की तरफ चला रहे हैं।

जिस दिन समाचार-पत्रके व्यवसायमें अब आकर एक प्रतिभवका भी विराट भाव होने लगेगा उस दिन समाजके अमीर इस व्यवसायमें अपनी भारी पूँजियाँ लगा देंगे। क्योंकि मूलधन सुरक्षित रहते हुए, उन धनिकोंका समाज और देशके मन-प्राणोंपर प्रभाव रहेगा उनकी कीर्ति की दुकानदारी भी उनकी दुकानदारीके साथ सुरक्षित चल निकलेगी और मूलधनका नफा मिलेगा सो अलग ही।

युद्ध हो रहा है।[1] यह बात हम समाचारोंसे कागजकी महँगाईसे और खाद्य पदार्थोंके प्राप्त करनेकी कठिनता आदिके द्वारा ही अनुभव नहीं करते। हमारे देशकी सीमापर भी जापानी वायुयान मँडराते हैं। इस समय हिन्दीका अखबार कहाँ है? क्या वह किसी नाजुक घड़ी रही है या यहाँके रूसियोंका साहित्य अभी हमारे पास तक भी आ सका? क्या वह अमेरिकन पत्रकारोंकी तरह युद्ध-क्षेत्रोंमें जाते पत्रकार हैं? क्या वह राजनीतिके घरमें घुसकर कहीं यह खबर उसमें लगा हुआ है कि उनकी विनाश तैयारीका पूरा नक्शा उनकी जेबमें है? दुनियाके युद्ध-धाराओंमें मानवकी पूँजी बातपर किस तरह उभरती है और न उभर सकनेपर किस तरह परिस्थितियोंके साथ अवसरकी प्रतीक्षा और तैयारी करता है इस बातका अनुभव भी कहीं हिन्दीका साहित्यिक कर रहा है? व्यक्तिगत विचारोंका संघर्ष व्यक्तिगत विकारोंका द्वन्द्व राष्ट्रीय आदर्श विचारोंका संघर्ष और अपने राष्ट्रके अन्तर्राष्ट्रीय स्वप्न पूरे करनेके अन्तरेम जीवन-यापन करना — क्या मानव जीवनके मरण खोलकर अमर रहनेपर इस तरह सम्मिलित पद-चालोंके साथ कुछ हिन्दी साहित्यिक हैं जो अपनी जिन्दगी बिता रहे हैं? क्या यहाँ अवसर नहीं दिया जाता? —

१. द्वितीय महायुद्ध।

तब आप मौतकी साधनामें मुहूर्तके लिए ठहरे हैं। प्रलयकी साधनाका नाम लेकर प्राणोंका दुरुपयोगवाले साहित्यिक हम तो आत्मघातका-सस्ता पथ ही निर्माण कर रहे हैं। रक्तदानसे स्नेह-सौहार्द राष्ट्रका भाग्य रचनेसे मिलनेमें हम सफल कैसे हो सकते हैं?

विश्वके भाव-आवाहन और कर्म-कार्यालयका जब द्वार खुलेगा तब हम अनुवादकी जूठन समेटकर अपनी पीढ़ीकी साहित्यिक भूख बुझाते नजर आयेंगे। क्योंकि प्रत्यक्ष अनुभवमें हमारे पास कुछ नहीं होगा। इसलिए मांगनेसे सुन्दर वचनके सिवा क्या हम अपने साहित्यकी वीरताको कोई भेंट दे सकें?

क्या बदलेके लिए, पत्रकारको ब्रिटिश सरकार अवसर नहीं देती? या कांग्रेसी नहीं थे जिन्हें कांग्रेसकी वीरता मूलतः मालूम होती थी और या वामपंथियोंकी बहादुरीपर विश्वास करते थे उन विचारोंके युरोप हिन्दी साहित्यिक आज कहाँ गये? क्या नहीं समरका साहित्य अरबस, फिलिपीनसे अफ्रीकाम चीनसे रूससे अमेरिकासे और युद्ध-क्षेत्रोंसे भारतमें आ रहा?

युद्ध विश्वकी नयी भाषा तो है। हर भाषाको नये शब्द दिये हैं। परिस्थितियोंमें बम गोलोंकी तरह कुछ शब्द भी बने हैं। एक भाषा भी बनी है — हर क़दम हर जगह। क्या इसमें हमारा भी कोई हिस्सा है?

जब हमें विद्रोहका ज्वार चढ़ता है तब अवतरणों और अंकोंकी धूम मचा देते हैं और जब भावुकताका ज्वार आता है तब आस मा लेप मा कल्पनाकी धारा बहाने लगते हैं। यों अवतरण ज्ञानका बल और अध्ययनका अभिषेक है। किन्तु अवतरणवाली ज्ञानका आडम्बर और अपनी अज्ञानपर डाला हुआ कृत्रिम आवरण मात्र है। हम विश्वके साहित्य के इन अनुवादकोंको समझते ही नहीं हैं कि उस भावोंका उपयोग करनेका अधिकार नहीं जिसे तत्त्वोंका अनुभव न हो और उसे अवतरण बनानेका

बराबर साहित्यको नहीं देना चाहिए, जिसकी जीवन-धाराका ईमान उसकी कलमकी धाराके साथ न हो। यदि अमरूदके कीड़ोंके पेटसे अमरूद निकल सकते तो पुस्तकोंके कीड़ोंके पेटसे साहित्य भी निकल सकता था। अंग्रेजोंकी देशमें कलमको मूर्तिके आराधकके नाते श्यामल अभिमतके उपासक साहित्यिक भाई। जिस देशमें कलम तलवार जैसी प्रखर और तिलमिला नहीं होती उस देशमें तलवार भी तलवार बनकर नहीं रह सकती।

क्या ध्वनि भी अगर हममें 'कुछ' निरवधि नाथ आत्मामें अपने साहित्य को 'कुछ' देनेके लिए मर-खप गये होते? क्या हमसबको स्वाधीनता और युद्धमें बालकोंसे मरकर मात्र की आजसे हमारा निर्माण विचारोंकी उन्मुक्तताके पथमें बढ़ाया गया अपना जिन्दगीसे बढ़िया काम करने योग्य अधिक मूल्यवान् मालूम होता है? तब हम साहित्यके नहीं शरीर-पूजाके पैगम्बर हैं। क्या हमसे यह पूछा जायेगा कि कलका मित्र कैसा बना? कलका देश कैसा बना? कलका साहित्य कैसा हुआ?

साहित्यकी भी दो धाराएं हैं—मानता हूँ। एक पुरातत्व-साध्य धारा दूसरी विकासक या सृजनशील-धारा। अपने कायर जीवनका हम यों कहकर तो घटाभिमान सम्मानित रखते आये हैं कि सृजनशील स्वपोषित न हो। किन्तु क्षेत्र भले ही भिन्न हो संघर्ष उसी हद तक सृजनका आवश्यक अंग है।

यह सम्मेलन और हमारे ऐसे सम्मेलन साहित्यिक अन्योन्याश्रय हैं जिस हद तक हमारी कलमें तलस्विनी हैं। क्या हम शपथ ले सकते हैं कि साहित्यिकोंकी भी एक तरुणाई है, और उनरोंके मूल्यपर अपने जीवनका लेखा-जोखा यह हिन्दी-साहित्यको निकट भविष्यमें अवश्य देगी? मुझमें दम? ऐसा अब? या ये कोई स्वप्न न भेज सकेंगे। हजारों मीलसे उठे चीरकर हिन्दीकी एक निर्मायिका वाणीका भारतको

और मान ली भारतकी ओरसे जाते थे। उसकी ध्वनियाँ भारतके समस्त धर्मोंका स्वर मन्दिरके प्रांगणमें झनझनाकर उतर आयेगा। युगकी भीतका यह बाजा कौन बजाता है?

हमारी राष्ट्रभाषाका सम्बन्ध प्रान्तीय भाषाओंसे है। किन्तु यह कल्पना उचित नहीं कि प्रान्तीय भाषाएँ राज्य हैं और राष्ट्रभाषा साम्राज्य है। प्रान्तीय भाषाओंकी भाव-हीनता हिन्दीको राष्ट्रभाषाका पद प्रदान नहीं किये हुए है। यदि कुछ प्रान्तीय भाषाओंका यह मत हो तो बेशक रहे कि उनमें हिन्दीसे अधिक श्रेष्ठ साहित्य है। हम तो राष्ट्रभाषाकी उपासना समस्त देशको साथ रखकर इसीलिए किये हुए हैं कि यह देशकी अन्य सब भाषाओंकी अपेक्षा अधिक सरलतासे देशके अधिकांश भागमें समझी और सीखी जा सकती है। हमने हिन्दीको राष्ट्रभाषाके रूपमें प्रस्तुत नहीं किया है। सन्तोंकी होनेके नाते देशकी संस्कृतिका पूरब और पश्चिम तथा उत्तर और दक्षिण लोट-पोटकर बहुत करते-करते हिन्दीने स्वयं अपनेको शताब्दियोंसे राष्ट्रभाषा बनाया है।

हिन्दीका यह भाग्य रहा कि सम्मान जब मिला ग्रहण किया अपमान उसे भी ग्रहण किया और सिंहासनने उसे कभी आसरा नहीं दिया।

परन्तु हमारे आधुनिक शासन मन्दिरके व्यभिचारने समाजकी पवित्रताके उपासकके रूपमें हिन्दीको राजनीति सफलताके पक्षपातमें हिन्दीका गौरवकी बोली अनमन रोकना प्रारम्भ किया। यही कारण है कि युग-युगके प्राण-गीतोंकी ध्वनि हमारी साहित्यिक वातावरण दूर पड़ गयी। और यह रामनरसकी निराशाके साथ अपूर्व पैमानेपर अपना सम्पूर्ण आसन जमाकर इस साहित्यकी और समस्त देशका ध्यान एक तरफकी और तरह-तरहके औ देशकी सम्पत्तिका लोका। लोभके चौराहोंपर भारी भावनाओं लालसियाँ हमारे आदर्शोंको पवित्रताप हमें हलकी दीख पड़ती है। गीतों और अभिज्ञानोंका पाप गानेवाले गीत हमने बच्चोंके लिए छोड़ दिये हैं। शब्दोंकी बनावट और व्याकरण-विहीन

पहेलियाँ हमने कुछ चुन ली हैं, बहुत छोड़ दी हैं। पर्याप्त वसन्तकी ऋतुओंके तरह-तरहकी मुहावरोंको ग्रामोंकी प्रकृतिको उपचारों- की पहेलियोंकी नित्य काममें आनेवाली बोलियाँ मानो भाषाके पाठ्यक्रममें शुद्ध हैं जो दूर रखा गया है। हमारी खोज महाकाव्यानामें हुआ है, यहाँ और अभिज्ञानोंमें नहीं।

साहित्यमें जहाँ स्वाद आता है और भाषा जहाँ अनेकार्थवती होती है वे स्थल हैं — मुहावरों पहेलियों लोकोक्तियों और कहावतोंके उपयोग। ये आज भी ठेठ गाँवोंमें समझे जाते हैं ठेठ शहरोंमें। भारतमें भाषाका यह वैभव हमें कदाचित् गाँवोंने अर्पित किया था। जहाँ जीवन था वहीं तो साहित्य बनता ? अब हमने गाँवोंका भाषा-सम्बन्धी-वैभव खो न लिया है और उसे इतना कठिन बना दिया है कि वह गाँवोंके काम न आ सके। कलम उठाते समय गाँव कभी हमारी नजरपर ही नहीं होता। नगर सभ्यताका दूध पाकर हमारी सारी बुद्धि शब्दोंको मात करनेमें लगी है। और मजाक छोड़िए। चौरासी फ्रीसदी लोगोंमें साहित्यको मनोरंजन बनाकर सोलह फ्रीसदी कृत्रिम जीवनके लोगोंके लिए साहित्य बनानेका हमारा यह कैसा मोह है ?

क्या यही हमारी पुरोगामिता है कि हमारी उपयोग की हुई भाषाको गाँव समझ न सकें और हमारा साहित्य गतिशील होनेके बजाय उन सर्वहितवादियोंके रखना पड़े ? प्रगतिगामी भाषाकी पीठपर पुरोगामी भावों- की यह यात्रा किस मंजिलपर पहुँचेगी और किसका हित होगा ? क्या हम मुट्ठी भर शिक्षित सज्जनोंकी मौज और विनोदके लिए भाषा बना रहे हैं। संस्कृत भी इसी रास्ते जाकर लोक भाषाके मैदानोंमें मरी थी। अब हम पण्डित हिन्दीको भी उसी तरह दण्डित करके छोड़ेंगे।

मस्तक शहरोंमें जहाँ रहे, जहाँ रक्त हिस्सों-जैसे पर हैं, आत्मभूमा गाँवकी भागपना है, हाथीके दाँतोंकी तरह जहाँ खाना अलग है और यहीं ईमान पकड़कर भारतजानोंमें समता और परिस्थितिके नाटेगरापन

यहाँ टूट-फूटकर मरम्मत किया जाता रहता है ?

प्राचीन सन्तोंकी वाणियाँ तुमने समेटकर रख दी हैं। उचित किया है। सन्तोंने बेजोड़ वाणियाँ लिखी हैं। व्याकरण टूटा है, वाक्यके नियम टूटे हैं, मद-मतोंकी मर्यादा टूटी है और स्वार्थियोंके स्वार्थ टूटे हैं। क्या आज जो सन्त हैं, उन्हें हम गहराती जीवधारी प्राचीन सन्तों-जैसी भाषाके क्षेत्रमें स्वतन्त्रता नहीं दे सकते ? क्यों ? और क्या आजके सन्तोंका साहित्य हम उस दिन बटोरेंगे जिस दिन वे मर जायेंगे ? क्या आजकी खोजमें हमने यही नवीनता सीखी कि पुष्प वह जो पुराना हो ? नहीं तो आजके सन्तों और सेवकोंकी वाणियाँ ऊँची सरोवरों नदियों झोंपड़ियों और खण्डहरों में हम क्यों न ढूँढें ? किन्तु वर्तमान कलाकार बेचारा जब दिमागी खिलौना बनकर कीर्ति पा लेता है, तब गहराती जीवन-विकास छोड़कर यह सम्प्रदायका पीछा पकड़नेका पागलपन क्या ग्रहण करे ? क्या कुछ मुर्दा आगे आकर राष्ट्रवाणीको गहरवाणी बननेके मरणसे बचा सकेंगे ? क्या वे प्रयत्न कर सकेंगे कि आजके कलाकारका स्वर जीवके दर्दोंके स्वरमें मिल सके ? किससे कहूँ कि राष्ट्रवाणीको अमर करनेके लिए हम कबमें आप आओ ?

एक ग्रामीण जिज्ञासुने मुझे चिट्ठी लिखी है। उस चिट्ठीके मजमून भर समापतित्वका द्वारा सम्मान अपमानित और लज्जित है। जो भारती अमूल्यों वाणीका स्वामी हुआ उसे स्वयं अपने कलावान् और विद्वान् होनेके गर्वमें इस तरह करुण वाणीमें भीख-सी माँगनेके लिए विवश किया है ! इसमें साहित्यकी तस्वीरपर आसक्त होकर साहित्यके मूल देवताका अपमान किया है। ऐसा जिला बाँदाके श्रीयमुनाप्रसाद विशारदने मुझे लिखा है —

"सादर वन्दे

परिचय न होते हुए भी आपसे कुछ प्रश्न करनेकी धृष्टता कर रहा हूँ और इसके लिए प्रारम्भमें ही क्षमा चाहता हूँ।

दी भाषामें मैंने यह निवेदन आपकी सेवामें किया है।

यह चिट्ठी उत्तर मांगती है और मुझे आशा है कि इस सम्मेलनमें एकत्रित साहित्यिक विद्वान् इस चिट्ठीके उत्तरको गाँवोंमें निवास करनेवाले लोगोंकी भाषाका स्वर मानकर अवश्य इसका उत्तर देंगे।

अंग्रेजी सीमाके भारतीय शासनको यदि ब्रिटिश भारत कहते हैं तो देशी रियासतोंको भारतीय भारत। हैदराबाद और भोपालका भारतीय भारत उर्दू भाषाका उसी जोश और उत्साहसे समर्थक है जिस तरह वह इस्लामकी धार्मिक संस्थाओंकी सहायता करता है। वहां इतनी अनुदारतासे काम लिया जाता है कि बाकायदा आज्ञा मांगे जानेपर भी सन् १९४१ के दिसम्बरके तीसरे सप्ताहमें वहांके मजिस्ट्रेटने तक हिन्दीका साहित्यिक सभा करनेकी इजाजत न दी। हैदराबादके शासनने हैदराबादकी ओरसे आमन्त्रित हिन्दी साहित्य सम्मेलनका अधिवेशन हैदराबादमें नहीं होने दिया। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इन दोनों राज्योंकी अधिकांश जनता राज्यकी इस भाषा-सम्बन्धी वृत्तिको अत्याचार की जानेवाली जबरदस्ती समझती है। ये शासन अपनी सीमामें तो बिलकुल उर्दू न जाननेवाली जनतापर जबरदस्ती उर्दू लादेंगे किन्तु कश्मीरमें जहां शासक भाषाको साम्प्रदायिकताके साथ नहीं मिलाना चाहता शिकायत की जाती है कि वहांके हिन्दू भी जबरदस्ती उर्दू पढ़नेके लिए बाध्य किये जावें।

अब जरा हिन्दू राज्योंकी तरफ दृष्टि डालिए। इन्दौर जनताकी भाषा और राज्यकी भाषा दोनोंके प्रति ईमानदार और सजग है। शासनके अनेक परिवर्तनोंके बाद भी उस राज्यकी भाषा-नीति बिगड़ने नहीं पाती। इन्दौर राज्यके बहुसंख्यक विद्वान् यत्नशील हैं कि मध्यभारतकी सम्मिलित शक्तिसे श्रीयुत किबेजीकी यह भावना सफल हो। एक बार हिन्दी विश्वविद्यालयका प्रस्ताव सामने प्रस्तुत है और जिसकी चर्चा इस सम्मेलनके इन्दौरके अधिवेशनमें हो चुकी है।

बात है कि ग्वालियर राज्यके क़ानूनकी किताबें फ़ारसी और अरबी शब्दोंसे लदी हुई हैं। क्रिया-पदके सिवा हिन्दी प्रायः उनमें अधिक नहीं होती। इसके अलावा बहुत वर्षोंसे इस भाषामें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। फिर भी इस नवीन आन्दोलनका परिणाम यह हुआ है कि हिज़ हाईनेसने एक कमिटी आफ़िशियल्स तथा जनताके सदस्योंकी सैयद हकीम अहमद (राज्यके एक मन्त्री) की अध्यक्षतामें बना दी है ताकि वह यदि संभव हो सके तो इसे सबकी रायसे सरल बनानेका प्रयत्न करे।

जयपुरमें रामचन्द्र शर्मा 'वीर' को इसलिए उपवास करना पड़ा कि वहाँ हिन्दीका प्रचार हो। सरकारने आश्वासन भी दिया। २८ जनवरी को राज्यकी आज्ञा निकली कि श्री महाराजा साहब बहादुरकी अधिकांश प्रजा देवनागरी लिपि इस्तेमाल करती है। इसलिए गवर्नमेण्टकी यह मंशा है कि तमाम दफ़्तर और अदालतें देवनागरी लिपिका प्रयोग करें ताकि सम्बन्धित जनताको किसी किस्मकी असुविधा न हो। किन्तु साथ ही उसी आज्ञामें ये शब्द भी लिखे गये हैं— मगर इस आर्डरका मंशा यह नहीं है कि देवनागरी लिपि ठीक तरह न जाननेवालोंके लिए उर्दू लिपि इस्तेमाल करनेपर किसी किस्मकी रुकावट है। अब जनताने इस आज्ञाका एक हाथसे देकर दूसरे हाथसे सुविधा छीन लेना समझा। अब ८ फरवरी सन् १९४१ के नोटमें जयपुर दरबारके पब्लिसिटी आफ़िसरने शासनकी ओरसे अधिकारपूर्वक यह स्पष्टीकरण किया कि उनकी पहली आज्ञाके सही मानी सरकारकी यही मर्ज़ी या निर्णय है। राज्यने यह भी स्पष्ट किया कि 'देवनागरी लिपि ठीक तरहसे नहीं जाननेवालोंके लिए भी सरकारका अभिप्राय यह है कि जल्दीसे जल्दी सरकारी दफ़्तरों और अदालतोंमें देवनागरी लिपिका आम व्यवहार होना चाहिए। किन्तु १५ फरवरीको फिर पलटी खा गयी। एक सरकारी आज्ञा निकली जिसमें २८ जनवरीके सरकारी मेमोरेण्डम और ८ फरवरीके पब्लिसिटी आफ़िसरके नोटका उल्लेख करते हुए राज्यके पब्लिसिटी आफ़िसर फिर

साहित्य वैभवको हिन्दी जगत् और राष्ट्रभाषाके स्नेहियोंके सामने रखना चाहिए।

इस विषयमें मैं समस्त हिन्दी संसारके मार्गदर्शनके लिए पं० बनारसीदास चतुर्वेदीके जनपदोंकी स्थापना अथवा मण्डलोंकी स्थापनाके सुझावका समर्थन करता हूँ — यहाँतक कि जिलोंके सम्मेलनका प्रस्ताव आज्ञा देता है। भी हिन्दी भाषाके भारी विस्तार और गुरुतर कार्यभारके कारण कुछ संस्थाएँ हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अन्तर्गत होकर भी अपना कार्य स्वतन्त्र रूपसे अलग कर रही हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा इन्दौरकी मध्य भारतीय हिन्दी साहित्य समिति बिहार पंजाब मध्यप्रान्त और मालवाका हिन्दी साहित्य सम्मेलन वर्धाकी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति विद्वान् धीरेन्द्र वर्मा-द्वारा स्थापित और इस सम्मेलनके गत वर्षके अध्यक्ष विद्वद्वर पं० अमरनाथजी झा-द्वारा उद्घाटित भारतीय हिन्दी परिषद् — ये संस्थाएँ अपना अपना काम किये जा रही हैं और प्रयागका सम्मेलन कार्यालय इनके कामोंको सम्बन्धी दृष्टिसे नहीं देखता। पंजाबके हिन्दी प्रेमी मित्रोंने इस वर्ष पंजाबमें हिन्दी प्रचारकी जो धूम मचायी है वह सिकन्दरी शासनमें उत्पन्न हिन्दीकी अवज्ञाके दुष्प्रयत्नका काफी उचित उत्तर है। किन्तु मैं इस प्रयत्नको विदेशीके रूपमें पसन्द नहीं करता। मैं यह तो चाहता हूँ कि मारवाड़ी मालवी बुन्देलखण्डी ब्रज भाषा मैथिली साहित्यिक नाते होता हुआ साहित्य उज्ज्वल रूपमें सम्पन्न करें किन्तु मैं यह हरगिज नहीं समझ सकता कि इन प्रान्तोंकी पाठ्य-पुस्तकें वहाँकी बोलियोंमें छपने लगें। प्रान्तीय अभिमानका जागृत करना बुरी बात नहीं किन्तु इससे गृह-कलहमें फँस सम्पूर्ण हिन्दी जगत्के नाश ही का भय मालूम होता है। मेरे विचारसे अँगरेजीके राज्यमें हिन्दीके प्रान्तीय अलगाव बनाकर अखिल हिन्दी जगत्की एक हिन्दी भाषाको कमजोर करनेका इससे सुन्दर तरीका दूसरा नहीं हो सकता कि प्रान्तीय उत्तेजनामें पड़कर एक दिन मैथिलीका बोलनेवाला मारवाड़ी व समस्त और

रम्याहीका वामनयाका मैथिली। तब परिणामस्वरूप हार्मिकमों और क
हाग प्रवत अँगरेजी भाषा घारमें आकर हमारे हिन्दी भगनके प्र
देशी व्यवहार और सुविधाकी भाषा बन जाय। हाँ प्राम्याय हिन्दी
नहीं इन प्राचीन प्रान्तीय साहित्यका समझ और समझायें। जो मार
और मैथिली जानते हैं व मूलको समझ लें। जो नहीं जानते उन्हें
वस साहित्यिक ग्रन्थ प्रकाशित हिन्दीमें समझाय। प्रयापक दस्तावेज
इन लिपिरूपान्तरण इत्यादि न करें क्योंकि इस इत्यादिमें तो बामाने
सी नहीं हो जानता सब है। हाँ प्राम्याको और सब पडित औ
प्रवृत्ति से साहित्य और उपेक्षित साहित्य-साधियोका सगठन कर समस्त
हिन्दी समृद्धी सम्पूर्ण सुविधा ध्यान दीजिए।

इसें लिए हिन्दी-साहित्यपर गया है उनका विभाजित करसकाम सुविधा-
इस समय दो बातें हैं। एक व है जिनका सम्बन्ध विश्वविद्यालयसे
। दूसर व है जिनका सम्बन्ध विश्वविद्यालयसे सुरक्षाने पर प्रश्न
हिन्दी-साहित्य है। पहले प्रकारके साहित्यिकको रोटियोकी चिन्ता नहीं
है पुनरावृत्त प्राप्त है साधके साधन है और उनका परिमार्जित लिए
प्रसाद लिए विद्यार्थी है। हाँ य साहित्यिक कुछ हुए पडन है। दूसरे
प्रकार व साहित्यिक है जिनको पढनकी भूखकी तृप्ति उनका गाडियो
वसर भी पूरी नहीं होता जिनके ग्रन्थ प्रकाशक आठ आने पढ तक
अनेका दुस्साहस कर सकते है जो विवश है कि व अपने साहित्यका
केवल शब्द उनका बिना रोटियो सम्भव नहीं और एक अगहम दूसरी
स्तर पूमना हो जिनका मात्र पथ है। सुविधाका धनि बांसबका
साहित्यिक बस्त जानता गया करता है और संकटोका साथी साम्यवे
करता साहित्यिक अपनी सेवा और अपने बलिदानका अपमानित नहीं
जना चाहना। इस समय साधनोंसे हीन साहित्यिक जब अपनी रचनायें
जाग स्पष्ट और अपना हृदय महान ऊँचाईमें उतारकर रख देता है
तब वह सिरपर चढानकी चीज है भजाक उडानकी नहीं। हाँ यद
परिभाषा

सच है कि सेवककी शर्त ज्ञान है। अज्ञान चाहे जितना ईमानदार हो वह ज्ञानका काम नहीं उठा सकता। हम यत्न करना चाहिए कि हिन्दी प्रान्तोंमें और हिन्दी जगत्‌के भिन्न-भिन्न स्थानोंमें हम यह यत्न करें कि जिस तरह कलाकार भूखों न मरे उसी तरह वह दिमागी भूखसे कहीं बौना न रह जाय।

भारतकी जिस जमीनपर हम हैं उसकी यात्राकी लहरें यदि हम उभार दें तो शताब्दियोंके साहित्य-साधक कलम-से निकल कर हमसे बोलने लगें। वात्सल्यका विश्वविजयी वरदान लेकर सूर निकल आवें और भारतकी समग्र व्यथा लेकर तुलसी। हिन्दी वसन्त साथ लेकर वाग्मीकी विद्यापति विद्रोही कबीर निकल आवें और रसको बिन्दु-बिन्दुमें अपनाकर लिख जानेवाले बिहारी। एक राजाकी स्पर्धा और दूसरे राजाकी बहू होकर भी गिरधर गोपालके चरणोंमें समर्पिता समाजकी अमर विद्रोहिणी मीरा निकल आवे जिसकी वाणीके चरणोंमें आज देश है, रस रेखा हुआ है और कोटाके पत्थरका वतन लाहुलकी धारा बहानेवाली केसरियोंमें लिया गया है। जिसमें तुलसीसे पहले हिन्दी बोलते जायसी मिलें और हरिरसमें ओतप्रोत रसखान। जिसमें लालनका कलम और कामदी कलम साथ-साथ चलानेवाले छत्रसाल मिलें और बुन्देलखण्डके कविवर दराल हों। जहाँ सैयद अमीर अली 'मीर' की वाणीमें सुन पड़े कि—

"सब न सार गरीब है जात गरीब निवाज,
कृपा कारि करि धरियो व ग्रिम है मुसलमान। (१५१३)

स्वदेशी मातृपालन अपना घर (दमोह-जिला सागर म० प्र०) छोड़ का आश्रय हुए सैयद अमीर अली 'मीर' की यह ललक सुनाई पड़े कि—

'धन के हित छाड़ी धना घर मैं
धन ज्यों हिम भट्टि की नींद भया;
हम साथ सिरे प गुर्नी जन के
अब भी मन हूँ है बिदाह भया।

घर आते बने न बन बने बाहर
'मीर' कहा यह छाह गया
दुविधा में पर्‌या मन मरा मरा
दुइ घुमक बीच का साह गया।"

बमजमपद रामके दीवान-पन्न अपनी देन भक्तिके कारण मिथ्यासे भी 'मीर' का सा" हमें अजमरीजीकी वाणी सुनाई पड जा गुणकी नयीसे थी धूमोंमें मंचप मेतो दिखाई दे।

फिर थोड़ पीछे लौटें। हम देवकी कोमल और चमत्कार भरी सूझें हैन युग-निर्माता भारतेन्दुकी वाणीमें हम देन समाज और साहित्यकी वासवकालोका चित्र प्रतिबिम्बित देखें और फिर भी उनका यह स्मरन देखें—

"मरकम रसिक के सुदास दास प्रमिन क
सखा प्यार कृष्ण के गुलाम राधा रानी के"

फिर सुन आये कि हम नाथूराम शंकर शर्माके दर्शन करें जिनका इसका स्मरण है कि मानो—

"नभ म तिमिर के हिय में नार मारा है।

फिर हमें मिलें हिमालयपर विचरण करते श्रीधर पाठक या मगाधि यकी सोमानर मस्त होकर कह रहे हों—

'कैसी आनू-भरी विमल चामीगर धेली
मकान में सुधि परी दास क सिर पर चन्दी।

और फिर मैंगाकी परछाईं मरोवरोंमें देखकर अलग्ना हुआ मोमम सने करकरा रहा हो—

"प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति
पल पल पलटति भेष छनकि छन छन छवि धारति।"

बादमें हमें राय देवीप्रसाद पूर्ण मिल जायें जो 'भाव रस स्यन्दनकी कविता मिलनकी पूरन प्रसिद्धि सिद्धि सिद्धमकी स्वामिनी सरस्वतीको वर्णमात

आराधनामें मग्न हों।

फिर मिल जायें हमारे साथी सत्यनारायण कविरत्न और पं॰ बनारसीदास चतुर्वेदीकी खबर पूछनेके बाद छना-झपटी करनेपर अपनी दुपल्ली टोपीवाला सिर झुकाकर कह दें—

'मेरो मत्त ग्राम को वासा
क्या लखनऊ जाय।'

और इस बातकी शिकायत करें कि सम्मेलनकी सीमामें क्यों यह सत्य नारायण कुटीर बनवा दी गयी पर अमोलक गणेशशंकर विद्यार्थीकी ओर लोगोंका ध्यान नहीं गया?

ज्यों ही हम वहांको बरबस मुड़ें — क्योंकि यदि गुप्त-धाम छिपे ही जायें तो गुप्त धाम गुप्त नहीं — तो हमारा गुप्त हमारे सामने खड़ा है।

बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त देशके दीप, दीप्त आदर्श अभिमान बलिदान और गुणोंका कोमलतम और प्रखरतर प्रसाद लिये उपस्थित हैं। जो न कहते हैं कि—

'जा पीछे आ रहे उर्मिला
मैं आगे का अब उपकार।'

किन्तु कौन इनकार कर सकता है कि रसोंकी सिंहासनपर बिना समस्त रसोंकी झलकमें गुप्त सिंहासनका उत्तराधिकार न अपनेपर लिये जाते जा रहे हैं? उनके लिए वही रस रस है जो समस्त जगको स्निग्ध कर सके और शेष रस विष हैं जिन रसोंके लिए गुप्तजीके गुनहगार तुलसीपर आ न सीखनेको उतरनेको तैयार नहीं। हरिऔधजी उपस्थित हैं हिन्दीमें अपने युगमें छन्दकी कसरती कहानीकी और कलाकी नयी विधिसे काम करनेके लिए। श्रुति-वाणी और उदासीन मन लिये यद्यपि लोकम होकर-से। मनहीका हैं। मानव ही। किन्तु उन्होंने उनके ग्रन्थ पकड़नेका गौरव नहीं छोड़ा? वे काव्य ही जानते हैं काव्यमें ही चर्चा करते हैं। गुप्तजी तेज दौड़को कदकाम कराकर नाराज भी हो पड़ते हैं। किन्तु गुप्त उनके

पर्वतोंपर बैठकर भोगा है।

भयंकर प्रपातकी धारा है। प्यारकी झिलमिल स्फटी देवशिल्प बहता मुखरित हार, मुक्तोंके पुष्पोंसे गूँथ कर मानो निज सजल दुपट्टोंका मधुर वैभव जब वसुन्धराकी मनहर छटापर फैलाता है तब मेरा प्रभाती वहम वाणी बनकर अनायास रमती है। पत्थर हिमालय पर्वतोंके फड़कनाहट उज्ज्वल नन्दनोंमें इन्द्रधनुषकी-सी वैजयन्ती न पहुँच मनमथवाली रंगीनी हो कि दल-बादलोंमें मधुर बज रहे और बाबा पवनके कण्ठमें मेघ-मल्हार हो उठो। किन्तु फिर जग मानव पर का बना। मानो इतनी ऊँचाईपर किसीका मान और नक्षत्रोंको पग पा गयी हो। निराला—मुरारके पथमें बना गिरि-जुमाको पहाड़ पीकर रहस्य सहमता सपना ही माथेपर हिमानी-सा बह मस्ताना वेश यह पहाड़ ताड़ ही जायेगा। क्योंकि प्रणय और प्रलय माना एक ही अनिमेषको उनके पास दो तस्वीरें हैं। उनके प्रणयका मन्त्र है कि रसातलके बाद भी आँखोंकी धारा प्रवाहित है और उनके प्रलयका मन्त्र है कि वह आँखको आग लगाकर सारे मुक्ता-मणमालाको भस्म कर देता है। निरालापनका है मानो एक झरना है जो कहता है—अकस्मात् प्रतिबिम्ब मचलते हैं और मानसिकोंके हृदय उन्मादमें अपनी तरह छिन्न-भिन्न किन्तु टपकते हुए आँसुओंमें असमय प्रतिबिम्ब दिखाता। आश्चर्यजनक रूपात्मक वैभव और झिलमिलाते-पुष्पकी बेल जो कानन विपिन अमर मधुमय करता है—

"मुझको देख माया मुरझाया फिर आ आय स्वागतमें!"

और उसको संतप्त नहीं है उन पुष्पक छन्द छन्दकार आपाद मस्तक ज्वार भाटा और झंझावातकार विस्तृत कामनाओं वासनाओंको गूढ़।

पार्वती और मुमताज़ माया सुगन्धि दो मणि-मालिकाएँ हैं। कवि सुमित्रानन्दन पन्त जैसे कल्पनाशील महादेवीजीकी अनन्यता है। पर्वतोंकी चढ़ाई पथ वहीं है जहाँ मृगतृष्णा वैभव लेकर ही पहुँचा था

सकता है। योवन प्रखरतर जीवन साथ कोमलतर भावनाओंमें भक्तिके हृदय-पद्मको छूकर लोक-लोचनमें फैली जा रही है। तारा पाण्डे मानो अपने काव्यके अर्थोंसे अपने अभिमतका सुधापर चढ़ाकर सँवार रही हैं। विद्यावती कोकिल सेवाका पथ आवश्यका भान और समर्पणकी भावनाके साथ अपने स्वरमें सुमनको गूँथ रही हैं। सुमित्राको मानो सुमनकी किसी बातको प्रश्न-चिह्न लगाये बिना नहीं छोड़ती। व मनोभावोंके प्रकटी करणके लिए वाणीकी मुहताज हैं उसे छिपानेके लिए नहीं। मुकुटधर 'माधुरी' लेकर आये। और मानु पूजन कर चुप हो रहे।

बच्चन जीवन तारुण्यका मस्तानी वैभव लेकर आये। जीवन भर साम्य नीति शास्त्र मर्यादा क्या-क्या नहीं वसूल करना चाहा जिसको इस मस्तानी वैनमें। लोग ठहरे नहीं कि जरा इस बालका तेज सम्मुख अपनापर आनपर देखें और पन्तजी तरह बाहर बदल गयी। मिलिन्दकी उज्ज्वलता मस्ती और अभिमान तीनों मानो एक दूसरेसे होड़ लेते हैं। सूझे है कि उन्मत्तता ठहरना नहीं चाहती। हरिकृष्ण प्रेमी कवि हैं। अपने हृदयपर बलिदान समर्पणके पालनपनसे परेशान। जिस दिन जो भाव उठता है उस दिन वाणी जमीन उठती है।

जनार्दन झा स्नेहकी पृष्ठभूमिपर सूर्योंकी तस्वीरोंसे सजा मन्दिर सजाता-सा कवि है। दिनकरकी एक मुट्ठीमें मुक्तालता केवल अपने समस्त लपटोंको लेकर झपटता रहा है और दूसरी मुट्ठीमें विरहका निर्मित मस्तानी समस्त सुधासे साथ प्रयत्नशील है। उसके मस्तकमें ऊँचाई है, कलममें वागका प्रवाह है, आँखोंमें धुर तक देखती है और उसमें झंकार है मुट्ठीमें मानो कुछ बँधा-सा है और कलममें मनचाहा है। नेपालको नगाधिराजका हिमकी कविताके पचम प्रहरी प्रतिनिधि हैं। वह झरना और चट्टानोंकी भाषामें प्यार बोलता है प्यार बोलता है। भगवतीचरण वर्मा तूफानकी बहन हैं कभी काव्यमें डूबी-सी कभी चट्टानोंमें तैरती-सी। रामकुमार वर्माके कुछ गीत और हृदयके कुछ

मगर त्रिवेणीकी तरह शीतल और नर्मदाकी तरह सुन्दर हैं —अपनी भूमिके वैराग्य वैभवके युगकी स्वर्ण रेखा बनता चला आनेवाला स्वर्णमाला सदृश। कठिन है, कि इस समय उनकी याद न आये। काश न चिनगारियाँ आज प्रसन्न कर सकी होतीं वे हिलोरें आज युगकी चारियाँ बन गयी होतीं! अभी भी उनसे उनके गीत दूर नहीं पड़ते यदि उस मुरलीको चूमोकर आत्मघातकिता न सिखाया जाये। मैं अक्ल है? विमुक्त विस्तृत विस्मयका ऐसा भी एक स्वभाव स्थान होता है —क्या न मानें? सौन्दर्यनिष्ठ एक बेकाबू धारा है किनारे तोड़कर चलती है चट्टानोंमें बिखरती है, और कोमल कड़ियोंमें गुदगुदाती है। दूसरी ओर बेरस एक साधक पुकार रहा है—उदयशंकर भट्ट। यदि इनका हृदय-वैभव सम्पूर्णत कलमोंपर आ जाये तो यह अनमोल खजाना किसी दिन हिन्दीको निहाल करेगा। 'हृदय' के मरनेस की कराह की उठी उन्हें व प्रतिमाएँ जानेगी किन्तु जानकी मशाल जाती है। उनकी प्रतिभाके पल फड़फड़ाए ही थे कि मानवक वैभवका मस्तक यमराज माँग उठा। चरणोंके देव-मन्दिरमें मानव सिरके बल चढ़ रहा है। युग प्रतीक्षामें है कि वह क्या चढ़ायेगा। मध्यस्थ साधक कस्तूरी अपनी श्रद्धाञ्जलि लिये युग-पथपर अपना स्व स्निग्ध पत्र-पुष्प-फल-तोय लेकर चला आ रहा है। मनोरंजन मानो हमारी प्रतिभा-विभूतिका समापन खिलौना है। नर्मदा नर बाबाकी महज घनिष्ठता ध्वनिमान यथासमय गुंजित है। वह याद आनेका याद आय ममस्वीप्रसाद वाजपेयी कोमल पंक्तियोंका मधुर और जागृत साधक है। शान्तिप्रिय द्विवेदी उपेक्षित किन्तु वैसा निर्मल! भास्कर-सा बहादुर और साधनाओं-सा प्रगतिशील। वीरेन्द्र सात्त्विकताका साधक हृदयके और अभिमतका चढ़ावा-सा। रामानुज भाषा काव्यकी सरसता और भावोंकी सरसताका अपना स्थान है। प्रभाव पुण्यके और प्रतिभापर कलमका चढ़ाये हुए बलिपन्थी-सा है।

मोहनलाल महतो वियोगी युगकी धाराके प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी

उसमें अन्तर्मुखी भी है, बहिर्मुखी भी। अपनी प्रतिभा-आभामें वे हिन्दी जगत्‌के अमर अभिमान होकर रहेंगे। डॉ० बलदेवप्रसादपर न केवल महाकाव्यका किन्तु हिन्दी जगत्‌को गर्व होना चाहिए। यह 'रामराज्य' उस प्रतिभाके प्रमाणमें उठता है जिसकी भावोन्मेष-वाहिनीका चमत्कार व्यक्त करता चलता है। भुवनेश्वरसिंह 'भुवन' वैशालीके गरबीले गायक हैं। सूर्यनारायण व्यास महाकालके द्वारपर राष्ट्रभारतीकी ध्वनि पहुँचाने जा रहे हैं। भुवनेश्वरसिंह 'भावुक' कम लिखते हैं पर हृदय लिखते हैं। वीरांगनाको यदि कोई पढ़कर काव्य कुंजमें रम सकता तो एक मधुर मधुर ध्वनि निर्बाध सुनी जाती। जगदम्बाप्रसाद हितैषी भारतकी प्रचण्डवाक् गायक हैं। नरेन्द्र पास आकर युग मनुहार करता है कि उसके कंठसे बोल हुए बोल पुन-पुन सुननेको मिलें। ललितकुमार सिंह 'नटवर' भी नाटकोंके नायक भी हैं किन्तु राष्ट्रभारतीके गायक होनेका अभिमान उनका अक्षुण्ण है। वाराणसी अभिलाषी भारतकी मनस्वी भारतीके आकर्षण हैं और सबसे अधिक प्रांतमें महाकोसलकी स्नेहस्निग्धा वाणीके पूत पुष्प विश्वनाथ प्रसाद हैं सजग हैं और युगमें भाग्य-रेखा खींचनेके लिए वा बहुत नवीन हैं न हैं—चपल और मदमानन्द। निरंकार देव अपना विहगकुमारसे ऊब उठे हैं। अब वे चट्टानोंकी ध्वनियों से प्रवाहिताके स्वरमें बाँधना चाहते हैं। प्रभुदयाल अग्निहोत्री युग भारत-की चमकका स्वागत करते हैं।

उर्दू और हिन्दीका झगड़ा हम कृत्रिम रूपसे राष्ट्रभाषाका सवाल बनाये हुए हैं। इसमें दो भाषाएँ नहीं रहती हैं न रह सकती हैं और फारसी और अरबीके विदेशी शब्द तथा संस्कृतके कठिन शब्द दोनोंकी हिमायत हम एक ही जगह पहुँचाती है—यानी वह राष्ट्रभाषाका रास्ता रोक रही है उसको सीधा तरह आमकी जनता नष्ट कर देती है। जो लोग पाकिस्तानकी माँग करते हैं उन्हें भाषामें भी पाकिस्तान चाहिए। किन्तु गरीबों-द्वारा ही जनताको उसकी वर्तमान स्थितिमें न पाकिस्तान टिकेंगे

थे। जब कठिन उर्दू और फ़ारसीके शब्दोंकी भीड़ आ जाती है तब उसे दूर कर उस भाषाके टुकड़े कर उसका एक अलग स्वरूप बनानेकी तरह देखकर लाया जाता है। किन्तु जब हम कठिन संस्कृत पद हिन्दीमें ठूँसकर उसकी सरलताको नष्ट करते हैं तब हम भाषाके स्वाभाविक मार्गकी तरह सरल होनेके मार्गमें रोड़ा अटकाते हैं और साहित्यकी दृष्टिसे विशृंखल अनुभव करते हैं। मैं तो राष्ट्रभाषाका स्वरूप जब दक्षिण भारतमें जाऊँ तब बँगला उड़िया तेलुगु तामिल मलयालम कन्नड़ मराठी और गुजरातीभाषियोंमें राष्ट्रभाषामें कार्य करूँगा तब उन भाषाओंमें जितने सर्वसाधारण संस्कृत शब्द काममें आ रहे हैं और हिन्दी भाषा जिन संस्कृत शब्दों-द्वारा समान भावसे सरलता प्राप्त करती है उन सबको सहजतासे मैं स्वीकार कर लूँगा। क्योंकि न मुझे भाषाके हमारे भाषा सहज स्वीकार है न परिस्थितियोंका पक्षपात कर मैं सहज स्वीकार है किन्तु जब मैं सिन्धमें जाऊँगा हैदराबाद भेजा पंजाबमें जाऊँगा काश्मीरमें जाऊँगा सीमाप्रान्तमें जाऊँगा और बंगालमें जाऊँगा तब मैं उन शब्दोंको स्वीकार कर लेना चाहूँगा जिनसे वे समझ सकें भाषा मेरे बापकी उन सीमाओंमें समझी जानेकी चीज हो सके। मैं है भाषाको बोली तुर्की अरबी और अंग्रेजी शब्दोंको हिन्दी मज़बूत और सब स्वीकार करूँगा भाषाओंकी तरह और सदैव सम्पर्कोंमें रहूँगा कि वे उन भाषाओंसे प्रभाव लिये हुए शब्दोंको प्रतिदिन इस देशकी प्रकृति और इस देशके साहित्यको संपन्न करनेवाली प्रान्तीय तथा भारतीय भाषाओंमेंसे चुन लें। मैं यह कभी सह नहीं सकता कि भारतीय ईसाइ मुसलमान आदि हम जीवनका अपना सरलमार्ग छोड़कर संस्कृतनिष्ठ पथ छोड़ें।

आप जानते हैं राष्ट्रभाषाकी विरोधिनी भाषा कौन बना रहा है? और वह क्यों बन रही है? मैं यह प्रयास काफी दिनोंसे परिणाम देख रहा हूँ मैं स्वतन्त्र हिन्दी और उर्दूमें। लिखित पुस्तकोंमें बताकर विरुद्ध

विद्यालयों तक देश भरमें वह कौन-सी भाषा है जिसका पढ़ना हमारे बच्चोंके लिए अनिवार्य है? आसेतु हिमाचल इसके न्यायाधीश सुप्रीम सन्त न होनेका गर्व करनेवाले अंग्रेजी राजकी कृपासे किस भाषामें अपने फैसले लिखते हैं? देश भरकी स्थानीय स्वराज संस्थाओंसे लेकर धारासभाओं तकपर किस भाषाकी प्रभुता जारी रही है? शासनके नायब तहसीलदारसे लगाकर गवर्नर और बादशाह वायसराय तक किस भाषामें राजाज्ञाएँ दे रहे हैं? हमारी संस्कृतिको चाहे वह मुगल-युगकी हो या राजपूत-युगकी या अति प्राचीन युगकी खोज करनेवाले विद्वान् अपनी धाराओंको किस भाषामें रखकर विश्वविद्यालयोंके आचार्य बन रहे हैं! वह कौन-सी भाषा है जिसमें अपनी योग्यता सिद्ध किये बिना इस देशका चिन्तक, चतुर और चाकर — कोई मान्य नहीं माना जाता? जब सारे देशमें अपनी वाणी पहुँचानी पड़ी तब किस भाषामें लोकमान्य तिलकको मराठी भाषा लाजपतरायका पीपुल, एना बेसेण्टका न्यु इण्डिया और कामनवील, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जीका बंगाली, श्री कस्तूरीरंगा आयंगरका हिन्दू और महात्मा गान्धीको यंग इण्डिया और हरिजन प्रकाशित करने पड़े? वह कौन-सी भाषा है जिसे हम पड़े लिखके आस प्रान्तोंमें अपनी बात पहुँचानेके लिए चिट्ठियाँ और चिट्ठियोंके पतामें लिखा करते हैं? राष्ट्रके शरीरपर धमनियोंकी तरह दौड़नेवाली रेलोंका विभाग कारबार किस भाषामें चला रहा है? भारतमें किस भाषाके वह अपूर्व है जिसके व्याकरण और मुहावरोंको लेकर देशी भाषाके पण्डित अपने कलेवरको भिन्न बनाकर धन्य होते हैं? हमारे दरवाजोंपर किस भाषाओंमें तख्ते लगे हैं? शिक्षाके शहरोंकी आसपास विचरण करते हुए आज कम पढ़ा-लिखा भी अपने हर वाक्यमें किस भाषाके दो-तीन शब्द मिलाये बिना नहीं रहता? हम क्या आँखें मूँदते हैं कि अंग्रेजी इस देशकी साधारण भाषा नहीं बनायी जा रही? हमें तो तभी आश्चर्य करना चाहिए था जब राष्ट्रभाषाके पदमें हमारा आसन

न होता। स्वराज्यकी चर्चा है तो पाकिस्तान हाजिर है। राष्ट्र-भाषाकी चर्चा है तो उर्दू हाजिर है। यह झगड़ा अभाग्य अपना नहीं है। इस झगड़ेका अधिक चर्चा करके हम इसको जीने अधिक पाने नहीं देना चाहते। इस बातको हम बड़ा मुश्किल है कि जहाँ अंग्रेजी देशके समस्त विश्वविद्यालयोंमें अनिवार्य है, वहाँ इस देशकी कोई भाषा अंग्रेजी की तरह अनिवार्य रूपसे पढ़ायी नहीं जाती? हम आनका जिम्मेदारी नहीं मानते क्योंकि सूर्य और वायुको किसीकी नहीं मानते। किन्तु सूर्यकी रोशनीमें भी हम दरवाजे बन्द कर उपभोग रह लेते हैं और वायुकी दशामें हम अपने कमरों और आवरणोंमें अपनी रक्षा कर लेते हैं किन्तु अंग्रेजीके प्रभावमें हम सर्वथा असहाय हैं। अंग्रेजी भी देश भरमें फैला हुई है और इसी उसकी भाषा है। कभी रोष और कभी आर्द्रिम लोग लगाते हैं और यह उस समय तक इसके साथ बहुमतकी धार्मिक सामाजिक सांस्कृतिक परम्परा उस मार्गाम चली गई है। इस सम्पूर्ण एशियाका स्वप्न आयत रखकर भी कभी पश्चा-द्गुणी ध्यानसे कहीं सपाटा तिब्बती और चीनी पढ़ नहीं पाये। हम विद्यार्थी समान रूपसे पढ़ नहीं पाते। आरम्भ किन्तु और सानन्दाम समझमें पड़े सो बात नहीं। थोड़ी-सी तालीम इसके होने न होने हमारे देशमें हर दस्तावेज अंग्रेजी पढ़ायी जा रही है। अंग्रेजीका माध्यम मान लेकर इस देशी भाषाओंमें इसलिए नहीं मान लिया जाता कि इससे कहीं अंग्रेजी कमजोर न पड़ जाय। यह सब देख-सुनकर भी हम आराम से चक्कर काटते हैं कि राष्ट्रभाषाका दुश्मन कौन है? मैं नहीं जानता कि इस मनस्थितिपर गम्भीर पाठक सोचकर समस्याको अलग अलग रखकर विचार करनेका परिणाम लेकर हम और अधिक सोचें। हम दूर रहना चाहते हैं तो पीछे किसी वक्त मानेंगे कि हमने भूल की। हम निकट आना चाहते हैं तो निकट आनेमें हमें कोई नहीं रोक सकता। और यदि हम अभी आरम्भमें नहीं रख सकते कि हिन्दुस्तानकी समस्त भाषाओंमें

वह शीघ्र परिचित हो सके और हिन्दुस्तानके गाँवोंके गरीबों तक समझी जाये तो हम अपने मस्तिष्कके व्यभिचारके विस्फोट शहरोंमें किये रहें। इस देशमें अपभ्रंशके रूपमें एक परिचित और सरल भाषा बनती रही है और वह बोलनेवालोंकी आवश्यकतापर परिवर्तित होती रही है। कठिन शब्द डालनेकी जिद करनेवालों और उनकी अकड़की हत्यासे मुझे हाथ मल्ल लाभ होते आये हैं। चाहे वह जिद कठिन फारसीकी हो चाहे कठिन संस्कृतकी। भाषाको हिन्दी वैसा ही अपभ्रंशका स्वरूप है और वह अधिकाधिक सरल होती जाये।

रेडियोका नियन्त्रण भी भारत सरकार करती है और अपने प्रकाशन विभागका भी। किन्तु अपने हिन्दीके प्रकाशन-विभागकी भाषाको वाली रेडियोके शासन पालिसीकी भाषाको वह हिन्दीके रेडियो मंचपर नहीं चलने देती। भाषा पक्षमें यह 'सम्भाषणेषु व्यापार' समाचार और मनोरंजन कला-प्रियता और ग्राम-सुविधाकी अमलादी बालबारीसे लाभ उठाकर सरकार पराया एक दूषित भाषा लाद रहा है। युद्धके लिए चन्दा देने समय विज्ञापनोंमें सरकार और हिन्दी बोलती है और रेडियोमें समाचार सुनाते समय ठीक दूसरी हिन्दी। पण्डित मौलवी और पादरी मुराद रख गये हैं कि व माला सुनावें, कलाम शरीफ सुनावें और बाइबल सुनावें। और भारतको बहुजन समाजकी भाषापर गोले गिरानेका बड़े पैमानेपर प्रयत्न जारी है। आकाशवाणीके द्वारा हितैषोंने इस और जनताका ध्यान खींचा था और रामनाथ पाण्डेय आदि सज्जनने कुछ प्रयत्न भी किये थे। किन्तु संगठित प्रयास न हो तब तक कुछ कैसे हो?

पता इधर पतन प्रतिभाशालिता और बुरी भाषा पानेका दूसरा स्थान सिनेमा है। किन्तु इधर उसमें सुधार हुए हैं। हिन्दी भाषा सुगमता और न्यायमार्गी नियन्त्रणमें इस दिशामें हम संगठित होना चाहिए सभी हम लोग सुदर्शन सत्यम मालोपाध्याय चतुर्माला सम्पादक भगवतीचरण नरेन्द्र प्रताप मार्तण्ड किशोर प्रभात-जैसे कलाकारोंको भाषाका नियमन

कृपापर जीवन बिताये न हम पुराण वस्तु संग्रहालय यानी मुहाफ़िज़ख़ानों-का ही साहित्य लिखें जो केवल बस्तोंमें बँधा रहे और छठे-छमासे व्यवस्था देनेवालोंके द्वारा देखा जा सके। दूसरी ओर हम इस बातसे भी सावधान रहें कि जो कुछ लिखा जाय वह चाहे वैसे दिनोंमें प्रकाशित होनेवाला सामयिक पत्र-साहित्य मात्र न हो किन्तु वैसे वर्षोंमें प्रकाशित होनेवाला तात्कालिक आवश्यकताओंपर बहस करनेवाला खाद-बीजों साहित्य मात्र भी न हो जाये। हम लिखें वह जो प्रतिभाकी नवीनता और विवेचनकी ज्ञानगर्भित शैलीके कारण अनन्त वर्षों तक जीनेकी अपनेमें सामर्थ्य रख किन्तु सिपाही पेशावस लगाकर खेतों और खलिहानोंमें काम करनेवालों-का जीवन-साथी जो साहित्य बनकर रह सके। हम लिखें वह जो कोटि-कोटि नर-मुण्डके स्वप्नोंका जागरण हो सके और उतरते हुए आदर्श चढ़ते हुए पौरुष उभरते हुए उद्योग और समर्पित होती हुई सेवाके पथमें अपना साहित्य बनकर उतर सके। वह राहगीरोंके समय काटनेका कुल्हाड़ा मात्र न हो किन्तु समयका पथप्रदर्शक राहगीर भी हो सके।

तोप-टैंकोंमें युद्ध-क्षेत्रोंमें औद्योगिक-क्षमतामें और संकट-स्थलोंमें नजर डालकर देख हिन्दीके कलाकार! कि तू कहाँ है? तेरी कृति कहाँ है? तेरा प्रभाव कहाँ है? तेरी प्रतिभा-हीनतामें तेरे पूछ मिलनेके गमके फल-स्वरूप मत हो तुम स्वयम् विमान आ जाये या तेरे सपनाका गौरव तुझे स्वयं सौंपने लगे किन्तु लाभ-मनुहार पढ़नेके लिए विरहके विचारमें टकराने और लोक-हृदयमें उतरनेके लिए, लोगों-जैसा जिसका आचरण और उनकी आवश्यकता बननेके लिए जबतक तू अपनेको परास्त पाता है तबतक कोटि-कोटि नर-मुण्डोंकी वाणीके आधारोंकी पहचानेका और कोटि कोटि नर-मुण्डोंका हथनीपर उतारकर उनके आराध्यपर चढ़ा इनकी वर्जनी पठानका मानव तुझे छोड़ना पड़ेगा। मानव शरीरमें हड्डियाँ हैं मांस है मस्तिष्क और हृदयमें भी कुछ ठूँसा कुछ भरा है। किन्तु शरीरमें प्राणी प्रमुख है। वहाँ प्राण रहता है। वहींसे मानव

पत्थर बोझ बनकर आती है। उस जगहसे मूल्यवान् शरीरमें कुछ नहीं लगा। क्या वही बोली विश्वकी उलट-पुलटका वही ऐरावत काम निराला और पनपानेका म्युनिसिपल कूड़ा ढोनेके काममें लाया जाने लगे? और यह सब साहित्यके नामपर? हिन्दी पद्य परसों तक ब्रज भाषामें लिखा जाता था। श्री मैथिलीशरण गुप्तकी जैसमीन गद्य और पद्यके सुमका मिलाया। गद्य भी बेचारा बनस्पती जानके बाद पथ ढूँढता रहा कि हिन्दीमें अपनी कोई गति बना ले। द्विवेदीजीने उसे गति दी प्रगति दी। स्थान अधिक तब देना पाया, मुहाविरोंने समयपर आना आसमान अपना रखकर ठहरना पुष्ट-अक्षरोंने तब बहुतकी रेलगाड़ीके रास्तेपर लगन लगी और हरी झण्डी बनना सीखा। जिह्वा और मस्तिष्क भाषाकी सिवाय बारहखड़ीपर कदम-कदमपर पहरा देना सीखा और विषयकी विविधताके भिन्न भिन्न मस्तिष्कोंने यह दिखाया कि किसी व्यापकका रथ क्यों विद्यामें काम आ न जाय भाषाने निर्मलताकी भूमिका रच बड़ों स्त्रियोंमें खूब आना-जाना है। द्विवेदी-युगका यह संकेत लिये हम यहीं ठहर हैं। बीते हुए कलापर कब्जा करना तो दूर कम्युनिस्टके सिवा प्रयोगका वरद् हर-तरह उत्साह और हाथ मुट्ठी आती है। हमारी यह कहानी समाप्त हो।

गाँवोंकी ओर गरीबोंकी ओर वाकरसमन्दोंकी ओर कौन जायगा? शान्ति क्या कस्बेमें ही हो सकती है? क्या गाँवोंमें रस नहीं कि कहानियाँ नहीं? गाँवोंमें तत्त्व नहीं कि तथ्य नहीं? गाँवोंमें स्वप्न नहीं कि सुख-स्वप्न नहीं? फिर शहरकी कल्याणमय बनानेके बजाय हमने गाँवोंमें रस-स्वप्न क्यों नहीं किया? जिस गांधीग्रामके आत्मदर्शन खण्डहरोंका बाना देकर हमारे लिए नाटकियोंकी भारतीय शासन-नीति ढूँढी हमने स्वयं गांधीग्रामकी छापपर अपने अज्ञानका खण्डहर खड़ा कर लिया। क्या हम अपनी रूपग्राम गौरवमय बौनीकर हीराचन्दका एतिहासिक भूतोंके वैभव सम्बन्ध जितनेप्रकारसे विश्वके भिन्न-भिन्न दशाकी उत्तम-

पुष्पक आसन-से भारतीय मूलका डोरा बनकर मुखर आनवाले बाबा रामावतार शर्मा राहुल सांकृत्यायनको और छायासमन्वक सोनम महा माधवके इतिहासके नामपर हमारी उपेक्षाकी चट्टानपर अपने ऐतिहासिक प्रयत्नोंके आँसू बहाये जायसवाल लोचनप्रसाद पाण्डेयको या रायबहादुर हीरालाल-जैसे इतिहासज्ञके समयसे पहले स्वर्गवासी हो जानेका कारण कविताका पथ छोड़ इतिहासकी अध्ययन पथ — इन मार्गोंका भी जिनकी अर्थाभावपर आमुख होकर हमारा विद्वानों-द्वारा अनगिन भूलोंके विद्वताका परम मान्य बनकर आना चाहता है हमारी वाणीके दास-प्रवीरक इन मनोंको — उपहासकी कभी भीख मार डालना चाहते हैं जिस मौत कि हम साहित्यके सुधाकार जीवनवालोंकी भूल जानने वालोंमें हैं ? अपना समनाम असाधारण प्रतिभा देखनेका रोजगार करते और मुक्केसे हाथ पीटकर उस गणपतिकी मध्य पहुँचानेवाले हम क्या अनुभव कर सकते कि साधारण प्रतिभाके असाधारण और अचल उसमें बैठकर विचारों और भावोंको जो स्मरण-यात्रा कलाकारोंकी जीवन-यात्रा बनकर आती है वह भी अपने निराले स्वरूपमें अखण्ड और असाधारण प्रतिभा रहस्य सकती है ?

लिखना एक-कर नहीं है जिसे अमूल करना ही पड़े लिखना समालोचकोंका प्रदर्शन नहीं है वह भाषापर उपकार नहीं है वह समाज को छोटा मानकर अपने बड़प्पनकी डींग नहीं है वह युग समाजका क्षुद्र समाधान शिक्षणका आभूषण नहीं है। वह धन है जिसे कोई न ले सकता है जिसके पास हो वह साधन है जिसपर-से समूचियोंकी समूची जाति बार बारके एक युग-स्वप्नसे दूसरे युग-स्वप्नमें पहुँच जाती है वह प्रवर्तन करता है उन प्रक्रियाओंका जिनके प्रकट न करनेपर पीढ़ियाँ पीढ़ियोंके अन्धकारमें भटकते रहनेको बाध्य हैं वह दान है रक्त दान है — उन युगको जिनमें प्रतिभाका श्रृंगार कर भावोंकी तरह गर्वित और विश्व-निर्माणकी तरह शक्तिमय बनकर हम साहित्यके साधक पद रखनाम करते हैं जिनमें

हिंदी! अपने प्रान्तमें जन्मसे लेकर ऊँचेसे ऊँचे पद भूमिका आकर्षण
किया कर साहित्यका और धर्म पाई और अपनी भाषाके परम धर्मोंका
अपना मातृभूमिका गौरवपर बाहें झुकाकर समर्पित कर दें। साहित्यिक!
तू समाविराज है। गंगा और जमुना भारतका तट पास है। तू गगनका
मनस्वाका मस्तक है। किन्तु यह दशा कि क्या तुझमें भी किसी भूमि
सम्बन्धी रक्षा हो रही है? तेरे कृपा-कणोंका धाराके किनारे भी क्या
इधर-उधर और उजाड़ हो रहा है? क्या अनन्त जन-राशि रत्नाकर तक तू
पहुँचकर मानता? और तेरा सरसता नहीं पूछती? सब कुछ! तेरा बातें
और अनेक उत्पातोंका हरियाला लोक-जीवन सह लेगा। तेरी प्रतिभा
आपकी मान्यमें विश्व अनन्त जीवन-यापनका व्यापार चला गया। उन्नत
पन्थपर वह तेरे तीव्र स्वरूपकी धाराके आर-पार हो गया। इसलिए कि
अपनी पीढ़ी और परिस्थितिको हरी-भरी रखनेके लिए उस पुण्यात्मा
और उसकी बनाये रखनेके लिए तूने पहाड़के हवलेका मार्ग छोड़कर
पुष्प-भारके लिए लगातार उतारका ढाल पथ ग्रहण किया है। तुझे याद
रहे कि तुझे कोटि-कोटि नर-मुण्डोंके सामने अपराधोंकी तरह इस प्रकार
जवाब देना है कि इंजीनियरके साहस तेरे धाराओंमें जल वहन करनेकी
अधिक शक्ति और विश्व-रचनाका अधिक ज्ञान है और इंजीनियर प्राप्त
करनेके लिए तेरा मुहताज है। राजनीतिज्ञ कल मर जानेके लिए अपनी
आजकी प्रसन्न-भावना इसलिए भरतोंकी अनुभव करता कि आज अपने
शासित मतदाताओंपर मरकर कल और कलके बाद अनन्त कालतक वह मरकर
यश तुझमें न किया रहे। और पाणिनिकी मालाएँ-सी पुष्पराशियों-सी
मनिपालन-सी विद्याओं-सी रागिनियोंमें-से और व्याकरणमें-से तू पचारता रह
कि उनका यहाँ इस उँचाई-सा सिरके भूलोंपर सिर उठाकर रख
देने इसी देशमें-से है बस भाषा। मनोविज्ञान तेरा पथ न पकड़ेगा।
पर तेरे पथको मरण करना। क्योंकि व्याकरण तेरा पथ न रोका तो
माता और विचारोंका व्याकरण तेरा पथ कहाँ तक रोकेगा? प्रेम पूर्ण

क्रोध मत्सर दंभ मोह और काम मनोविकारोंका इतना हो हो मूढ़पन है। यदि इन्हें लेकर उपदेशक बननेके लालचमें तू उपदेश दो उपमान और आदर्श ही दिखलाने लगे तो मुझे मरनेसे कौन बचा सकता है? किन्तु यदि तू अपनी कल्पनाशक्तिके उदाहरणोंके अपने सारे विकारोंपर प्रतिमा पूर्ण रोष कर तो सम्भव यहाँ अब कृष्ण पैदा हो या न हो किन्तु व्यास! तेरी कलममें उत्तरमवाला कृष्ण पताकियोंकी छाती बेध-बेधकर लोगोंकी कल्पनापर मुझे मूर्छा आपाके हृदयपर उन्मेष करता और घुमा घुमा तक लोगोंकी कीचपर एकता नजर आयेगा। यदि अनुभव करने वाला न हो तो रोमांचका वरन उठा ही क्यों हो? और तू अनुभव कर कि महाभारतको भारतीय जातिने तेरी वाणी चाही थी इसलिए कि इस वाणीसे वह उनके भाग्यका लिखा मिटा सके जिनके भाग्यपर गुलाम लिखा है और तेरी वाणीमें—उस वाणीमें जो आसेतु हिमाचल व्याप रही है—'मुक्त जीवन' उनके भाग्यपर लिख सके। वह लड़ाई जो कारखानोंमें चल रही है खेतोंमें लग रही है क्रान्तिकी साधनाके लिए तेरा मुँह ताक रही है।

हमने आज तक राजाओंको लिखा, नवाबोंको लिखा, बादशाहोंको लिखा। कैसरजीकोट इनके स्वाम बनमेव हमने कौन-सा गौरव अनुभव नहीं किया? आज बड़ा तो हम गरीब गये, हमारी पाप तुरीय की नदी किन्तु अब गायोंने इन्द्र बने तो गरजा निकला कबीर विनकर और मरा पुत्र और दूसरा पुत्र फिर बिक गया। बड़ा यह कुटिल पतन जो हमारी सामर्थ्य-हीनताके कारण हो हमारा भाग्य बना बसा जा रहा है तुमने न देखा? क्या मजाक? ये पाठशालाएँ हैं, यहाँ गुलाम बनते हैं। ये विश्वविद्यालय हैं, यहाँ कालोंका ज्ञान आपसपर ताजाकी उत्तरदार देहम आया करता है। ये ग्राम हैं, इनमें वनका पतन भी उत्पात है और टट्टाका उत्पात भी पतन। ये शिल्पविद्यालय हैं जिनमें तू नहीं तर सागर तैयार होते हैं जो इसके भाग की गुलाम लिखते हो स्वाधीन ये गुलाम

रखकर सेवा नहीं शासन ग्रहण करते हैं। वे तेरे मालिककी पराधीनता
भी दूकानदारीके तुमपर नये रहमवाले पहरेदार बाँधते हैं। वह लाख
हम बनता? उसके पास अक्षर इसलिए नहीं पहुँचे कि फिर उसके
शासन तराजू तक और तलवार साम न उठा सकते। तू बैठा गात
ही गला रहा और तराजू तलवार तक और सेवाकी लागत सिंहासन
के द्वार, इन्सानों जातियाँ बनाकर खड़ा कर दीं। जहाँ पढ़े-लिखे बीस
हजार भी नहीं वहाँ पेशियाँ बन गयीं। ऊँचा समाज और दुबला
यदि हमारी जमीनपर साथ-साथ न जावें तभी आश्चर्य है। संघर्ष जिस
युगोंके हाथ है वह जिसे युगोंकी जाति है और बस साँस सपन और
समाज — कोटि-कोटिक। सब कुछ 'कुछ'के काम आतकी जाते हैं
करते हैं पशुकी बानी पशु समझ सकता है। तुलसीदासजी कहते हैं —
"लाग भाग जग ही की माया।
और तूने यह व्यवहार किया है कलाकार! कि तेरी बिक्रीके बाजार
पुन गये किन्तु मानवकी बोलीको मानव नहीं समझ पाया! भाषाएँ
सुधार हुए, तू घबराया लिपिमें सुधार हुए तू घबराया बाजार बदल
तू घबराया दुनिया बदली तू घबराया। किन्तु तुम स्मरण रहे भाई!
उसी नाम घबराहट नहीं! घबराहट लाचारी होती है और लाचारीका
नाम नष्ट किया करते हैं पास-पीसकर अपने पास नहीं रखा करते।
उसी नरक का मरण है जिसे तुम निर्माण किया है! और इसीको और
इसी ग्रन्थको सिखाकर ताड़कर या मरोड़कर तुम वह दुनिया
बना देना है जिसे [अपनी पीढ़ियोंका सौंपते समय तू अपनेको मगन
अनुभव कर।

मध्ययन? जान पर आत्मोत्सव है या मरण त्योहार! नारीका
देख है नहीं और इनाई महाराजे मास-तौलका हिसाब लिखा था रहा
है। विद्रूप समस्यायें हा शायद मेरी कठिनाइयोंको समझने हो।
मेरे लिए गर्भमान एक प्रतिमा है। यह १०११में यन्त्र मरती चलो था

रही है। वह है कि आज प्रयागमें है, कल भाषाके गौरवके पदपर है, पटना। फिर प्रयागमें है और बार-बार जेलमें बन्दी है। फिर वह लाहौरके किसी बैंकके मैनेजर हैं और फिर लोक-सेवक-समितिके सिरपर हैं। किन्तु मैंने सदा उस प्रतिमाको हिन्दी जगत्की कठोर बाहु रखते हुए, हिन्दी जगत्के चरणोंमें ही देखा है। वह प्रतिमा मुझे त्रिपद्-माकार मस्त और साहित्यिक — सीधा श्याम दीख पड़ती है। उसके मनमुखमें शान्ति है, सहीम निश्चय है और उसकी बलिष्ठ हिन्दी ढालके कुछ ऊपर चमकती ओजस्वी राष्ट्रभाषाके अभिमानकी आत्मरक्ष्य ज्वाला है। यह सम्मेलन जबतक मेरे मतमें उस कविकी दिव्य कविता बनकर रहेगा तबतक हमारी पीढ़ीका समर्पण उसके चरणोंमें रहना चाहिए और हमीतक प्रयाग तीर्थराज लेकर अपने जीवनके फूलोंको बढ़ाये हुए हैं।

मैंने कुछ मित्रोंको पत्र लिखे थे और कुछ लिखकर मुझे। जो सूचनाएँ मिलीं उनमें मद्रास हिन्दी प्रचारकके परम उत्साही और आज राष्ट्रभाषा प्रचारके उपासी तथा हिन्दी प्रचारकी मूर्तिमान् स्फूर्ति श्रीमान् बाबा राघवदासके दाहिने हाथ श्रीयुत हृषीकेश शर्माने सूचित किया है कि राजगोपालाचारी-मन्त्रि-मण्डलके विनाश महासभ... विरोधी आन्दोलन चल रहा था वह उस प्रान्तकी राजनीतिक हुआ था। और कांग्रेसको दण्ड देनेके उत्साहियोंने हि... राजनैतिक साधन बना लिया था। नागपुर विश्वविद्यालय के अध्यक्ष डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्रकी राय है कि पंजाब वि... प्रभाकर आदि परीक्षाओंका अनुकरण नागपुर तथा हिन्दी... विश्वविद्यालय भी करें। बरेली कालेजके प्रसिद्ध साहित्यसेवी बाबू ... प्रकट किया है कि विश्वविद्यालयोंमें का माध्यम हिन्दी हो। हिन्दीकी सभी संस्थाएँ प्रतिवर्ष हिन्दी मनायें हिन्दीमें समालोचनाकी एक व्यवस्था निश्चित हो ...

निर्णयों और संस्थाओंको बाद कार्यान्वित न किया जाय। प्राध्यापक श्री प्रभाकर माचवेने सूचित किया है कि मध्यभारतके सहृदय सुकवि श्री कुसुमजी का कवितायोंका संग्रह अ० भा० स०-द्वारा प्रकाशित किया जाय तथा बम्बईका संस्कृत और हमारी सोसायटी आदि अपनी संस्थाओंके निमित्त हिन्दी भाषाका माध्यम स्वीकार करें। पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदीने सम्मेलनको एक सभा ही दी है और श्री वासुदेवशरणजी अग्रवालने उत्साहसे साहित्यिक संगठनके लिए एक अच्छा कार्यक्रम सूचित किया है।

यदि मैं अपने स्वास्थ्यपर काबू पा सकता और अपनी भावनाओंको सम्मेलन और हिन्दी जनतापर मना सकता तो मैं यह योजना रखता —

१ हिन्दी भाषाके विकास और स्वरूप-निश्चयका दृष्टिकोण सामने रखकर ग्राम प्रचलित प्रान्तीय भाषाके उन शब्दों, मुहावरों और कहावतोंकी जाँच की जाय जो या तो हिन्दी भाषामें हैं या हिन्दीके निकट स्वतंत्र हैं या जिनका हिन्दीमें मेल उनके मूल रूपके कारण संभव है। एक विभागीय समिति ही यह कार्य कर सकती है।

२ हिन्दीभाषी ग्रन्थों, सामयिकों और साहित्यिकोंकी जयन्तियाँ तथा पुण्यतिथियाँ मनानेके लिए सम्मेलन अपनी सम्बद्ध संस्थाओंको सूचना दे और वर्ष-भरके इस देश-व्यापी आयोजनका जो विवरण प्राप्त हो उसका सम्मेलन पत्रिकामें किसी एक अंकमें विशेष स्थान दिया जाये।

३ सम्मेलनके बाद हिन्दीके कलाकारों और लेखकोंकी सुविधा और उनके परिवारोंको सहायता पहुँचानेके लिए एक समिति हिन्दी जनताके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें सहयोग प्राप्त कर उद्योग करे।

४ जिन साहित्य-सेवियोंका स्वर्गवास हो गया और जिनके परिवार दुःखमें पड़ गए उनको इसके बाद सहायता दी तथा जो साहित्यिक गरीब हैं उन्हें हम किस तरह सहायक हुए इसका लेखा जोखा रखा जाये।

५. लिपि-सुधारमें देर करके हम रोमन लिपिकी प्रगतिका कारण न दें। आवश्यक सुधारके लिए निश्चित समिति अपनी योजना प्रस्तुत करे।

६ अपने महान् ग्रन्थोंके ग्रन्थकारोंकी रचनाओंपर हम अपनी साहित्य-परिषद्में आपसमें चर्चा करें और अपने कलाकारोंकी गौरव वृद्धि करें। जिन विषयोंपर हमें साहित्यमें नयी पुस्तकें चाहिए उनका निर्देश भी करें।

७ हिन्दी जगत्के समस्त प्रान्तोंके पुस्तकालयों वाचनालयों सूची वाचनालयों ग्रामीण तथा चलते फिरते पुस्तकालयों तथा हमारी प्रकाशन संस्थाओंकी सम्पूर्ण सूची तैयार की जाय और उनके संगठन और नियन्त्रण की योजना बनायी जावे।

८ देशी राज्योंमें हमारी एक निश्चित समिति अथवा प्रतिनिधि मण्डल काम करे और हिन्दी प्रचार और हिन्दीके ग्रन्थोंके पथकी कठिनाइयाँ दूर करनेके लिए राज्यों में स्थानीय संगठन भी करे। ये संगठन स्थानीय जन-द्वारा संचालित किये जायें और अपनेसे उनका उचित नियन्त्रण किया जाय।

९ सुविधाका समय आनेपर उपनिवेशोंमें तथा समीपस्थ देशोंमें हमारा भाषा-सम्बन्धी प्रतिनिधि-मण्डल जाकर हिन्दीके साथ विभिन्न भाषाओंके सामंजस्यपर विचार करे और उन देशोंके आवश्यक साहित्यके हिन्दीमें अनूदित होनेकी आवश्यकता हो तो सूचना करे। यदि वहाँ सम्भव हो तो हिन्दी-समितियाँ या राष्ट्रभाषा समितियाँ स्थापित करे। इस कार्यमें देशके दूर दृष्टि रखनेवाले प्रधान राष्ट्रभाषा प्रेमी यथाशक्ति सहायता की जाय।

१० हम देशमें विद्वान् या साहित्यिक विद्वान् आयें उनका हम अपनी संस्थाओंमें स्वागत करें और उनके द्वारा प्राप्त ज्ञानका विवरण हमारी वार्षिक सूचीमें अंकित हो। ऐसे विद्वान् चाहे जिस देश धर्म जाति या समाजके हों। इस विषयमें उदार दृष्टि रखकर काम करनेका विशेष प्रबन्ध किया जाय।

११ भारतीय समाचार-पत्र विशेषतः हिन्दी समाचार-पत्रोंसे हम

भेजना न छोड़ दें। इससे भारी जमानत की मांगपर, उन्हें कठोर कष्ट दिये जानेपर, वाहन न मिलनेपर, शासनकी साधारण सुविधाओंसे उन्हें वंचित किये जानेपर तथा अन्य ऐसे ही अवसरोंपर हिन्दी-भाषी प्रधान संस्थाएँ साथ हम उनके कार्योंमें अपना दायित्व सिद्ध करें।

१२ समाचार-पत्रोंके लिए हम हिन्दीमें तार भेजने, सस्ते अखबारी कागज मंगाने, दोनोंमें शीघ्र डाक पहुँचाने, शहरोंका कागज गाँव या छोटे शहरोंमें सस्ता पहुँच सकने आदिके विषयमें सरकारका ध्यान आकृष्ट करें।

१३ रेडियो विभागने हिन्दीका प्रायः सम्पूर्ण बहिष्कार कर रखा है। इस उचित पथपर लानेके लिए उक्त विभाग तथा सुननेवालोंसे हम अपना संबंध बढ़ावें, रेडियो रखनेवालोंकी सूची बनायें और उनका घर-घर पहुँचानेका प्रयत्न करें। आवश्यकता हो तो इस कार्यके लिए एक पत्र भी प्रकाशित करें।

१४ सिनेमामें हिन्दी नट, कलाकारों, हिन्दी साहित्य तथा उस विषयक पत्रोंके हित रक्षणपर ध्यान दें। उद्योग करें कि हिन्दी भाषी पूँजीपति और साधनोंपर चल-चित्र संगठन कायम हो सके।

१५ सेनामें गये या सेनासे लौटे हिन्दी भाषी सैनिकोंके पत्रों और डायरियोंका संग्रह करें, और उनका वर्णनात्मक तथा ज्ञानात्मक उपयोगी भाग प्रकाशित करें।

१६ प्रान्तोंमें अभी भी या अन्य पद्धतियाँ हैं और उनका कोई साहित्य प्रकाशित होता हो तो उसकी जाँच कर उनका साहित्य-वृद्धि या भाषा-विस्तारमें सहायक हो सकनेवाला साहित्य हम प्रकाशमें लायें।

१७ हिन्दी प्रान्तोंका धारा-सभाओं तथा शासनसे अपने प्रामाणिक वस्तुस्थिति और शीघ्र-सूचक पहुँचानेके लिए उद्योग करें और इनके व वर्तमान इतिहासका हानिदी प्रकाशमें लायें।

१८ प्रतिवर्ष सम्मेलनके अधिवेशनके समय या आवश्यक हो तो

स्थायी समितियोंकी बैठकोंमें प्रान्तीय भाषाओंके विचारकों और कलाकारोंको आमन्त्रित कर भाषाकी देश-व्यापी समस्याओंपर विचार-विनिमय करें और उनके सम्मिलित उद्योगोंके आधारपर देशके सामने अपनी योजनाएं रखें।

१९ हिन्दी-भाषी गायकों चित्रकारों तथा अन्य कलाकारोंकी पूरी सूची बनायें और कलाकारोंसे अपना सम्पर्क स्थापित कर भाषाके विस्तार तथा साहित्यिक उत्थानके लिए हम उनके कौशल और व्यक्तित्वका उपयोग करें। और अपने अन्य कलाकारोंकी तरह हम अपने बीच उन्हें उत्साहित और सम्मानित करें।

२० जो हिन्दी-साहित्य-सेवी सामान्य अधिकारी श्रमी या मजदूरोंकी हैसियतसे काम कर रहे हैं उनके साथ हम अपनी राजनैतिक सामाजिक या व्यक्तिगत धारणाओंकी जुदता विचार बिना भाषा सम्बन्धी सम्पर्क स्थापित करें और भाषा तथा साहित्यके आयोजनमें उन्हें साथ लें।

२१ ग्रामीण-साहित्य ग्रामीण लेखक तथा गाँवों तक गमन जाने वाले माध्यम हम उनकी उपयुक्त कामकी जिद छोड़कर सम्पर्क स्थापित करें और उनकी वृत्तिम पूर्ण सहयोग दें तथा उनके साहित्यिकों तथा कवियोंका स्नेहसिक्त आदर करें कि उनकी वाणी गाँवोंके सरल स्वर लाखों तक जाता और हमारे आदर्शोंकी पूर्णता लेकर पहुँच रही है।

२२ विश्वविद्यालयोंमें शिक्षाका माध्यम हिन्दी करनेके लिए केवल चिट्ठियों और विज्ञापन ही से काम न लें हिन्दी प्रान्तके विश्वविद्यालयोंके उपाध्यायोंसे मिलकर पाठ्य-पुस्तकोंकी स्वीकृति नव-साहित्य-निर्माण और भावी आवश्यकताओं तथा कठिनाइयोंमें हम विश्वविद्यालयोंका सहयोग करें।

२३ जिन हिन्दी भाषी कवियों और कलाकारोंने संघर्षोंका बलिदान ग्रहण किया उनके साहित्य चरित्र जीवन-क्रम उद्योग और उनकी छोड़ी

हिन्दी रचनाओंको प्यार हम दूसरोंसे न करें। उनके साहित्य और दर्शन और दूसरे क्षेत्रसे हम अपने साहित्य और इतिहासके भण्डारको बहुमूल्य वस्तु भेंट करेंगे। उनके गीत उपन्यास नाटक कथा-साहित्य उनकी भावना और सिद्धान्त सबका प्रतिपादित सबके प्रति प्रेम होना चाहिए।

४. केवल हिन्दी जानकर दूसरोंसे व्यावहारिक हिन्दीतर भाषाओं और भाषियोंसे हम अपना सम्बन्ध न समझें न उनसे दूर रहें। किन्तु उनमें हम उनसे अपना अधिकाधिक सम्बन्ध स्थापित करें और उन्नत करें।

५. सम्मेलनके महत्त्वाकांक्षा हम समस्त हिन्दी जगत्के गौरवका ध्यान रखकर उसका मार्गदर्शनके लिए समस्त हिन्दी-संसारका ध्यान आकर्षित करें।

२१. हम प्रतिभा एवं कलाकारोंकी कृतियोंको सम्मानित करें जिन्होंने हमारे साहित्यमें प्रतिभा या युगकी आवश्यकताकी पूर्तिमें नवीन वस्तु निर्मित की है और नवीन दर्शनका आयोजन किया है। हम प्रशंसात्मक समालोचना एवं भेद न करें किन्तु उपहास वश मार भी न डालें।

मेरी ये सब सूचनाएँ तभीतक उपयोगी हो सकती हैं जबतक एक तो सम्मेलन इस दिशामें सम्पूर्ण शक्ति न लगाये और दूसरे हिन्दी-जनता एवं राष्ट्रभाषा-संसारका प्रतिनिधित्व यह साबित न करे कि उनकी अधिकतर गति उनमें राष्ट्रभाषाकी दूर-दृष्टि और जीवन-समझकी सम्भावना भी है।

इतिहासके विषयमें डॉ॰ रामप्रसाद त्रिपाठी डॉ॰ ईश्वरीप्रसाद डॉ॰ शिवप्रसाद डॉ॰ रामशंकर त्रिपाठी डॉ॰ बनारसीप्रसाद आदि कितने ही इतिहासज्ञ हमारे बीच हैं। किन्तु एक तो उनकी कृतियाँ अंग्रेजीमें अधिक हैं, दूसरे मराठीके इतिहासकार सर देसाई और राजवाड़े की तरह पूरी लगनसे हिन्दी जगत्के इतिहासके पीछे भाषाओंकी

तरह पढ़ जानेवाले मनस्वियों और तपस्वियोंका हमारे पास टोटा है। यही कारण है कि राजस्थान, बुन्देलखण्ड और बिहार तथा युक्तप्रान्त और इन्द्रप्रस्थमें हमारा इतिहास फैला हुआ है, किन्तु अपने युगकी जनतामें उस इतिहासके प्रति अभिमान उत्पन्न करनेमें हम आज सफल नहीं हो रहे।

उपन्यासकी शिखर धारा हिन्दी जगत्को प्रेमचन्दजीकी देन है। गढ़कुण्डारके यशस्वी लेखक वृन्दावनलालजी वर्मा हिन्दीको प्रेमचन्दजी की जोड़का दान देंगे। युवक जैनेन्द्र आज जीवनके नवीन धारामें अपनी कृतियाँ लेकर उद्यत हैं। यदि उनका निबन्ध-लालच उनके झाड़का रह सके, उनका दार्शनिक उन्हें उपन्यासकी निर्मम साधारणतासे दूर न हटने दे और वे उपन्यासको कलमको प्रेमचन्दजीकी तरह एकान्त स्थान दे सकें तो वे युगकी माँग पूरी करने योग्य उपन्यास और लघु कथाएँ हिन्दीको देते रहेंगे। इस मौलिक पक्षमें हम चन्द्रगुप्त, इलाचन्द्र जोशी और भगवतीचरणकी ओर आशा-भरी दृष्टिसे देखना चाहिए। एक मन करने योग्य चमत्कार वात्स्यायन और यशपालकी कलमपर उतरना चाहता है—ऐसा लगता है।

चरित्र-लेखन हमारे यहाँ प्राय: आरम्भ भी नहीं हुआ। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी कविरत्न सत्यनारायण और भारत-भक्त एण्ड्रूजपर लिखा कुछ न लिख पाये और विद्यार्थीजी तो या जमनालालजी और महात्मा गान्धीपर लिखा है, शुभ है, पूरा कामका भी है, किन्तु वह चरित्र-लेखनका सम्पूर्ण सोपान नहीं माना। वह तो स्मृतियोंका साहित्य है और इन जैसी परिस्थिति-प्राप्त कलमोंको इस दिशामें खूब लिखना चाहिए। आत्म-चरित लिखते भी हमारे हिन्दी मर्मीयोंकी आँखें शर्माती हैं। यहाँतक मैं मानता हूँ केवल गुलाबरायजीने लिखा है और नाम दिया है—मेरी असफलताएँ। श्रीमती शिवरानी देवीने भी अपने पति प्रेमचन्दजीकी कुछ स्मृतियाँ लिखी हैं। इस दिशामें शिवाजी और भगवानकी कंजूसी छोड़

...रतापूर्वक इसे साथ चलना चाहिए।

नाटकी दिशामें प्रसादजीने प्रतिभाके बलपर भाग जा लिया है ... गई है। किन्तु जो लिखा है उसमें रंगमंचपर पहुँचने-जैसा बहुत कम ही है। मात्र अभिरुचि है। इस दिशामें स्वर्गीय बदरीनाथ भट्टकी कमी ... अभावकी पूर्ति कर सकते थे। बाबू गोविन्ददास ... चार नाटक लिखकर नाना नाटकोंकी पूर्ति करा दी है। या नाटक ... और समस्त विशेषताओंसे भरे हैं उनके समान ... पं० गोविन्द प्रेमी, श्री उदयशंकर भट्ट और ठाकुर लक्ष्मणसिंह। ... 'रक्षाबन्धन' और ठाकुर साहबके नाटकोंमें 'उन्मत्त' ... है। इस दिशामें उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा अन्य कई विद्वान् लिख रहे हैं।

इनमेंसे नाटकोंमें या ... अपनी रचनामें कुछ ... है। किन्तु उनकी भाषा मंचोंपर और ... न ... । तदनुसार क्योंकि ... है, न ... है। इस ... और ... उद्योग ... है।

... और ... भाव इसमें ... और ... होना चाहिए। यों ... वर्णन ... , ... किन्तु ... और ... अभी ... । नयी धारामें उपेन्द्रनाथ ... किन्तु ... और ... किन्तु अभी देर है जब उनकी ... हो सके। यही ... प्रतिभा ...

...

बिना नहीं रहती और न युगको वस्तु दे सकें।

वास्तवमें मैं जानता हूँ सम्पादन—कलापर श्रीयुत विष्णुदत्तजीके 'पत्रकार कलाके' सिवा और कोई बड़ी पुस्तक देखनेमें नहीं आयी। हाँ छापेके सम्बन्धमें इलाहाबादके ला जर्नल प्रेसके मैनेजर श्रीयुत कृष्णदेव प्रसाद गौड़ने 'आधुनिक छपाई' नामक बड़ी पुस्तक लिखी है। श्री राम नारायण मिश्र अपने 'भूगोल' मासिक-द्वारा हिन्दीको अन्तर्राष्ट्रीय जान-कारियाँ देनेमें सफल हुए हैं। प्रयागकी विज्ञान परिषद्‌ने हिन्दीको विज्ञान का साहित्य दिया है।

धूमकी रेखा बनकर या कलाकार बने हैं उनमें काशीके सहृदय सुहृद रायकृष्णदासजी कवि कलाकार और चिन्तकके नाते हिन्दीके गर्व हैं। भावुकता सुकवि श्री वियोगीहरिजीने कलम इसलिए उठाकर छोड़ दी क्योंकि वह उन्हें जीवनके ईमानदार प्रकटीकरणकी बाधा दीख पड़ी। किन्तु उन्होंने जो लिखा खूब लिखा, साधु लिखा। सीतामऊके युवराज रघुवीरसिंहजी पर भावना और हिन्दी जगत् दोनोंको गर्व है। अपनी सर्वांगपूर्ण प्रतिभा लेकर हिन्दीके विस्तार और उसकी श्री-वृद्धिमें सहायक होनेके लिए श्रीकाका कालेलकर हमारे बीच आये हैं। श्रीमोहनलाल महतो कभी-कभी लिखते हैं किन्तु उच्च कोटिके लिखते हैं।

मध्यप्रान्तमें बिहार के डॉ॰ बलदेवप्रसादजी व्यौहार राजेन्द्रसिंहजी सुकवि और समालोचक श्रीविनयमोहन शर्मा वयोवृद्ध श्रीमुकुटराम चौबेजी सुधाकर कुमारहृदय श्रीकामताप्रसाद गुरु पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र सुकवि श्रीज्वालाप्रसाद ज्योतिषी श्रीजहूर बख्श श्री रामगोपाल माहेश्वरी श्री लक्ष्मणप्रसाद दुबे श्री भूपेन्द्रनाथ शर्मा श्रीभगवानप्रसाद इन भाषाकी सेवाएँ उल्लेखनीय हैं। यहाँ प्रवासी होकर भी डॉ॰ रामकुमारजी वर्मा या दयाशंकर दुबे श्रीपद्मनारायण आचार्य और श्रीलक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय मध्यप्रान्तकी ही निधि हैं। श्रीयुत काशीनाथजी सिंहासनीन मध्यप्रान्तके साहित्यिक इतिहासपर एक सुन्दर ग्रन्थ लिखा है। श्रीयुत

…ो एक एक ज्योतिर्मान काव्य प्रतिभा हैं जिनसे हिन्दी काव्य …र सका है। इस अंचलमें युगको सबसे ताजा कलम आभवानी … देवीशंकर शुक्ल और श्रीकेदार शर्मा उनके योग रहे हैं। किन्तु … सुमनकुमारीजीके बाद भी बेगम पारस श्रीरामानुज दीक्षित और श्रीरामाज्ञाप्रसाद शास्त्रियाके हाथमें दान रहा है। … कविहृदय श्रीरत्नकुमारी श्रीचन्द्रप्रभा और श्रीवत्सला … भी काव्य-धाराके पथिक हैं।

महाराष्ट्रमें श्रीमन्त सरदार माधवरावजी विंचे श्रीमती कमला बाई … सिंह श्रीमान् गिरिधर शर्माजी नविरत्न श्रीयुत प्रयागनारायणजी … श्रीयुत शिवनाथजी माधव आगरकर श्रीयुत गणेशदत्तजी … विश्वनाथ सखाराम कोर्डे, श्रीयुत ज्वालाप्रसादजी सिंहल श्रीयुत … प्रसाद मिश्र श्रीयुत शान्तिप्रसाद वर्मा श्रीयुत कमलाशंकर … श्रीयुत शिवरचन्द्र जैन आदि कलाकारों और कलमगीरोंपर साम्य … की गरिम रह सकती है। मिनिस्टर शान्तिप्रसाद वर्माके श्रीरेन्द्र ईश्वर … रामकुमार मालव राष्ट्रभाई के प्रतिनिधि हैं।

राजस्थानमें श्रीओझाजीके सिवा उच्च साहित्यके उन्नायक श्रीहरि…जी उपाध्याय, नवीन युगके कलाकार श्रीजनार्दनराय श्रीराके … श्रीमाधुर कोषकार और ग्रन्थकार श्रीसुखसम्पत्तिरामजी भण्डारी … श्रीगिरिधर शर्माजी चतुर्वेदी डॉ० मोहनसिंह मेहता श्रीराम … व्यास श्रीविजयसिंह पथिक श्रीरामनारायण चौधरी आदि … पर राजस्थान गर्व कर सकता है।

बिहारमें देश-पूज्य राजेन्द्र बाबू म० म० रामनारायण शर्मा पं० … सर गणेशदत्त श्रीविविधेश राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, … कलमके धनी श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी आचार्य शिवपूजन … साहित्यकी विभूति श्रीशिवपूजन सहाय और आमोदनाथ मराठी … किशोर तिवारी श्रीदेवव्रती शास्त्री श्री श्रीकान्त ठाकुर विद्या-

संस्कार, श्रीप्रभाशंकर श्रीजगन्नाथप्रसाद मिश्र एम॰ए॰ बी॰एल॰ श्रीउदितनाथ पाण्डेय आचार्य बदरीनाथ वर्मा श्रीपीर मुहम्मद मूनिस श्रीभुवनेश्वर सिंह भुवन श्रीभुवनेश्वर 'माधव' आदिका बिहार जितना गर्व करे, थोड़ा है क्योंकि इनपर तो समस्त हिन्दी जगत् गर्वित है।

युक्तप्रान्तका तो गर्व है कि हिन्दी जगत्पर उसका एकाधिकार है। देवतुल्य मालवीयजी महाराज श्रीपुरुषोत्तम टण्डनजी श्री[illegible] शास्त्री बाबू शिवप्रसाद गुप्त महान् चिन्तक बाबू भगवानदासजी हिन्दीके इतिहासकी रूपरेखा बाबू श्यामसुन्दरदासजी मिश्रबन्धु विद्वद्वर अमरनाथ झा श्री श्रीनारायणजी चतुर्वेदी डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा डॉ॰ बाबूराम सक्सेना श्री देवीदत्त शुक्ल श्री शालिग्राम वर्मा श्री हीरालाल खन्ना पराड़करजी श्री लक्ष्मीनारायण गर्दे यशस्वी श्रीकृष्णदत्तजी पालीवाल श्री गुलाबरायजी श्री हरिशंकर शर्मा श्री महेन्द्रजी श्री शंकर सहायजी सक्सेना श्री रामनाथ सुमन श्री रामबहोरी शुक्ल आचार्य केशवप्रसादजी मिश्र विद्वद्वर सम्पूर्णानन्दजी, श्री रामनारायण यादवेन्दु, श्री विजयानन्द त्रिपाठी श्री नन्ददुलारे वाजपेयी श्री सीताराम चतुर्वेदी श्री जगदीशप्रसाद अग्रवाल एम॰ ए॰ डॉ॰ रामविलास श्री रघुपति सहाय फिराकके और लेखक विज्ञान-आरोग्य-सम्पादक श्री श्रीराम शर्मा आदि सज्जनोंका नाम ही हिन्दी जगत्‌का बहुत बड़ा अभिमान है।

बरार प्रान्त तथा मराठी सी॰ पी॰ में स्वर्गीय देशभक्त जमनालाल बजाजकी महान् शक्तिशाली जो जन-जागरण किया उसने मध्यप्रदेशके हिन्दी भाषियोंका मस्तक बहुत ऊँचा किया। इस दिशामें श्रीमती जानकीदेवी बजाज स्वर्गीय जमनालालजीकी इच्छा समझकर यत्नशील हैं। बरारमें श्रीयुत बृजलालजी वियाणीने हिन्दी प्रचारमें अद्भुत जागरण किया है। और श्रीमती शान्तादेवी पोतनका बरार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी अध्यक्षाके नाते खूब श्रम कर रही हैं। इस दिशामें श्रीयुत श्रीराम शर्माका उद्योग भी सराहनीय है।

पंजाबमें भी हिन्दी आबाद हिन्दी प्रेमी स्वामी केशवानन्दजी गोस्वामी गणेशदत्तजी श्री ठाकुरदत्त शर्मा श्री मस्तरामजी बी ए श्री भगवद्दत्तजी श्री सुमहान्‌चन्द्रजी गुरुमुख कविवर श्री हरिकृष्णजी प्रेमी कविवर श्री उदयशंकरजी भट्ट विश्वबन्धु सम्पादक श्री माधवजी श्रीमती शमीदेवी श्री श्रीमती सीतादेवीजी श्रीयुत चन्द्रगुप्तजी विद्यालंकार श्री देवचन्द्रजी श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन श्री देवेन्द्र सत्यार्थी श्री वेणराम आदि सज्जनोंके प्रयत्नोंको देखकर आशा बंधती है कि एक दिन पंजाबमें हिन्दी अपना उचित गौरवपूर्ण स्थान पा लेगी।

दिल्लीमें विद्वद्वर इन्द्र विद्यावाचस्पतिजी श्री इन्द्र मिश्र परम उद्योगी श्री घनश्यामदासजी बिड़ला प्रसिद्ध कलाकार श्री जैनेन्द्र कुमारजी आचार्य श्री चतुरसेनजी शास्त्री श्री सत्यदेवजी विद्यालंकार श्री राम गोपालजी विद्यालंकार, श्री मुकुटबिहारी वर्मा श्री गुप्तनाथजी श्री वियोगी हरिजी आदिको पाकर हिन्दी अभिमानिनी है।

बम्बईमें एक बार गुजराती साहित्यके सजग और श्रेष्ठ कलाकार श्री कन्हैयालालजी मुन्शीने हिन्दी जगत्‌के गौरव स्वर्गीय श्री प्रेमचन्दजीके साथ समस्त देशी भाषाओंमें सम्पर्क स्थापित करनेके लिए, मासिक 'हंस' का सम्पादन किया था। आज पुनः ऐसे उद्योगकी अत्यन्त आवश्यकता है। यहाँ दैनिक 'विश्वमित्र' की शाखाएँ 'वेंकटेश्वर समाचार' की शक्तियाँ श्री निरंजन शर्मा अजित श्री भानुकुमार श्री रामदेवजी पोद्दार आदि सज्जन खूब काम करते हैं। अब यहाँ हिन्दीके प्रसिद्ध और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोणके विद्वान् डॉ० हेमचन्द्रजी जोशी भी पहुँच गये हैं। तथा सिनेमा व्यवसायके कारण श्री भगवतीचरणजी वर्मा श्री नरेन्द्रजी श्री अमृतजी श्री प्यारेलाल सन्तोषी श्री नीलकण्ठ तिवारी श्री मनमोहन दीक्षित श्री किशोर साहू श्री सत्यकाम विद्यालंकार आदि सज्जन यहाँ हैं तथा बलवान हिन्दी भाषी तथा राजस्थानी शक्तियाँ यहाँ हैं।

कलकत्तामें श्री मूलचन्दजी अग्रवालकी पत्रिका लिखा लेकिन ...

पुरस्कार प्रदाता श्री सीताराम सेकसरिया श्री भगवतीप्रसादजी मुरारका श्री नटवर श्री मोहनसिंह सेंगर श्री ललिताप्रसादजी सुकुल श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदी श्री शीलभद्रजी श्री हिमकरजी लोकमान्य आपति विश्वबन्धु समाज-सेवक विशाल भारत और विश्वमित्रकी शक्तियों आदिसे बंगालका क्षेत्र आपापूर्ण है। जिसपर प्रसिद्ध विद्वान् श्री सुनीतिकुमारजी चाटुर्ज्या-जैसे भाषाविज्ञानका सम्बल है।

युगकी कलम जो तरुण अपने हाथमें रखते हैं उनमें श्री जैनेन्द्र डॉ० रामविलास श्री रामनाथ सुमन श्री जगदीश एम ए श्री मिलिन्द श्री बेनीपुरी श्री अज्ञेय शान्ति प्रसाद श्री शिवदान सिंह श्री गिरजाकुमार श्री सुमित्राकुमारी सिन्हा श्री पूरनचन्द्र जोशी श्री सोहनलाल द्विवेदी श्री शिवमंगल सिंह सुमन श्री पद्मकान्त मालवीय श्री अंचल श्री सत्यानन्द श्री माचवे और श्री यशपाल आदि मुख्य हैं।

कुछ लेखक हैं जो लेखनमें संश्लिष्ट स्वभाव तथा सुदूर हलचलसे भिन्न अथवा उच्च साहित्यिक दृष्टि रखकर लिखते हैं। उनमें ठाकुर गुरुभक्त सिंह श्री रामनारायण यादवेन्दु श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र श्री सीताराम चतुर्वेदी श्री प्रयागदत्त शुक्ल आदि मुख्य हैं।

हम अपनी सीमाके रक्षकोंको देखकर गर्वित हैं। मद्रासमें श्री राजगोपालाचार्यजी डॉ० पट्टाभि सीतारामैया और अनेक सुधी हमारे मद्रासके हिन्दी प्रचारका झंडा अपने हाथमें बाँधे हुए हैं। महाराष्ट्रमें समस्त दल अपना भेदभाव छोड़कर राष्ट्रभाषाकी उपासनामें लीन हैं। गुजरातमें मुनि जिनविजयजी श्रीयुत कन्हैयालालजी तथा श्रीमती लीलावतीजी मुन्शी बंगालमें डॉ० सुनीतिकुमारजी तथा कितने ही अन्य सुधी जन इसी प्रकार आन्ध्र तमिल आसाम कर्नाटक उड़ीसा आदि समस्त स्थानोंमें राष्ट्रभाषाकी समाराधनामें संलग्न हैं और श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डनकी ध्यान-साधना तथा काका कालेलकर-जैसे मनस्वियोंकी सेवा सफल हो रही है।

राष्ट्रध्वज उसकी वाणी है जिसका मस्तक नगाधिराजके वक्षसे ऊँचा सर्वोच्च और उन्नत है। नगाधिराज राष्ट्रका प्रहरी होकर भी प्राचीन है। किन्तु भौगोलिक देवताका तो वह रजत-मुकुट ही है। और इसके देशके वक्षमें गंगा और यमुनाका हार लहरा रहा है। सरस्वती और सिन्धु जिसकी भुजाओंके संचित बनकर सीमा बना रही हैं। नर्मदा और ताप्ती जिसकी कमरकी करधनी बनकर लहरा रही हैं। कृष्णा और कावेरी जिसके चरणोंके किनारोंमें बस रही हैं और हिन्द महासागर जिसके चरणोंको धो रहा है। भारतवासियोंके समस्त धर्मों समस्त संस्कृतियों और समस्त भाषाओंकी यह जननी है। इसीकी वाणीको हम राष्ट्रध्वज कहते हैं और इसीके स्वरूपको हम टुकड़े-टुकड़े नहीं देख सकते।

जो इसके वैभवको तोड़ने आयगा वह इसकी वाणीको आकेतु हिला न देखेगा। आज भी एक भुजा है जो राष्ट्रभाषा कहलाती है, राष्ट्रका प्राण, राष्ट्रीय कहलाती है।

एक युग है जो भारत स्वाधीनताके लिए संघर्षोंको झेलती हुई दुखदायकोंसे लड़ रही है, भविष्यको तैयार रही है, वर्तमानको प्राण दान कर रही है।

देखो वह सोतेसे जाग रहा है—मानो धीरे-धीरे गुनगुना रहा है। वह हमारा भविष्य कह रहा है किन्तु ज्योतिषी नहीं है, युग-द्रष्टा है वह।

उसके चरणोंके साथ हमारे पग उठते हैं। वह जनगणका स्वामी है। बलिदानकी नींवें उसको सींच रहा है, बलिदानके युगकी बात कह रहा है।

जो ईंट और पत्थर चीरकर उसके विचारकी महल नहीं बना सकते वही ईंट और पत्थर उसके मनको कारागार नहीं बना सकते। वह परम स्वतन्त्र है।

एक संकेत है जो शताब्दियोंके महानों तक सूर्य-किरणोंकी तरह फैल

रहा है और जिसकी प्रकाश-रेखाओंपर राष्ट्रीय उत्थानके संवत्सरोंका काफिला ठहरा हुआ है।

वह बन्दी है क्योंकि उसके संकल्प उन्मुक्त हैं। वह अपमानित है क्योंकि उसकी प्रतिज्ञा कोटि कोटि जीवनके हृदय-मन्दिरमें सम्मानित है।

वह हमसे दूर है क्योंकि वह हमारे हृदयोंके इतना पास है जितना पास कोई नहीं।

वह उनका भाग्य लिख रहा है जिन्हें लिखना नहीं आता, उनकी भाषासे बोल रहा है जिनकी भाषा नहीं फूटती।

समस्त नदियाँ किसके अभिषेकको चली आ रही हैं? समस्त हरियालापन किसके संकेतपर भूमिसे विद्रोह किये ऊपरको उठ रहा है? भारतीय मानव पीसने और शोषणकालमें बँटकर किन पापोंके आस-पास चक्कर काट रहा है? उसके सिरपर श्वेत वस्त्र बँधा है, उसके बदनमें लँगोटी लगी है। मुट्ठी भर हड्डियाँ हैं और प्राणोंको इतना तपा रहा है मानो उसे झीनी चादर बनाकर अपने अभिमतको धसम-से ढाँक लेना चाहता है।

तात्कालीन राष्ट्रवादियोंकी रक्षा सक्षम वेग रही है। उसकी बात इतिहासके अनुवादमें इतनी बेचैन है कि उस युगवादियोंको पीछे छोड़कर मानो नवाविराजपर चढ़ जायेगी। उसकी विजय इतिहास है। और अपनोंसे उसकी पराजय युगका महान् पुरुषार्थ होगी।

उस युग-पुरुषके द्वारा राष्ट्रवादी है चाहे वह सेवा-ग्राममें रहे, कारागारमें रहे या किसी और लोकमें रहे।

उसके वन्दन और नयी पीढ़ीके निर्माणकी प्रतिज्ञाके साथ हिन्दी भाषी पाठक आओ 'अपार' की आराधना करें, ध्वनिको साथ करें, स्वरका गुंजन करें, भारतीके चरणोंमें व्यंजन चढ़ावें, टूटता वेग और टूटती भाषामें सन्धि साधन करें, परायेको सँभालकर अपनावें, अँगारोंको बलवान् बनावें

और राष्ट्रभाषाओंको मस्तक उठाकर मस्तक झुकाकर और भावस्यक्ता होनेपर हथेलीपर मस्तक उतारकर खड़ी हो सकें जहाँसे वह विश्वकी स्वतन्त्र भाषाओंसे बराबरीके बोल बोल सके। इसके लिए जितना संगठित श्रम जितना बलिदान जितना पौरुषगाम और जितने स्वप्नोंका आवश्यक हो हमारी पीढ़ी दे सके तभी हमारी हरिद्वारकी तीर्थयात्रा सफल होगी और तभी ममाधिगग्राके द्वारपर खड़ी भागीरथीकी अनुस्यूती धाराका अर्थ हम समझ सकेंगे।

११वें म मा० हिन्दी सम्मेलनका
अध्यक्षीय भाषण
११५३